ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्। ओम् खम् ब्रह्म।।

जो आदित्य पुरुष (ईश्वर) है, वह मैं हूँ। ओम् सर्वव्यापक ब्रह्म है। (यजुर्वेद अन्तिम मन्त्र)

वैदिक मञ्च, कानपुर

डॉ. कृष्णदत्त (संरक्षक) डॉ.उमेश पालीवाल (संरक्षक) स्वामी शरण (चतुर्वेद भाष्यकार) अम्बिका प्रसाद वेदव्यास (वेद पीठ संचालक) पंकज राठौर (प्रधानाचार्य, वेद विद्यालय)

★ वेद पाठ ★ प्रशिक्षण ★ पुस्तकालय ★ संस्कार

वेद पीठ 87/6 शास्त्री नगर, पुरानी रामलीला पार्क कानपुर - 208005

गायत्री साहित्य केन्द्र, 117/एच-1/02, पाण्डु नगर, जे. के. मन्दिर के सामने, कानपुर - 208005

website - vedayan.simplesite.com

मो ★ 9839105629 ★ 6390254281 ★ 8687849004 ★ 9794392436

आत्मीय निवेदन

हमारा प्रमुख उद्देश्य सच्चे अध्यात्म को जीवन में उतारना तथा अधिकतम लोगों तक इसका प्रकाश पहुँचाना है। वेद स्थापना, वेदपाठ, स्वाध्याय, सत्संग हमारे लिए महत्वपूर्ण कार्यक्रम हैं। आप सब सहयोगी परिजन स्वयम् तो प्रतिदिन वेदपाठ का क्रम बनायें ही, अपने निवास तथा कार्यस्थल पर साप्ताहिक अथवा मासिक सत्संग का आयोजन अवश्य करें।

❖❖ ❖ ❖❖

वेद विश्व का प्राचीनतम साहित्य तथा भारतीय धर्म संस्कृति का मूल स्रोत है। वेद का पाठ तथा स्वाध्याय करना हमारा परम धर्म है। हमारी मान्यताएँ, चिन्तन तथा आचार-विचार वेद के अनुकूल होना चाहिए।

स्वामी शरण

वैदिक इतिहास

मूल्य - 300 रुपये

ॐ यो असौ आदित्ये पुरुषः, सो असौ अहम्, ओम् खम् ब्रह्म।।

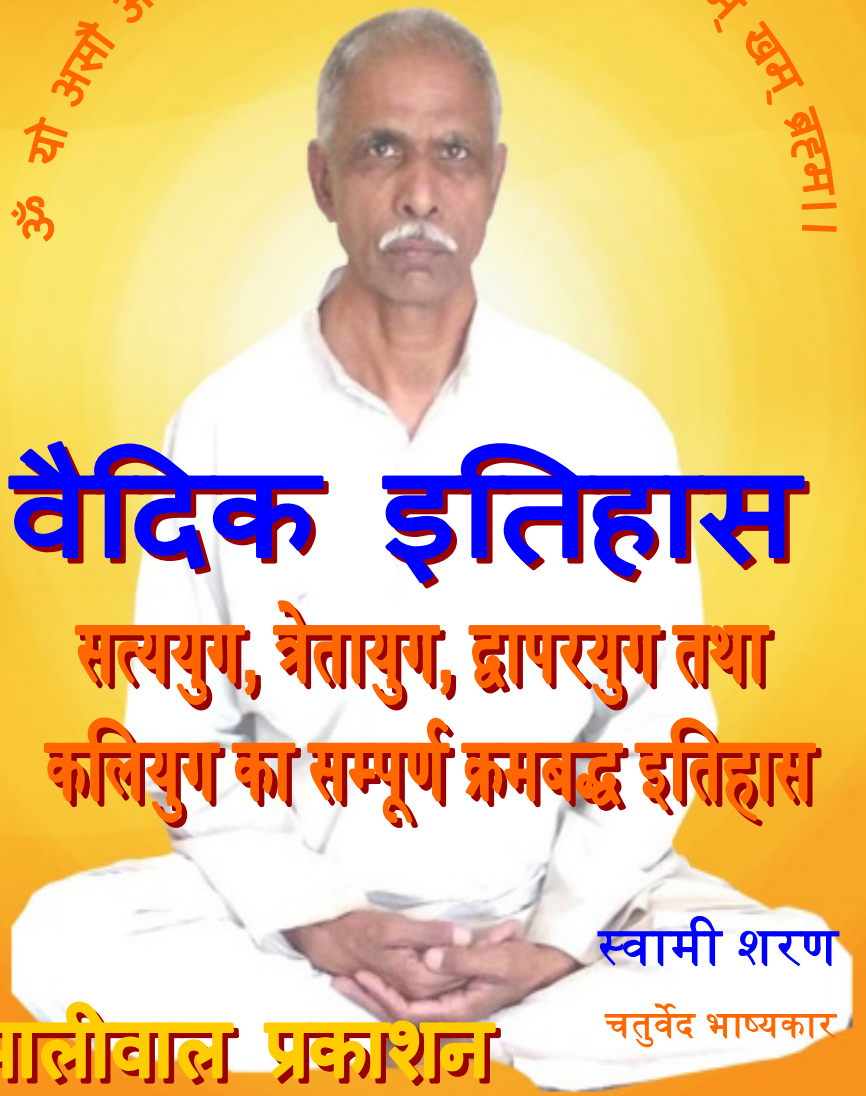

वैदिक इतिहास

सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग तथा कलियुग का सम्पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास

स्वामी शरण

चतुर्वेद भाष्यकार

पालीवाल प्रकाशन

वैदिक इतिहास

अनुक्रम

भूमिका

1. प्राचीन सभ्यतायें 05
2. वैवस्वत श्राद्धदेव मनु तथा जल प्रलय 15
3. मनु का परिवार 19
4. इक्ष्वाकु के वंशज 21
5. पृथु द्वारा कृषि का आरम्भ तथा असुरों का आक्रमण 24
6. सम्राट मान्धाता 28
7. पुरुकुत्स द्वारा रसातल के मौनेय गन्धर्वों का दमन 31
8. सत्ययुग के अन्तिम चरण में राजनीतिक उथल-पुथल 34
9. भार्गव राम (परशुराम) 39
10. इतिहास के दर्पण में सत्ययुग का सत्य 43
11. त्रेतायुग का प्रथम चरण - गङ्गवतरण 47
12. प्रतापी सम्राट भरत 53
13. राजा मित्रसह - शाप तथा नियोग 58
14. सम्राट रघु 62
15. दशरथ 66
16. लङ्का और वैकुण्ठ 69
17. दशग्रीव का लङ्का पर अधिकार 73
18. लङ्का का स्वर्णयुग - इन्द्र पर विजय 79
19. राम विवाह तथा वनवास 83
20. लङ्का शासित दक्षिण भारत में राम की विजय 88
21. लङ्का का पतन - राम की महान् विजय 93
22. राम का शासनकाल 100
23. शम्बुक वध तथा लक्ष्मण का परित्याग 103
24. राम का अन्तिम समय और उत्तरधिकारी 107
25. सुदास् और दशराज युद्ध 111
26. द्वापर युग में सुर्य वंश का पतन 115
27. सुदास् के बाद का भारतवर्ष 119
28. शान्तनु तथा उत्तरधिकारी 121
29. द्वापर युग का अन्तिम चरण 125
30. महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास 130
31. हस्तिनापुर राजपरिवार में कलह 133
32. मथुरा में कंस तथा वसुदेव 138
33. देवकी - वसुदेव के छह पुत्रों की हत्या 142
34. कृष्ण का जन्म तथा बचपन 147
35. कंस वध 150
36. मथुरा पर 19 आक्रमण तथा द्वारका की स्थापना 155
37. इन्द्रप्रस्थ के स्थापना 158
38. कुरूक्षेत्र में महाभारत युद्ध 164
39. युधिष्ठिर का शासनकाल 168
40. कृष्णकाल का ऐतिहासिक महत्व 172
41. कृष्ण का जीवन - दर्शन 177
42. विद्याप्रेमी सम्राट परीक्षित् 185
43. सम्राट जनमेजय और नागयज्ञ 189

44. कौशाम्बी, कोशल और मगध 192
45. गौतम बुद्ध 197
46. बुद्धकालीन भारत 201
47. महान् विजेता सम्राट उदयन 206
48. इक्ष्वाकुवंश तथा शाक्यों का विनाश 211
49. अवन्ति के शासक और उसका महत्व 215
50. मगध राजवंश और तिथिक्रम 218
51. बुद्धकालीन प्रमुख सम्प्रदाय 221
52. वेद और वैदिक विचारधारा 225
53. वैदिक साहित्य और चिन्तन का विकास 227
54. चार उपवेद और छह वेदाङ्ग 230
55. वेदों के उपाङ्ग अर्थात् छह दर्शन 234
56. इतिहास तथा पुराण 238
57. वैदिक दर्शन के मूल तत्व 242
58. भारत के प्रमुख राजवंश 245
59. वैदिक इतिहास- प्रमुख घटनाक्रम 276

प्राचीन सभ्यतायें

भारतीय संस्कृति का प्राचीन इतिहास क्या है। और इसका प्रारम्भ कैसे हुआ, इस बारे में हम सभी के मन में जिज्ञासा सदैव से रही है और रहेगी। प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में हमारा सम्पूर्ण इतिहास क्रमबद्ध और व्यवस्थित ढंग से लिखा हुआ है। वाल्मिकी रामायण, महाभारत और विष्णु पुराण को प्राचीन ग्रन्थों में प्रमुख इतिहासत्रयी के रूप में माना जाता है। इसके अलावा सतपथ आदि ब्राह्मण ग्रन्थों तथा पुराणों में भी मूल्यवान ऐतिहासिक सामग्री उपलब्ध है। इनके आधार पर भारत का लगभग सत्तासी शताब्दियों (8700) वर्षो) का व्यवस्थित इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है।

विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं मिस्र, इराक (मेसोपोटामिया), यूनान (ईजीनियन सभ्यता), इजरायल एवम् चीन का पूरा इतिहास वहाँ के साहित्य पर ही निर्भर है। इजरायल एवम् चीन का पूरा इतिहास वहाँ के साहित्य पर ही निर्भर है। इजरायल के तो सम्पूर्ण प्राचीन इतिहास का स्रोत यहूदियों की बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेण्ट) ही है। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य काफी समृद्ध और अतीव प्राचीन युग के मानव इतिहास के सम्बन्ध में काफी उपयोगी सूचनाएं उपलब्ध कराता है। भारतीय विश्वास के अनुसार मानव जाति का उदय, हम इसे व्यावहारिक रूप से सभ्यता का प्रारम्भ कह सकते हैं, हिमालय के पर्वतीय क्षेत्रों में हुआ। भारतीय संस्कृति के आदि पुरुष ब्रह्मा थे। ब्रह्मा के पुत्र विराट तथा उनके पुत्र स्वायम्भुव मनु हुए। मनु के पुत्र मारीचि तथा उनके पुत्र कश्यप हुए।

ब्रह्मा, विराट, मनु, मारीचि, कश्यप आदिकालीन पांच पीढियों के लोग आदि महर्षि माने जाते है। हमारी संस्कृति एवम् सभ्यता को जन्म देने का श्रेय इन सभी को है। ब्रह्मा को आदि पुरुष तथा मानव जाति का पितामह कहा जाता है। यह भी कहा गया है कि सभी लोग कश्यप की ही सन्तान हैं - कश्यपस्य इमे प्रजाः। महर्षि कश्यप की पाँच पत्नियाँ थी - अदिति, दनु, दिति, विनता तथा कद्रू। अदिति के पुत्र आदित्य कहलाये। और बाद में हिमालय प्रदेश पर त्रिविष्टप या स्वर्ग के नाम से अधिकार इन्हीं आदित्यों का रहा। आदित्यों ने जिस संस्कृति का विकास किया, वह देव संस्कृति कहलायी एवम् उसके सम्वाहक आदित्यो को भी देव कहा गया। देव या आदित्यों के लिए दिव्यता या आध्यात्मिक द्युति का विशेष महत्व था। भौतिक सभ्यता का विकास करने के बावजूद उन्होनें अध्यात्म पर अधिक बल दिया।

कश्यप की पत्नी दिति के पुत्र दैत्य एवम् दनु के पुत्र दानव कहलाए।उन लोगों ने भौतिक सभ्यता को अधिक प्रश्रय दिया और अपने समय को देखते हुए उन्नत तकनीक विकसित की। दैत्य एवम् दानव लोगों ने जिस संस्कृति या विचारधारा को अपनाया, वह असुर संस्कृति कहलायी। असुर का अर्थ है प्राण शक्ति का विस्तार करने वाला। दोनो संस्कृतियों के बीच विवाद होने पर असुर संस्कृति के सम्वाहक दैत्य एवम् दानव हिमालय के पश्चिमी किनारे सुमेरु पर्वत या पामीर को ओर नीचे समतल भूमि की ओर बढ गये तथा इलावर्त (ईरान में) अपनी सभ्यता का विकास किया। समतल और उपजाऊ प्रदेश के कारण असुर सभ्यता का बहुत तेजी से विकास हुआ। कृषि, भवन निर्माण एवम् भवन नियोजन में असुर सभ्यता देवों से कई

गुना आगे बढ गयी।

प्राचीन ऐतिहासिक ग्रन्थों का अध्ययन कर भारत का प्राची इतिहास क्रमबद्ध ढंग से तिथिक्रम सहित प्रस्तुत किया जा सकता है। नवीनतम शोध कार्यों के निष्कर्षों का समावेश करने से उस इतिहास का स्वरूप और स्पष्ट हो जाता है तथा भारतीय परम्परा से प्राप्त इतिहास की पुष्टि भी होती है। लेकिन इसके लिए कुछ रुढि परिकल्पनाओं से मुक्ति पाना आवश्यक है। सबसे विचित्र परिकल्पना यह प्रचारित की गई है कि भारत में सभ्यताओं का विकास करने वाली सभी तथाकथित प्रजातियाँ निषाद, नेग्रिटो, द्वविण, आर्य तथा अन्य सभी विदेश से ही आये। कहा जाता है कि सबसे पहले नेग्रिटो जाति का भारत में प्रवेश हुआ। इन्हें आस्ट्रलियायड कहा जाता है। और माना जाता है कि इनके वंशज केवल अण्डमान निकोबार द्वीपों में शेष बचे हैं। ऐसा माना जाता है कि इसके बाद निषाद जाति ने प्रवेश किया। उसके बाद भूमध्य सागरीय क्षेत्र से द्रविण जाति का आगमन हुआ। इन सभी प्रजातियों ने भारत में सभ्यता का विकास किया और अब से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व तथाकथित आर्यों ने आक्रमण कर उस उन्नत नगरीय सभ्यता को नष्ट कर दिया।

इस परिकल्पना पर विश्वास करने वाले इतिहासकार इस बात को भी मानते है कि भारत में कम कम से कम पांच छह लाख वर्ष पूर्व भी मानव जाति का निवास था और उस समय के पूर्व पाषाण कालीन उपकरण पूरे भारत में पाये गये हैं। इसके अलावा यह तथ्य भी महत्वपूर्ण है कि एक करोडं वर्ष पूर्व की आदि मानव की अस्थियाँ हिमालय के शिवलिक पर्वत क्षेत्र में पायी गयी हैं। उस आदिमानव को रामापिथीक्स कहा जाता है। पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ के मानव शस्त्र विभाग के विशेषज्ञो ने डा0 एस0 आर0 चोपडा के नेतृत्व में उत्तर प्रदेश की शिवालिक पर्वत शृड्खला तथा जम्मू कश्मीर एवम् हिमालय प्रदेश की पहाडियों में भी खोज कार्य करके सफलतायें प्राप्त की हैं। इस खोज से वैदिक संस्कृति की इस मान्यता की ही पुष्टि हुई है कि आदिमानव का मूल स्थान हिमालय क्षेत्र ही है। हिमालय क्षेत्र को राजनीतिक दृष्टि से प्राचीन ग्रन्थो में त्रिविष्टप, स्वर्ग, देवलोक, नाक आदि नामों से जाना गया है और मान्यता है कि मानव जाति हिमालय के पर्वत प्रदेश से भारत के मैदानी क्षेत्र में आयी और यहीं से संस्कृति का विकास कर विभिन्न देशों में परिभ्रमण किया।

हिमालय प्रदेश में स्थित त्रिविष्टप या स्वर्ग के देव, दक्षिण के मैदानी क्षेत्र पृथ्वी के मानव एवम् पश्चिमी इलावर्त या असुर लोक के बीच सदैव निकट सम्बन्ध बन रहे। समतल भूमि पर बस गये असुरों की विकसित सभ्यता देवों के लिए आश्चर्य के साथ ही ईर्ष्या का कारण बनी।

महर्षि कश्यप के वंश की एक शाखा सुमेरु पर्वत के उत्तर की ओर मध्य एशिया होते हुए पश्चिम की ओर आगे बढी। इस शाखा को शेषनाग कहते है। शेषनाग वंश के लोग नाग सर्प को ध्वज प्रतीक मानते थे। ये लोग कश्यप की पत्नी कद्रू के पुत्र थे। कश्यप की एक अन्य पत्नी विनता के पुत्र वैनतेय गरुड़ कहलाये। ये लोग गरुण पक्षी को ध्वज प्रतीक बनाते थे। शेषनाग वंश एवम् वैनतेय गरुण वंश के लोग पश्चिम मे बढते हुए एक विशाल झील के किनारे बस गये। अपने पूर्वज कश्यप ऋषि के नाम पर उस जलाशय का नाम कश्यप सागर रखा। उसे कैस्पियन सागर, शीरवाँ तथा क्षीर

सागर भी कहते हैं। कश्यप सागर के तट पर बैकुण्ठ नगर को केन्द्र बनाकर विष्णु ने देव संस्कृति के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाया और शेषनाग और वैनतेय गरुड़ दोनो कुलों का सहयोग प्राप्त किया।

प्रतीक रूप में विष्णु शेषशायी एवम् गरुड़ वाहन हैं। इसका अर्थ है कि बैकुण्ठ राज्य की आन्तरिक व्यवस्था शेषनाग कुल को सौंपकर वे निश्चित रह सकते हैं और राज्य के बाहर के अभियान विदेश एवम् प्रतिरक्षा वैनतेय गरुड़ों के दायित्व में है। उल्लेखनीय है कि कहीं बैकुण्ठ नगर के उत्खनन की सूचना भी मिली है, लेकिन इस समय उसका प्रमाणित उल्लेख नहीं किया जा सकता है।

अनुमान किया जा सकता है कि मैसोपोटामिया की प्राचीनतम सुमेरियम सभ्यता भी सुमेरु पर्वत से उतर कर जाने वाले लोगो ने विकसित की होगी। वहाँ की प्राचीन कथाओं में उल्लेख है कि सुमेर में यह सभ्यता प्रचलित करने वाले पूर्वज पूर्व ने समुद्र के मार्ग से आये थे और उनके देवों का निवास दूर पूर्व में स्थित पर्वतों पर है। इस प्रकार भारतीय एवम् सुमेरियन पौराणिक आख्यानों के बीत सामञ्जस्य बैठाया जा सकता है।

इराक में सुमेरियनों के बाद बेबीलोन सभ्यता का युग प्रारम्भ होता है। इस सभ्यता पर पश्चिमी एशिया तथा मिस्री सभ्यता के कुलों का प्रभाव माना जाता है। कुछ समय बाद बेबीलोन वालों के आसपास भारतीय सभ्यता या उस युग की सभ्यता के अनुसार कह ले तो ब्रह्मा, मनु या कश्यप के कुल शाखाओं के राज्यों से संघर्ष करना पडा है। केसी या कसाइट लोगों ने शीघ्र ही बेबीलोन पर अधिकार कर लिया ये लोग इन्द्र एवम् मरूत् के उपासक थे। इसके बाद मितन्नी और हित्ती शासकों ने राज्य किया। इन्हें भी हमारे कश्यप ऋषि की संस्कृति का उत्तराधिकारी माना जाता है। आधुनिक इतिहासकार इन लोगों को आर्य जाति का मानते हैं, अतः हम अपना परम्परा के अनुसार उनको कश्यप ऋषि का वंशज कह सकते हैं।

इनके बाद उस पूरे क्षेत्र में असुरों का प्रबल राज्य स्थापित हो गया। इन्हें यूरोप में असीरियन कहा जाता है। असीरियन लम्बे और ताकतवर बताये गये हैं। इनकी राजधानी और प्रमुख देवता का नाम असुर था। सबसे पहले महत्वपूर्ण राजा असुर उबालित हुए। उनका समय 1375 - 1340 ई0 पूर्व माना जाता है। इससे शताब्दियों पूर्व ये लोग मेसोपोटामिया के उत्तर में बसे हुए थे, लेकिन उस क्षेत्र में स्वतन्त्र एवम् शक्तिशाली राज्य असुर उबालित ने ही स्थापित किया। मितन्नी कुल के शासक दुश्रत के पराजित कर उन्होनें अपना राज्य स्थापित किया। इस कुल के बाद सिंहवाहिनी देवी देवत या देपत के उपासक हित्ती लोगों का उत्कर्ष हुआ। ऐसा माना गया है कि हित्ती लोगों की पूजा विधि पौराणिक भारतीयों की पूजा विधि के ही समान थी।

प्रमाणिक दृष्टि से शरीर विज्ञान में सबसे बडी उपलब्धि मानव शव को लम्बे समय तक सुरक्षित रखने की विद्या का ज्ञान मिस्रवासियों को उस युग में था, जिसे भारत में द्वापर युग का अन्तिम चरण कहा जा सकता है। उनका रसायन ज्ञान इतना उन्नत था कि कुछ रासायनिक पदार्थों का उपयोग करके शवों को सुरक्षित रख सकते थे। चिकित्सा विज्ञान का भी विकास हुआ था।

अमेरिकी महाद्वीप की माया सभ्यता, जिसे भारत मे मय सभ्यता कहते हैं, पुरातत्व की दृष्टि से प्राचीनतम और सबसे उन्नत सभ्यता थी। उनके प्राप्त अभिलेखों में नौ करोड वर्ष पहले तक के उस समय

का उल्लेख है और यह माना जाता है कि 25000 वर्ष पूर्व से उन लोगों का प्रमाणित अस्तित्व है। पाँच हजार वर्षों के पहले के स्थापत्य के प्रमाणस्वरूप पिरामिड, मन्दिर आदि यूरोप वालो की शताब्दियों तक चली विनाश लीला के बाद भी सुरक्षित है। होण्डूरस के मन्दिर में अन्तरिक्ष सूट पहने एक यात्री का भी चित्र था। उनको शुक्र और चन्द्र के पंचाङ्ग भी ज्ञात थे और कहीं उपयोग भी होता था उनके अनुसार मानव सृष्टि का आरम्भ पचास लाख इकतालिस हजार सात सौ अडतालीस वर्ष पूर्व हुआ जो वैज्ञानिक खोजो के अनुसार विश्वसनीय लगता है।

वहाँ पर एक सम्वत्सर का मञ्च का निर्माण 3113 ई0 पू0 में किया गया था। जिसमें चारों ओर की सीढियों की संख्या मञ्च को मिलाकर 365 है। उनकी सम्वत्स गणना का प्रारम्भ उसी वर्ष 3113 ई0 पू0 से होता है। जबकि अभी यह ज्ञात नहीं हो सका है कि उस वर्ष से सम्वत्स का प्रारम्भ किस उपलक्ष्य में किया गया था। भारत में युधिष्ठिर सम्वत् 3138 ईस्वी पूर्व में प्रारम्भ हुआ था और युगाब्ध का कलि सम्वत् 3102 ईस्वी पूर्व में। इस प्रकार मय सम्वत या माया सम्वत युधिष्ठिर सम्वत् के पच्चीस वर्ष बाद और युगाब्ध के ग्यारह वर्ष पहले आरम्भ हुआ था।

इतनी उपलब्धियों के बावजूद यद्यपि सीधा प्रमाण न सही, लेकिन लगती है कि मय लोगो का सम्बन्ध किसी अन्य ग्रह से भी था जिनका वर्ष दो सौ साठ दिन को होता था और उसमें तेरह महीने बीस - बीस दिन के थे। क्रेग और एरिग अमलैण्ड जैसे विद्वान मानते हैं कि मय लोग किसी अन्य ग्रह से आये थे। यह भी हो सकता है कि वे पृथ्वी से अन्य ग्रह पर गये हों। इन सब उल्लेखों का उद्देश्य यह दिखाना है कि पृथ्वी पर पाँच हजार वर्ष पहले इतनी उन्नत सभ्यतायें थीं।

प्रचलित धारणा के अनुसार युगों की अवधि लाखों में होती है। इसका समाधान यह है कि मूल धारणा तो एक युग की अवधि 12000 वर्ष ही मानती है। पृथ्वी पर मानव इतिहास को इसी धारणा के आधार पर समझा जा सकता है। लेकिन दिव्य शक्तियों अर्थात् दैदीप्यमान नक्षत्रों की कालगणना के लिए दिव्य वर्ष का प्रयोग किया जाता है। पृथ्वी के 360 दिनों के बराबर एक दिव्य दिवस होता है। दिव्य वर्ष भी 360 दिव्य दिवसों का ही माना गया। इस प्रकार पृथ्वी के मानव वर्षों की अपेक्षा दिव्य वर्ष 360 गुना हो गया। इस प्रकार 1200 दिव्य वर्षों में एक दिव्य युग की अवधि मानव वर्षों में $1200*360 = 432000$ वर्ष हुई।

एक चतुर्युगी के अन्त में अगर हम चारों युगों के आरम्भ होने की अवधि की गणना करें को द्वापर युग का आरम्भ कलियुग के दो गुने वर्ष पूर्व हुआ माना जाएगा। इसी प्रकार त्रेता का आरम्भ कलियुग से तीन गुने एवम् कृतयुग या सत्ययुग का आरम्भ कलियुग से चार गुने वर्षों पूर्व हुआ होगा। दिव्य वर्षों में युगों की अवधि की गणना के साथ द्वापर युग की कुल अवधि कलियुग की अवधि से दो गुनी, त्रेता युग की तीन गुनी तथा कृतयुग की चार गुनी होने की मान्यता भी स्थापित की गयी। लेकिन यह मान्यता मानव इतिहास के सन्दर्भ में इसलिए स्वीकार्य नहीं है क्योकि प्रत्येक युग में क्रमागत राजाओं की संख्या लगभग समान 32 - 33 ही स्वीकार की जाती है। क्रमागत राजाओं की संख्या इस बात का प्रमाण है कि कृतयुग, त्रेतायुग, द्वापर युग एवम् कलियुग की अवधि समान होती

है तथा यह अवधि 1200 मानव वर्ष ही है।

मानव इतिहास के युगों की अवधि किसी भी प्रकार से 1200 दिव्य वर्ष अथवा लाखों मानव वर्षों में नहीं हो सकती है। दिव्य वर्ष की अवधारणा सूर्य एवम् नक्षत्र आदि दिव्य लोको के सम्बन्ध में ही सत्य हो सकती हैं। उनमें होने वाली खगोलीय घटनाओं एवम् आकाश गंगा की परिक्रमा आदि के लिए दिव्य वर्षों में की जाने वाली गणना उपयुक्त है। ज्योतिषीय गणना के लिए दिव्य वर्ष तथा मानव इतिहास के लिए मानव वर्षों में एक युग के लिए दिव्य वर्ष तथा मानव इतिहास के लिए मानव वर्षों में एक युग की अवधि 1200 वर्ष होती है। वैवस्वत मनु से चारों युगों का 4800 वर्षों की अवधि का महायुग कलियुग के युगावतार सिद्धार्थ गौतम बुद्ध के समय में समाप्त हो जाता है।

महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास द्वारा रचित जय नामक इतिहास ग्रन्थ उनके शिष्यों द्वारा विस्तार किये जाने पर भारत तथा भविष्य में उनकी शिष्य परम्परा के सूत कहे जाने वाले पौराणिक विद्वानों के द्वारा आकार सवा लाख श्लोकों तक विस्तृत कर दिए जाने पर महाभारत के नाम से प्रशिद्ध हुआ। महर्षि व्यास ने जय की रचना मात्र 4400 श्लोकों में की थी। उनके शिष्यों ने उस इतिहास को विस्तृत कर और अधिक उपयोगी बनाया तथा भरतवंशी राजाओं तथा तत्कालीन ऋषियों का विस्तृत इतिहास सम्मिलित कर उसे भरत नाम दिया।

जय इतिहास ग्रन्थ में राजा शान्तनु से युधिष्ठिर तक चार पीढियों का विस्तृत और प्रामाणिक इतिहास सुरक्षित है। इसी प्रकार प्रथम ऐतिहासिक ग्रन्थ महर्षि वाल्मीकि रचित रामायण में तत्कालीन ऋषियों का विस्तृत इतिहास उपलब्ध है। इन दोनों महान् ऐतिहासिक ग्रन्थों में प्रकारान्तर से प्रासङ्गिक सन्दर्भों के रूप में भी इतिहास की अनेक उपयोगी सूचनाएं प्राप्त होती हैं। संस्कृत के महान ऐतिहासिक ग्रन्थ कल्ङण रचित राजतरङ्गिणी में कश्मीर के 86 राजाओं के समय 2442 वर्षों की अवधि का प्रामाणिक इतिहास उपलब्ध है। राजतरङ्गिणी को आधुनिक दृष्टिकोण से लिखा गया संस्कृत भाषा का प्रमुखतम इतिहास ग्रन्थ माना जाता है। वास्तव में वाल्मीकीय रामायण , व्यासकृत महाभारतस, विष्णु पुराण, रघुवंश तथा राजतरंङ्गिणी के आधार पर ही प्राचीन भारत का सम्पूर्ण इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। विभिन्न पुराणों में सुरक्षित कलियुगीन राजवंशावली एवम् अन्य ऐतिहासिक सूचनाओं, बौद्ध साहित्य, जैन साहित्य तथा अन्य ग्रन्थो मे बिखरी हुई जानकारियों को एकत्र कर महाभारत के बाद का इतिहास बहुत अधिक स्पष्ट रूप से तिथिक्रम तथा क्रमागत राजाओं की सूची सहित लिखा जा सकता है।

पुणें के विद्वान डा0 वी0 पी0 वर्तक ने खगोलीय आधार पर दावा किया है कि महाभारत युद्ध 16 अक्टूबर 5562 ईस्वी पूर्व में प्रारम्भ हुआ था। उन्होंने अपना शोध पुणे विश्वविद्यालय के भण्डारकर प्राच्य अनुसन्धान तथा एशियाटिकी सोसाइटी कलकत्ता में भr प्रस्तुत किया था। प्रमुख चिकित्सक एवम् संस्कृत के विद्वान डा0 वर्तक के उक्त सोध का समाचार प्रेस ट्रस्ट आफ इण्डिया ने 15 मार्च 1978 को जारी किया था जो अगले दिन दैनिक जागरण, कानपुर सहित विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ था।

भारत में परम्परागत रूप से युगाब्ध के आधार पर निश्चित की गई इतिहास की तिथियाँ निर्विवाद रूप से मान्य है। पञ्चाङ्गों में

वर्तमान समय तक कलि सम्वत् या युगाब्ध लिखा जाता है। महाभारत युद्ध के बाद की घटनाओं में युगाब्ध तथा युधिष्ठिर सम्वत् का प्रयोग किया जाता रहा है।

❖❖ ❖ ❖❖

वैवस्वत श्राद्धदैव मनु तथा जल प्रलय

प्राचीनतम भारतीय संस्कृति में आदि पुरुष ब्रह्मा को माना जाता है। वेद तथा वैदिक संस्कृति उनकी प्रमुख देन है। वे सम्पूर्ण नृवंश के पितामह कहलाते है। ब्रह्मा के पुत्र विराट और विराट के पुत्र हुए स्वायम्भुव मनु। बाद में संस्कृति केन्द्र ब्रह्मावर्त्तों की स्थापना करने वाले राजर्षि लोग मनु कहलाये। ये इस क्रम में जल प्रलय के नायक वैवस्तव श्राद्धदेव मनु सातवें मनु थे।

जल प्रलय विश्व इतिहास की अति महत्वपूर्ण घटना है। मेसोपोटामिया के प्राचीन प्रदेश शिन्नार या सुमेर में सुमेरियन (सुमेरवासी) लोगों ने सभ्यता को जन्म दिया था। सुमेरियनों के आदि पुरुष के वंशज राजा अक्षसूत्र (एक्सीसूथ्रोस, ज्युसुद्र या निसुद्र) के समय में वहाँ जल प्रलय हुई थी। यहूदी बाइबिल के अनुसार नूह के समय जल प्रलय हुई थी। यहूदी बाइबिल के अनुसार नृह के समय जल प्रलय हुई। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार भारत में जल प्रलय के नायक वेवस्तुव मनु थे। इससे स्पष्ट है कि जल प्रलय वास्तव में व्यापक घटना थी। विश्व की अलग अलग सभ्यताओं में इसका उल्लेख मिलता है। और सभी वर्णनों मे काफी समानता भी मिलती है।

सभी वर्णनों के अनुसार सात दिन - रात लगातार भारी वर्षा हुई और दूर दूर तर जल प्लावन हो गया। किसी नायक ने शक्तिशाली नौका के सहारे जीवन की रक्षा की और ऊँचे पर्वतीय क्षेत्र में शरण ली। प्रलय की चेतावनी दिये जाने तथा नौका बनाकर बचाव का परामर्श एवम् सहायता की बात का भी समान उल्लेख है। सभी सभ्यताओं मे समान जल प्रलय के नायकों के नाम अलग - अलग बताये गये हैं। यह अनुमान भी व्यक्त किया गया है कि जल प्रलय के एक ही नायक को स्थानाय भाषाओं में अलग अलग नाम दिये गये हैं। लेकिन यह सम्भावना भी प्रबल है कि विभिन्न प्रदेशों में अलग लोगों ने यह भूमिका निभायी होगी। बाइबिल में आदिम पुरुष आदम से जल प्रलय तक दस पीढियों का उल्लेख किया गया है। वास्तव में जल प्रलय से पूर्व का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है और इस बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता है।

भारत का प्राचीनतम राजवंश सूर्यवंश, मनुवंश व इक्ष्वाकुवंश कहलाता है। अतः माना जाना चाहिए कि भारत में इस वंश की स्थापना करने वाले सूर्य ही थे। राजा इक्ष्वाकु मनु के पुत्र थे। प्रलय मनु के समय में हुई थी। देवों ने मनु को चेतावना दी थी। उसी के आधार पर समय से नौका पर बैठकर मनु ने जीवन रक्षा की और नवीन युग के जनक युग पुरुष के रूप में स्थापित हुए।

जल प्रलय के पश्चात वैवस्तव मनु ने सरस्वती नदी के किनारे प्रथम राज्य की नींव डाली। प्रलय के समय देव, असुर, राक्षस, गन्धर्व, ब्रह्म, पिशाच, ऋषि, प्रजापति आदि विभिन्न कुलों के जो

गिने चुने लोग किसी प्रकार इतस्ततः जीवित बच गये थे, सब ऊँचे पर्वतीय स्थानों पर ही शरण लिए हुए थे। वे परस्पर अपरिचित और भिन्न आचार - विचार के होने के बावजूद परिस्थितिवश एकत्र थे और सबने मिलकर मनु से प्रार्थना की कि हे मनु! तुम दण्ड धारण करो। हम सब तुम्हे राजा मानते हैं। मनु ने शासन सम्भाल ते लिया, लेकिन अलग - अलग आचार विचार वाले लोगों को किसी एक विधान के तहत लाकर समाज में व्यवस्था स्थापित कर पाना बहुत कठिन था। मनु को कई बार विरोध का भी सामना करना पडा और उन्होनें बलपूर्वक विद्रोहों को दबाकर शान्ति स्थापित की

मनु ने विभिन् आचार विचार के लोगों के बीच जिस उपाय से सामाजिक समरसता स्थापित की, वह विश्व इतिहास में अद्‌वितीय है। मनु ने दण्ड विधान सभी नागरिकों के लिए समान रखा। मनु की व्यवस्था में भेदभाव कठोर, व्यावहारिक और उपयोगी है। साधारण नागरिक की अपेक्षा किसी अपराध के लिए राजा को हजार गुना दण्ड देने का विधान है। इसी प्रकार मन्त्री व अधिकारियों को उनके पदों के अनुपात में सैकडों गुना अधिक दण्ड देने की व्यवस्था है। राजकर्मी को भी आठ गुना दण्ड देने का विधान है सामान्य नागरिक की अपेक्षा ब्राह्मणों को 64 से 128 गुना तक दण्ड देने की व्यस्था है। क्षत्रिय को बत्तीस गुना व वैश्य को 16 गुना दण्ड देने का विधान है। जो विवेकशील शिल्पी हो तो उसे भी अज्ञानी की अपेक्षा आठ गुना अधिक दण्ड देने का आदेश है। आज यह कहना कठिन है कि वर्तमान मनुस्मृति में कितने विधान मनु के समय के हैं। और कितने बाद में परिवर्तित संशोधित कर दिये गये हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि विभिन्न वर्गों के निजी कानून की समस्या भी मनु के सामने थी। उन्होने उनका सर्वोत्तम समाधान भी निकाला। मनु ने कहा कि राज्य कुल गोत्र की दृष्टि से नहीं, योग्यता, कर्म व व्यवसाय को ध्यान में रखकर व्यक्ति से व्यवहार करेगा। व्यवसाय के आधार पर बुद्धिजीवी (ब्राह्मण), सैनिक (क्षत्रिय), व्यापारी (वैश्य) तथा शिल्पी (शूद्र) आदि अनेक वर्ण थे। रुचि व योग्यता के अनुसार देव, असुर, गन्धर्व आदि किसी कुल का व्यक्ति किसी वर्ण को अपना सकता था। वर्ण परिवर्तन के भी स्पष्ट नियम थे। आश्रम व्यवस्था के रूप में सभी के लिए समान शिक्षा, व्यवसाय या वर्ण चयन की स्वतन्त्रता, गृहस्थ जीवन में अजीविका, सेनानिवृत्त जीवन में समाजसेवा तथा अन्तिम चरण में वर्ण कुल आदि को त्याग कर सन्यासी के रूप में लोकशिक्षण को कर्तव्य निर्धारित किया गया।

सबसे बडी समस्या अलग - अलग पद्धति थी। यदि किसी एक को मान्यता दी जाती तो अन्य सभी विद्रोह कर देते। दूसरी ओर यदि सभी को अपनी पद्धति का पालन करने दिया जाता तो दूरियाँ तथा अलगाव बना रहता। मनु ने इसका समुचित समाधान निकाल लिया। उन्होनें ब्राह्म, प्रजापत्य, दैव, आर्ष, गन्धर्व, असुर, राक्षस, व पैशाच सभी आठ प्रकार के विवाहों को मान्यता दी सभी नागरिको को इस बात की स्वतन्त्रता दे दी गई कि जो भी युगल जिस विधि से चाहे, विवाह कर सकता है। प्रेम विवाह कि गन्धर्व पद्धति से अपहरण के उपाय का भी लाभ उठाया।

इस प्रकार मनु ने अपने कुल व गोत्र में विवाह का निषेध कर दिया और इसका कडाई से पालन हुआ। उन्होनें विवाह सम्बन्ध यथासम्भव दूर स्थित प्रदेश तथा भिन्न कुल में करना श्रेष्ठ माना।

इससे भी सामाजिक एकीकरण में सहायता मिली। कुछ ही पीढियों के बाद मनु के राज्य के लोग भूल गये कि वे देव, गन्धर्व, राक्षस आदि किस वर्ग के हैं। देवलोक के दक्षिण व असुर लोक के पूर्व में मनु का मानव लोक आदर्श राज्य के रूप में स्थापित हो गया। श्रेष्ठता के अभिमानी देवों ने भी मानव की श्रेष्ठता स्वीकार की।

❖❖ ❖ ❖❖

मनु का परिवार

वैवस्तव मनु के पिता विवस्वान (सूर्य) देव कुल के थे। वैवस्तव मनु के दस पुत्रों एवम् एक पुत्री का नाम मिलता है। दस पुत्र इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, दिष्ट, करूष तथा प्रषध्र थे। मनु पुत्री इला का विवाह चन्द्रमा के पुत्र वधु के साथ हुआ था। बुध एवम् इला के पुत्र प्रतिष्ठान के इतिहास प्रशिद्ध राजा पुरुरवा थे। मनु के उत्तराधिकारी उनके बडे पुत्र इक्ष्वाकु हुए। इक्ष्वाकु वंश भारतीय इतिहास का सबसे प्रमुख राजवंश है। इक्ष्वाकु के भाइयों शर्याति, कुरुष, नृग आदि ने भी क्षत्रिय वर्ण चुना और राज्य स्थापित किये। मनु के आठवें पुत्र दिष्ट व नाभाग ने वैश्य वर्ण स्वीकार किया और व्यापार की नींव डाली। अन्य पुत्रों ने ब्राह्मणत्व अङ्गीकार किया। मनु के परिवार के लोगों ने ही अलग अलग वर्ण स्वीकार किया।

मनु द्वारा स्थापित राज्य प्रमुख नदी सरस्वती के किनारे सारस्वत प्रदेश था। सारस्वत अथवा सप्त सिन्धु प्रदेश के पश्चिमी भाग में असुर लोक प्रारम्भ हो जाता था। उत्तर में मित्र एवम् संरक्षक देवों का त्रिविष्टप या देवलोक स्थित था। अतः मनु के राज्य का विस्तार पूर्ण में ही सम्भव था। मनु पुत्र इक्ष्वाकु ने पूर्व की ओर कदम बढाने आरम्भ कर दिये थे। इक्ष्वाकु के राज्य में लम्बे समय तक वर्षा न होने से भीषण सूखा पडने तथा नदियाँ तक सूख जाने का उल्लेख मिलता है।

प्रमुख इतिहासकार प्रो0 विष्णु श्रीधर वाकणकर ने उल्लेख किया है कि उस सूखे से त्रस्त होकर इक्ष्वाकु के अलावा गान्धार के यदु, तुर्वसु, आनय, दक्षु आदि भी पूर्व की ओर बढ गये थे। सप्तसिन्धु के पश्चिमी नगर हरियुपीय में उस समय कवि चायमान राजा थे इक्ष्वाकु के द्वारा द्वारा पराजित होने पर उनके भाई अभ्यवर्तिन चायमान राजा बने और उसके बाद उनकी आठ पीढियों ने वहाँ पर राज्य किया। सारस्वत प्रदेश के ठीक पूर्व में स्थित कुरुक्षेत्र से प्रयाग तक के क्षेत्र को आर्यावर्त नाम दिया गया। वह भी मानव लोक का ही भाग था। बाद में राजधाना अयोध्या में स्थापित की गई। अयोध्या उपर्युक्त आर्यावर्त के पूर्वोत्तर भाग में सरयू नदी के तट पर बसाया गया नगर था। अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशियों ने लम्बे समय तक शासन किया। उनमें कई चक्रवर्ती सम्राट भी हुए। जिनका राज्य हिमालय से समुद्र तक विस्तृत था और दवलोक तक रथ ले जाने की प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

भारतीय काल विभाजन की परम्परा में मनु से कृतयुग या सत्ययुग का आरम्भ माना जाता है। उस युग का समाज अत्यन्त सरल था और उस व्यवस्था में छल, कपट, भ्रष्टाचार, हिंसा एवम् चोरी - डकैती जैसे अपराधों के लिए कोई स्थान ही नहीं था। इसीलिए पौराणिक शैली में कहें तो समाज में पूर्ण धर्म था, सभी

लोग सत्यपथ के अनुयायी थे। इसलिए वह सत्ययुग था। कार्ल मार्क्स के शब्दों में वह अदिम साम्यवाद की व्यवस्था थी। साम्यवादी चाहे तो मनु और इक्ष्वाकु को विश्व का प्रथम साम्यवादी शासक कह सकते हैं।

धार्मिक एवम् दार्शनिक दृष्टि कोण से वेद ही एक मात्र धर्म था। वह युग प्राकृतिक शक्तियों का महत्व खोजने का था। सूर्य से गर्मी एवम् प्रकाश, वायु से प्राण, वनस्पतियों से भोजन, वस्त्र, आवास व चिकित्सा तक के उपयोग उन्हें महत्वपूर्ण बना रहे थे। ईश्वर की दिव्य शक्तियाँ इन्हीं व्यक्त मानी जाती थी और प्रकृति के संरक्षण का प्रयास किया जाता था। अग्नि से शीत से बचाव होता था और फल, अन्न व मांस भूनकर भोजन भी तैयार किया जा सकता था। अग्नि में विशेष वनस्पतियों को डालने से सुगन्धित वायु प्रसन्नतादायक होती थी। ऐसी विशेष वनस्पतियों की पहचान की जाने की जाने लगी और अग्निहोत्र का विकास हुआ था। हिमालय और तराई के शीतल प्रदेशों के लिए यह अग्निपूजा बहुत उपयोगी सिद्ध हुई।

❖❖ ❖ ❖❖

इक्ष्वाकु के वंशज

मनु पुत्र राजा इक्ष्वाकु के बाद मनु के वंशजों ने भारत के विभिन्न भागों में फैलना प्रारम्भ कर दिया था। मनु के नाती पुरुरवा प्रतिष्ठान के राजा थे। उनकी सन्तान के विभिन्न दिशाओं में जाने का उल्लेख मिलता है। मनु पुत्र करुष के वंशज पराक्रमी क्षत्रिय हुए। मनु के एक पुत्र दिष्ट का वंश वैश्य हो गया था। दिष्ट के पुत्र नाभाग वाणिज्य में प्रवीण हुए और उन्होंने व्यापार को बढावा दिया। मनु के ही एक पुत्र पृषध्र को पशु हत्या के कारण शूद्र माना गया। उन्होनें पशु चर्म से सम्बन्धित शिल्प कला अपनायी। उस समय पत्थर, वनस्पति और पशु चर्म ही जीवन के लिए उपयोगी संसाधन थे। मनु के पौत्र नाभाग ने वैश्य वर्ण अपनाया था लेकिन उनके सात पीढियों के बाद चाक्षुस के पुत्र विंश पराक्रमी क्षत्रिय हुए।

राजा इक्ष्वाकु के सौ पुत्रों का उल्लेख किया गया है। बहुपत्नी प्रथा के उस युग में अनेक पत्नियों से सौ पुत्रों का होना असम्भव नहीं माना जाना चाहिये। इक्ष्वाकु के पसाच पुत्र मानव संस्कृति का सन्देश लेकर दक्षिण की ओर तथा 84 उत्तरपथ के विभिन्न क्षेत्रों में चले गये।

राजा इक्ष्वाकु ने एक धार्मिक अनुष्ठान किया। खाद्य पदार्थ जुटाने का दायित्व इक्ष्वाकु ने अपने पुत्र विकुक्षि को सौंपा। विकुक्ष ने शिकार कर अनेक पशु एकत्र किये और रास्ते में भूख लगने पर एक खरगोश को खा लिया था। पुरोहित ने इक्ष्वाकु से कहा कि तुम्हारे पुत्र ने एक खरगोश को खाकर मांस को अपवित्र कर दिया है। उनके कहने से पिता ने पुत्र विकुक्षि का त्याग कर दिया। शशक (खरगोश) को खा लेने पर पुरोहित ने शशाद नाम भी दिया।

पुराण उस पुरोहित का नाम वशिष्ठ ही लिखते हैं। वशिष्ठ को वरुण का पुत्र कहा गया है। वरुण त्रिविष्टप के निवासी देव जाति के थे। अतः सम्भव है कि मनु द्वारा सारस्वत प्रदेश में राजव्यवस्था की स्थापना किये जाने पर धार्मिक व्यवस्था के लिए वरुण ने अपने पुत्र वशिष्ठ को वहाँ भेजा हो और बाद में वशिष्ठ का कुल ही

इक्ष्वाकु वंश का पुरोहित बना रहा हो।

कुल पुरोहित के कहने पर इक्ष्वाकु ने विकुक्षि का त्याग कर दिया लेकिन प्रजा और उनके भाइयों ने त्याग नहीं किया। अतः इक्ष्वाकु की मृत्यु के बाद विकुक्षि ही राजा बने। विकुक्षि शशाद के पुत्र पुरञ्जय बड़े प्रतापी राजा हुए। निश्चित रुप से वे तत्कालीन युद्ध कला में श्रेष्ठ थे। उनके समय में असुरों से युद्ध में देवगण पराजित हो गये थे। देव एवम् असुर पुराने प्रतिदवन्दवी थे और एक दूसरे की रणनिति से भलीभांति परिचित थे। असुरों ने भौतिक विकास देवों से अधिक कर लिया था। अतः युद्ध में वे भारी पड़ते थे। ऐसे में देवों ने इक्ष्वाकु वंशी पुरञ्जय से सहायता मांगी। उन्होंने परिस्थिति का भरपूर लाभ उठाया और कड़ी शर्त रखी। देवों को उनकी बात माननी पड़ी। उन्होंने युद्ध के इन्द्र के कन्धे पर बैठकर युद्ध किया तथा असुरों पर विजय प्राप्त की। इस युद्ध के बाद पुरञ्जय ककुत्स्थ नाम से प्रसिद्ध हुए। पुरञ्जय ककुस्थ के पुत्र अनेना हुए और उनके पुत्र महान् सम्राट पृथु हए। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि भारत के सम्राटों के अनुक्रम में मनु के बाद प्रमुख नाम चन्द्रवंशी ययाति का माना जाता है। मनु के बाद ययाति पांचवें राजा थे जो सम्राट माने गये। इसका अर्थ यह हुआ कि ययाति ने इक्ष्वाकुओं को पराजित किया था, तभी चक्रवर्ती सम्राट बन सके होंगे। देवों नेतृत्व कर असुरों को पराजित करने वाले पुरञ्जय पर तो ययाति की विजय सम्भव नही लगती। अतः सम्भावना यही है कि प्रतिष्ठान के राजा ययाति ने अनेना को पराजित किया होगा। लेकिन इक्ष्वाकुओं पर चंद्रवशियों की विजय स्थायी नहीं हो सकी। अनेना के पुत्र पृथु ने ही पराजय को विजय में बदल दिया और इतिहास काल का पहला सुनियोजित युद्ध अभियान चलाया। उन्होंने लगभग पूरे उत्तरापथ को जीता और वास्तिक अर्थों में इतिहास के प्रथम दिग्विजयी सम्राट बने। त्रिविष्टिप या स्वर्ग के देवों के साथ मैत्री सम्बन्ध तो थे ही।

❖❖ ❖ ❖❖

पृथुद्वारा कृषि का आरम्भ तथा असुरों का आक्रमण

राजा पृथु सूर्य वंश की सातवी पीढ़ी में हुए थे। इस वंश के संस्थापक या मूल पुरुष विवस्वान् (सूर्य) थे। उनके पुत्र जलप्रलय के नायक तथा भारत के प्रथम राजा वैवस्वत मनु हुए। मनुपुत्र इक्ष्वाकु के उत्तराधिकारी उनके पुत्र विकुक्षि शशाद थे। विकुक्षि के पुत्र पुरञ्जय हुए। पुरञ्जय के पुत्र अनेना और उनके पुत्र राजा पृथु हुए। इस प्रकार राजा पृथु के समय में प्रलय को हुए लगभग दो शताब्दियां बीत चुकीं थीं। इतने समय में जनसङ्ख्या पर्याप्त हो गयी थी और प्राकृतिक वनस्पति और वन सम्पदा तथा आखेट से प्राप्त पशुओं के मांस से निर्वाह कठिन होने लगा था। इस समस्या से उबरने के लिए पृथु ने कृषि का विकास किया। सभ्यता के विकास में यह सबसे बड़ी तकनीकी क्रान्ति थी। भूमि में बीज बो कर इच्छानुसार वनस्पति उगा लेने की तकनीकी विकसित हो जाने से भरण-पोषण की समस्या सदा के लिए हल हो गयी थी। प्रमुख नदियों सरस्वती, सिन्धु तथा उनकी सहायक नदियों से सिंचित उपजाऊ भूमि के कारण पृथु का राज्य काफी समृद्ध व विकसित हो गया।

कृषि की तकनीक के विकास से कृषि पर निर्भरता बढ़ी और

प्रकृति पर निर्भरता कम हुई। अन्न उत्पादन में मानव प्रयास की प्रधानता होने से उस पर अधिकार की भावना उत्पन्न हुई और भण्डारण की आवश्यकता अनुभव हुई। जो लोग भूमि को जोतने, बोने और फसल तैयार करने में श्रम करते थे, उत्पन्न अन्न पर स्वाभाविक रुप से उनका अधिकार होता था। अतः समाज के नये वर्ग कृषक समुदाय का जन्म हुआ। अन्न भण्डार गृह बनाये गये और आवश्यकता के समय अतिरिक्त अन्न का अन्य वस्तुओं व सेवाओं के बदले आदान-प्रदान भी प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार कृषक वर्ग वैश्य वर्ग में माना गया।

उस समय उत्पादन और वितरण के साधनों पर मुख्य रुप से कृषक वर्ग का अधिकार था। उसके बाद कृषि उपकरणों का निर्माण करने वाला शिल्पी वर्ग भी अस्तित्व में आया। कृषि की सहायता के लिए इन उपकरणों का निर्माण कृषकों के लिए होता था। ये शिल्पकार शूद्र वर्ण में माने गये। शूद्र शब्द का अर्थ ही है साफ करना, पवित्र बनाना, उपयोगिता आकार देने वाले शिल्पकार शूद्र हूए। इस प्रकार कृषि का प्रारम्भ होने पर परस्पर सामाजिक निर्भरता का युग आरम्भ हुआ। हमारी कालगणना के अनुसार पृथु का समय अथवा कृषि का आरम्भ 35वीं शताब्दी युगाब्द पूर्व अथवा इस समय से लगभग साढ़े आठ हजार वर्ष पूर्व हुआ था। अभी सत्ययुग का प्रथम चरण था। राष्ट्र शासन का मुख्य कार्य सुरक्षा भी शिक्षा, उत्पादन व वितरण की तरह समाज का एक अङ्ग था।, उसका नियन्ता व भाग्य विधाता नहीं। पृथु का महत्व संस्कृति प्रसार में भी हैं पृथु की साम्राज्य स्थापना में सैनिक शक्ति का योगदान कम और कृषि तकनीक का अधिक था। ऐसा कहा गया है कि जहाँ तक भूमि जोती गयी, कृषि हुई, वह सारी भूमि पृथु के राज्य में मानी गयी। अर्थात् पृथु ने ज्ञान-विज्ञान का प्रसार कर राज्य बढ़ाया।

राजा पृथु के उत्तराधिकरी उनके पुत्र विष्टराश्व हुए। विष्टराश्व के पुत्र चन्द्र और उनके पुत्र युवनाश्व प्रथम हुए। इन तीनों पीढ़ियों ने लगभग एक शताब्दी तक शासन किया। इस शताब्दी की कोई घटना इतिहास में उल्लिखित नहीं है। कृषि कार्य का क्रमशः विकास का राजनीतिक प्रभाव इतना अवश्य हुआ कि स्वर्ग के देवगण खाद्यान्न के लिए भारत पर निर्भर होते गये। इससे भारत का महत्व स्वर्ग के बढ़ गया।

मानव जाति के लिए स्वर्ग को सांस्कृतिक केन्द्र और पुण्य लोक माना जाता रहा हैं। लेकिन अब स्वर्ग के लिए भारत का महत्व आर्थिक, राजनीतिक व सैनिक दृष्टि से बढ़ाने लगा। हमारे देश के विद्वान्, कृषक और शक्तिशाली राजा स्वर्ग में सम्मान पाने लगे। स्वर्ग के पर्वतीय प्रदेश में कृषि कर्म कठिन था। अतः पुज्य देवों के लिए अन्न देने की परम्परा स्थापित की गयी। बिना श्रम के खाद्यान मिलने से देवों की आध्यात्मिक व सांस्कृतिक उन्नति तो हुई, लेकिन इस स्थिति ने देवों को अकर्मण्य, अहंकारी और विलासी भी बना दिया। इसके दुष्परिणाम कुछ समय बाद देवासुर सङ्ग्राम में पराजय व सामाजिक पतन के रुप में सामने आये। युवनाश्व प्रथम के पुत्र प्रसिद्ध राजा श्रावस्त हुए। उनका महत्वपूर्ण योगदान श्रवस्ती नगर की स्थापना है। यह श्रावस्ती नगर राम के पुत्रों लव कुश के समय से गौतम बुद्ध के बाद मनुवंश के अन्तिम राजा सुमित्र के समय तक उत्तर कोशल राज्य की प्रतिष्ठित राजधानी और भारत का प्रमुख नगर बना रहा।

श्रावस्त के पुत्र वृहदश्न हुए। उनके पुत्र कुवलयाश्व थे। कुवलयाश्व के समय में घुन्धु नामक दैत्य राजा ने पश्चिमी सीमा पर ऋषि आश्रमों को ध्वस्त करना आरम्भ कर दिया था। कुवलयाश्व ने घुन्धु दैत्य का सफलतापूर्वक मुकबला किया और युद्ध में उसे मार गिराया।

घुन्धु को मारने के कारण राजा कुवलयाश्व को धुन्धुमार की उपाधि मिली। हमारे देश पर हुआ यह पहला आक्रमण था। जो बुरी तरह विफल कर दिया गया। इससे पुरञ्जय ककुत्स्थ ने भी युद्ध किया था, लेकिन वह स्वर्ग प्रदेश की सहायता के लिए था। वह हमारे देश का अपना युद्ध नहीं था।

शाक्तिशाली असुर लोक के दैत्य और दानव अनेक बार स्वर्ग से हुए युद्धों में भी विजय प्राप्त करते थे। हमारे देश पर पहले आक्रमण में ही उनकी पराजय से उस समय तक मानव संस्कृति व सभ्यता का पर्याप्त विकास सिद्ध होता है। यह ऐतिहासिक युद्ध मनु के लगभग

चार शताब्दी पश्चात अर्थात् 32 शताब्दी युगाब्द पूर्व हुआ। अब तक उस युद्ध को लगभग 83 शताब्दियां बीत चकी हैं। वह विजय आज भी हमारे लिए प्रेरणास्रोत है।

उस युद्ध में जनहानि व धनहानि भी दोनों पक्षों को काफी हई थी। असुरों ने लगभग इक्कीस हजार मानव सेना का संहार किया। राजा कुवलयाश्य के अनेक पुत्र भी उस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। केवल तीन पुत्र दृढ़ाश्व, चन्द्राश्व व कपिलाश्व ही विजयी होकर युद्ध क्षेत्र से लौट सके थे। आश्रमों व ग्रामों के विध्वंस व हजारों वीरों के बलिदान से मिली विजय ने मानव शक्ति की श्रेष्ठता स्थापित कर दी।

सम्राट मान्धाता

दैत्य विजेता सम्राट कुवलयाश्व धुन्धुमार के बाद पीढ़ियों तक सीमाओं पर शान्ति रही और सांस्कृतिक और भौतिक विकास की प्रक्रिया चलती रही। कुवलयाश्व के बाद उनके पुत्र दृढ़ाश्व ने शासन संभाला। उनके पुत्र हर्षश्वस् हुए। उनके पुत्र निकुम्भ और उनके पुत्र अमिताश्व हुए। उनके पुत्र कुशाश्व तथा कुशाश्व के पुत्र प्रसेनजित् के पुत्र युवनाश्व द्वितीय थे। बहुत दिनों तक उनके कोई सन्तान नहीं हुई। महर्षियों ने राजा युवनाश्व द्वितीय को बहुत दिनों तक अपने आश्रमों में रखा। काफी समय के बाद पुत्रेष्टि यज्ञ सफल हुआ और बालक मान्धाता का जन्म हुआ। मान्धाता को जन्म से ही स्वर्ग के सम्राट इन्द्र ने पाला। इन्द्र ने ही उनका नाम मान्धाता रखा था।

आगे चलकर मान्धाता प्रतापी विश्वविजयी सार्वभौम चक्रवर्ती सम्राट बने। यहाँ पर हमारी परम्परा के अनुसार राजाओं की श्रेणियों को समझ लेना भी आवश्यक है। हमारे इतिहास में क्षेत्रों या जनपद के शासकों को राजा कहा जाता है। कई जनपदों पर विजय प्राप्त करने के बाद सम्राट की पदवी प्राप्त होती है। हिमालय से समुद्र तक सम्पूर्ण राष्ट्र का शासन करने वाला सम्राट चक्रवर्ती कहलाता है। सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त करने वाले सम्राट मान्धाता को सार्वभौम सम्राट कहा जाता है। मान्धाता के विषय में कहा गया है कि भूमण्डल के सातों महाद्वीपों पर उनका शासन था और सूर्य के उदयस्थान से अस्त होने के स्थान तक सम्पूर्ण विश्व मान्धाता के राज्य में सम्मिलित था।

सम्राट मान्धाता की विश्ववविजय मानव सांस्कृति की सम्वाहक बनी। मध्य एशिया एवम् पश्चिम का वैदिक संस्कृति से परिचय हुआ। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं में इस बात का उल्लेख मिलता है कि वहां लोगों ने भारत की दिशा से जाकर सभ्यता का प्रसार किया और ज्ञान विज्ञान शिक्षा दी। दूसरी ओर भारत के प्राचीन साहित्य में यूनानियों, शकों तथा हूणों से पूर्ण किसी बाहरी जाति के आने का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। इससे यह बात सिद्ध होती है कि मान्धाता के विश्ववविजय अभियान से ही भारत का परिचय विश्व के विभिन्न क्षेत्रों से हुआ। सुदूर उत्तरी ध्रुव क्षेत्र तक भारतीय अभियान दलों के जाने का उल्लेख मिलता है, लेकिन वहाँ से किसी के आने की चर्चा नहीं है। मान्धाता भारत के पहले सम्राट थे जिन्होंने देश की सीमाओं से बाहर अभियान चलाया। भारत का चक्रवर्ती सम्राट बनने के बाद उन्होंने उत्तर पश्चिम की ओर प्रयाण किया। मध्य एशिया में उनकी विजयों के उल्लेख मिलते हैं। वैसे भी उनके समय में विश्व की महत्वपूर्ण शक्तियां या सभ्यतायें स्वर्गलोक या त्रिविष्टप, मानव लोक और असुर लोक ही थे। मध्य एशिया से उत्तर तथा पश्चिम की ओर बढ़ना कठिन नहीं था क्योंकि वहां उस समय कोई सङ्गठित राष्ट्र या विकसित सभ्यता नहीं थी। मुख्य प्रतिरोध या सङ्घर्ष पश्चिमी सीमा पर असुर संस्कृति से ही होना था। वह भी मान्धाता के समय अजेय नहीं थी। मान्धाता के अभियान के फलस्वरुप असुर शक्ति की अपराजेय दीवार टूट गयी और मेसोपोटामिया (इराक) में सभ्यता का आरभ्म हो सका। वहां की स्थानीय मान्यताओं के अनुसार पूर्व की ओर से यह अभियान दल समुद्री मार्ग से वहां पहुंचा। इस दल का नेतृत्व अयोनिज ने किया था। उन्होंने वहां के आखेटक लोगों को कृषि तकनीक से परिचित कराया। उन्होंने वहां कृषि और शासन व्यवस्था स्थापित की और कई पीढ़ीयों तक राज्य किया।

इतने महान् सम्राट मान्धाता का काल निर्धारण भी कर लेना चाहिये। मान्धाता सूर्यवंश की इक्कीसवीं पीढ़ी में हुए थे। वह सत्ययुग का तीसरा चरण था। उस युग के राजाओं का शासनकाल सामान्यतः तीस से चालीस वर्ष के बीच रहा था। अतः एक शताब्दी में तीन पीढ़ियों का शासनकाल माना जा सकता है। इस प्रकार मान्धाता का समय सत्ययुग की आठवीं शताब्दी है। अतः विश्ववविजय मान्धाता वर्तमान समय से लगभग आठ हजार वर्ष पूर्व हुए थे। सम्राट मान्धाता का विवाह शतबिन्दु की पुत्री के साथ हुआ था। पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचकुन्द उनके तीन पुत्र थे। अनेक रानियों से मान्धता की पचास पुत्रियां थी। मान्धाता के तीनों ही पुत्र अपने पिता की तरह ही पराक्रमी थे। उन्होंने सफलतापूर्वक मान्धता के विश्व साम्राज्य की रक्षा की और पाताल तक विद्रोहों का दमन भी किया। मान्धाता की पचास पुत्रियों का विवाह बह्वृच के पुत्र महर्षि सौभरि के साथ हुआ था।

❖❖ ❖ ❖❖

पुरुकुत्स द्वारा रसातल के मौनेय गन्धर्वों का दमन

मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स भी पिता के समान पराक्रमी थे । उन्होंने रसातल में शक्तिशाली गन्धर्वों का दमन किया था। उस समय पश्चमी हिमालय के निकट मध्य एशिया में रहने वाले गन्धर्वों की मौनेय शाखा का अधिपत्य रसातल देश में हो गया था। रसातल देश भी पाताल लोक के अन्तर्गत माना जाता है। यहाँ मुख्य रूप से नाग कुल का वर्चस्व था।

मौनेय गन्धर्वों ने नागकुल पर विजय प्राप्त कर ली और उनके अधिकारों, सम्पत्तियों एवम् रत्नों पर कब्जा कर उन्हें खदेड़ दिया। नागकुल के प्रमुख वैकुण्ठ में अपने संरक्षक विष्णु से मिले और स्थिति से अवगत कराया। विष्णु ने उनसे कहा कि सम्राट मान्धाता ने विश्वविजय किया है। वे सप्तद्वीपा भूमण्डल के एकछत्र सम्राट हैं। अपने साम्राज्य में सुव्यवस्था स्थापित करना भी उनका ही दायित्व है। तुम लोग मान्धाता के पुत्र पुरुकुत्स से ही कहो। वे अवश्य न्याय व्यवस्था स्थापित करेंगे।

इसके बाद नागों ने पुरुकुत्स को स्थिति बतायी। वास्तव में विश्वविजय उतना कठिन कार्य नहीं है जितना कठिन है विश्व साम्राज्य की सुरक्षा और सुव्यवस्था स्थापित करना। पुरुकुत्स को विश्व साम्राज्य तो अपने पिता मान्धाता से उत्तराधिकार में मिला था, लेकिन उस पर शासन उन्होंने अपनी योग्यता के बलबूते पर ही किया। पुरुकुत्स को पृथ्वी से रसातल ले जाने और वहाँ की भौगोलिक एवम् राजनीतिक स्थितियों का मार्गदर्शन करने का कार्य नागराज की बहन नर्मदा ने किया था।

पुरुकुत्स ने रसातल में गन्धर्वों को परास्त किया और नगाकुल की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की। इस अभियान की सफलता के बाद पुरुकुत्स अपने देश लौट आये। उनके लिए इस प्रकार के विद्रोहों को दबाना, शान्ति एवम् सुव्यवस्था स्थापित करन तो सहज स्वाभाविक कार्य था, लेकिन नगाकुल के लिए यह बहुत बड़ी उपलब्धि थी। इस अभियान के दौरान पुरुकुत्स और नर्मदा साथ में रहे, परस्पर घनिष्ठता हुई और बाद में दोनो का विवाह हो गया। नागों राजकुमारी नर्मदा का सम्मान बहुत बढ़ गया। वह उनके लिए मुक्तिदात्री बन गयी थी। जो नर्मदा का नाम भी ले ले, वह नागों के लिए सम्मानित व्यक्ति होता था। उनके प्रिय व्यक्ति के सभी अपराध क्षम्य थे। नागों को पुरुकुत्स की ओर से भी सुरक्षा प्राप्त थी।

अब यह भी आवश्यक है कि पाताल लोक, रसातल, नागकुल तथा गन्धर्वों के विषय में भी परिचय प्राप्त कर लिया जाये। प्राचीन काल के इतिहास में देव, असुर एवम् मानव लोगों के साथ पाताल लोक का भी बहुत महत्व है। प्राचीन काल के अनेक प्रसंगों में पाताल का उल्लेख मिलता है। पाताल सभ्यता एवम् संस्कृति की दृष्टि से स्वर्ग तथा पृथ्वी की अपेक्षा कम विकसित था। राजनीतिक दृष्टि से पाताल में नागकुल ही सर्वाधिक प्रभावशाली था। पाताल का नागकुल वास्तव में उसी नागकुल की शाखा थी जिसकी एक प्रमुख शाखा शेषनाग कुल के नाग में मध्य एशिया में प्रभावशाली स्थिति में थी।

पाताल लोक जम्बू द्वीप अथवा एशिया की विभिन्न सभ्यताओं से प्रभावित रहा ही, राजनीतिक दृष्टि से उस क्षेत्र पर देव, मानव तथा असुर शक्तियों का प्रभाव बना रहा। समय-समय पर इन्हीं लोगों ने वहाँ शासन भी किया। यह भी सत्य है कि उस युग में उतनी दूर के क्षेत्र पर लम्बे समय तक केन्द्र से शासन कर पाना बहुत ही कठिन था। अतः स्थानीय राजा लगभग स्वतन्त्र ही होते थे।

अब महत्वपूर्ण बात यह है कि यह पाताल लोक वहाँ कहाँ स्थित था। इस विषय में अधिकतर विद्वानों का मत है कि भूमण्डल के पश्चमी गोलार्द्ध को ही पाताल कहा जाता था। यह भारत के ठीक नीचे पड़ता था और पूर्वी तथा पश्चिमी दो समुद्रों से यात्रा करके वहाँ पहुंचने में लगभग समान दूरी तय करनी पड़ती थी। निश्चित रूप से वह महीनों की लम्बी उबाऊ यात्रा होती थी। पाताल लोक के सात प्रदेश माने जाते हैं, उसमे मुख्य पाताल के अलावा रसातल भी बहुत महत्वपूर्ण देश रहा है। अतल, वितल, सुतल, नितल, महातल, गभस्तिमान् तथा रसातल महत्वपूर्ण क्षेत्र थे। ये राजनीतिक इकाई राष्ट भी हो सकते हैं और प्रमुख द्वीप भी। वर्तमान भू-मण्डल पर इनकी पहचान स्पष्ट रूप से कर पाना कठिन है। पाताल लोक में आस्ट्रेलिया ग्रीन लैण्ड तथा उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका सम्मिलित माने जा सकते है।

❖❖ ❖ ❖❖

सत्ययुग के अन्तिम चरण में राजनीतिक उथल-पुथल

पुरुकुत्स की पत्नी नर्मदा से उत्पन्न पुत्र त्रसद्दस्यु उनके योग्य उत्तराधिकारी हुए। त्रसद्दस्यु के पुत्र अनरण्य थे। उनके राज्यकाल में आध्यात्मिक विद्या की उल्लेखनीय प्रगति हुई। सम्राट अनरण्य की पुत्री का विवाह पिप्पलाद ऋषि के साथ हुआ था। प्रश्नोपनिषद् के नायक उनके दामाद ही हैं। सम्राट अनरण्य का शासन अब से 7800 वर्ष पूर्व था।

एक उल्लेख के अनुसार एक युद्ध में सम्राट अनरण्य को वीरगति प्राप्त हुई थी। विष्णु पुराण के अनुसर अनरण्य के दौरान अनरण्य का वध किया था। यहाँ यह स्पष्ट समझ लेना चाहिए कि अनेक रावण होने का तथ्य स्पष्टतः माना गया है। राम के समकालीन लंका नरेश रावण रामकथा के साथ ही अधिक प्रसिद्ध हो गये हैं। सम्राट अनरण्य ओर राम के बीच चालीस से अधिक पीढियां हो गयी हैं। अनरण्य सत्ययुग के तृतीय चरण में हुए थे जबकि राम त्रेता युग के अन्त में हुए थे। अतः निश्चित रूप से अनरण्य का वध करने वाले रावण और राम के हाथों मारे गये रावण अलग-अलग व्यक्ति थे। कुछ लोगों का यह भी मानना है कि रावण लंका के राजाओं की पदवी थी। मेवाड़ के राजाओं को राव कहा जाता रहा है, स्वर्ग के सम्राट को इन्द्र कहते थे और मिस्र के सम्राट फराओं कहलाते थे। रावण शब्द भी ऐसा ही पदनाम हो सकता है।

आज हम निश्चित रूप से यह नहीं बता सकते कि सम्राट अनरण्य के मारे जाने के बाद उनके पुत्र पृषदश्व राजधानी से भाग गये अथवा उन्हें युद्ध की कमान संभाली और विजयी हुए या रावण के संरक्षण में राजा बने रहे। पृषदश्व के पुत्र हर्यश्व हुए । उनके पुत्र हस्त थे। हस्त के पुत्र सुमना हुए, सुमना के पुत्र त्रिधन्वा तथा उनके पुत्र त्रय्यारुणि हुए। इन छह पीढ़ियों के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध नहीं हो सकी है। एक सम्भावना यह भी हो सकती है कि रावण से पराजय के बाद इन छह पीढ़ियों के समय डेढ़ से दो शताब्दी तक इस वंश को विशेष सैनिक सफलतायें न मिल सकी हों लेकिन निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है।

त्रय्यारुणि के पुत्र इतिहास प्रसिद्ध सत्यव्रत हुए। वे अनेक कारणों से प्राचीन इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। सत्यव्रत ने अनरण्य की वीरगति के बाद इस वंश को भारत में फिर से प्रतिष्ठा दिलायी और सफल दिग्विजय अभियान चलाया। उनके समय में वशिष्ठ परिवार का महत्व कम हुआ और विश्वामित्र की प्रतिष्ठा बढ़ी। विश्वामित्र क्रान्तिकारी और प्रगतिशील ऋषि के रूप में प्राचीन इतिहास में प्रसिद्ध हैं।

इतना निश्चित है कि सत्यव्रत से पूर्व भारत से रावण का राज्य समाप्त हो चुका था। चन्द्रवंश की ही एक शाखा हैहय वंश भी थी। उस वंश में एक राजा हुए हैं कृतवीर्य। उनके पुत्र थे सहस्रबाहु अर्जुन। उन्होंने रावण को बुरी तरह पराजित किया था और बन्दी बनाकर कारगार में डाल दिया था। सहस्रबाहु अर्जुन प्रलय के बाद भारत के 29 वें सम्राट थे। उनका शासनकाल सत्ययुग का अन्तिम चरण था। उस समय की तमाम घटनायें युग परिवर्तन की घोषणा स्वतः ही करने लगती हैं। सहस्रबाहु अर्जुन ने हिमालय से समुद्र तक सम्पुर्ण भारत में दिग्विजय की थी और चक्रवर्ती सम्राट बने थे। अनुमान किया जा सकता है कि रावण के हाथों अनरण्य के वध के बाद इक्ष्वाकुवंश की स्थिति कमजोर हो गयी है और बदली हुई राजनीतिक स्थिति में हैहय वंश प्रभावशाली हो गया। हैहयवंशियों का राज्य नर्मदा नदी के आसपास के क्षेत्र में था। अतः दक्षिण भारत में प्रभाव जमा रहे लंका से सीधा टकराव हैहयवंशियों का हुआ।

अपनी शक्ति बढ़ा लेने पर हैहयवंशियों ने लंका की उपेक्षा की । अतः हैहयों का दमन करने के लिए रावण ने आक्रमण कर दिया। वह आक्रमण बुरी तरह विफल रहा और रावण पराजित होकर बन्दी बना लिये गये। इस विजय से हैहयवंशियों की प्रतिष्ठा बढ़ी और उनमें राजनीतिक महत्वाकांक्ष पनपने लगी। सहस्रबाहु अर्जुन ने दिग्विजय कर भारत का चक्रवर्ती सम्राट बनने का सपना पाला। इतिहास प्रसिद्ध इक्ष्वाकु वंश के कमजोर होने के कारण उन्हें चुनौती देने वाली कोइ शक्ति वैसे भी भारत में शेष नहीं रह गयी थी, लेकिन इतिहास की गति कभी इतनी सरल रेखा में नहीं होती। हैहयों के पास चक्रवर्ती सत्ता बहुत दिन न रह सकी।

भारतीय राजाओं की गणना वैवस्वत मनु से प्रारम्भ की जाती है। इस क्रम में 29 वें राजा हैहयवंशीय अर्जुन कार्तवीर्य, 32 वें सूर्यवंशी सत्यव्रत तथा 33 वें हरिश्चन्द्र थे। सत्यव्रत भी दिग्विजय करने वाले चक्रवर्ती सम्राट थे, लेकिन विजय प्राप्त कर लौटने पर कुछ रूढ़िवादी पुराहितों ने सत्यव्रत पर परम्पराओं के उल्लंघन के तीन आरोप लगाये और उन्हें त्रिशंकु घोषित कर शासन के अयोग्य ठहरा दिया। बाद में उस समय के तेजस्वी एवम् क्रान्तिकारी ऋषि विश्वामित्र ने

चाण्डालों के सहयोग से यज्ञ का आयोजन किया और सम्राट सत्यव्रत को त्रिशंकु दोष से मुक्त घोषित कर दिया।

विश्वामित्र ने देवलोक के सम्राट इन्द्र का उस यज्ञ में आने के लिए आह्वान किया, लेकिन मानव लोक के सत्यव्रत त्रिशंकु के विरोधी पुरोहितों के प्रबल विरोध को देखते हुए इन्द्र ने स्वीकार कर दिया। इन्द्र को बताया गया कि सत्यव्रत दोषी है, त्रिशंकु है। विश्वामित्र परम्पराओं के प्रति गम्भीर नही हैं। अतः समुचित विचार किये बिना उन्होंने त्रिशंकु का यज्ञ सम्पन्न कराना स्वीकार कर लिया है। उस यज्ञ में देवों के जाने से मर्यादा नष्ट हो जायेगी।

सम्मानपूर्वक आह्वान इन्द्र द्वारा अस्वीकार कर दिये जाने पर तेजस्वी विश्वामित्र ने खुली चुनौती दी कि यदि इस यज्ञ में इन्द्र नहीं आये तो मानव लोक में उन्हे कभी नहीं आने दिया जायेगा। प्रगतिशील लोगों का नया देवलोक हम स्थापित कर देंगे। अन्त में परिस्थिति को समझकर इन्द्र ने देवगणों सहित यज्ञ में भाग लिया और विश्वामित्र के कारण सत्यव्रत को अपने साथ देवलोक ले जाने पर भी सहमत हो गये। लेकिन बाद में इन्द्र ने उन्हें स्वर्ग की राजधानी से निकाल दिया और त्रिशंकु नीचे उतर कर यक्ष लोक के उत्तर में दक्षिण हिमालय में रहने लगे।

अयोध्या में सत्यव्रत के पुत्र हरिश्चन्द्र को राजा बना दिया गया जिसे सत्यव्रत के विरोधियों ने भी स्वीकार कर लिया। यह ऋषि विश्वामित्र का ही प्रभाव था कि सत्यव्रत त्रिशंकु के पुत्र हरिश्चन्द्र संसार में सत्यवादी होके के प्रतीक बन गये। विश्वामित्र ने कड़ी परीक्षायें लेकर देवों को यह स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया कि चाण्डालों के बीच पला विश्वामित्र का क्षत्रिय शिष्य इन्द्र से कम सत्यप्रिय, नैतिक या आध्यात्मिक नहीं है। यही से कृत युग अर्थात् प्रथम कालखण्ड समाप्त होता है। उस समय सामाजिक एवम् राजनीतिक जटिलतायें कम थी। अतः लोग स्वभावतः अपेक्षाकृत अधिक नैतिक जीवन यापन करते थे।

विश्वामित्र को क्रान्तिकारी विचारक माना जाता है। विश्वामित्र पहले राजा थे और उनका नाम विश्वरथ था। इनकी राजधानी वर्तमान कन्नौज में थी। उस समय कन्नौज का नाम महोदय था। उस समय ऋषि राजाओं से अधिक प्रभावशाली थे। विश्वरथ राजा को ऋषि वशिष्ठ से अपमानित होना पड़ा था। अतः वे राजा से ऋषि बने। विश्वामित्र का उदय भारत के आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटना है। विश्वामित्र ने ऋषि बनते ही प्रगतिशील तार्किक विचारधारा को बौद्धिक जगत् में स्थापित किया। सौभाग्य से ही कहना चाहिये, दिग्विजयी सत्यव्रत को लकीर के फकीर लोगों ने त्रिशंकु घोषित कर दया तो विश्वामित्र ने उनका खुलकर समर्थन किया और देवराज इन्द्र तक से विरोध लिया।

विश्वामित्र वीर योद्धा एवम् कुशल प्रशासक तो थे ही, ऋषि के रूप में जनवादी क्रान्तिकारी विचारक तथा सक्रिय समाज सुधारक भी थे। इनके अलावा वे वनस्पति विज्ञानी भी थे। नारियल को विश्वामित्र की सृष्टि कहा जाता है। निश्चित रूप से कई पौधों के संश्लेषण से यह बहुउपयोगी पौधा उन्होंने विकसित किया होगा। गेहूँ तथा भैंस की उत्पत्ति का श्रेय भी विश्वामित्र को दिया गया है। वे हमारी संस्कृति के गुरुमन्त्र गायत्री मन्त्र के दृष्टा एवम् शोधपरक यज्ञों के पुरस्कर्ता भी थे।

❖❖ ❖ ❖❖

भार्गव राम (परशुराम)

अग्रे चत्वारो वेदाः, पृष्ठे सशरम् धनुः।।

भारतीय इतिहास के युगनायकों को अवतारी व्यक्तित्व माना गया है। दशावतार गणना में भार्गव राम अर्थात् लोकिविश्रुत भगवान् परशुराम को पञ्चम अवतार माना जाता है। भार्गव राम अर्थात् लोकिविश्रुत परशुराम और कौशिक विश्वामित्र का उदय सत्ययुग के अन्तिम चरण की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हैं। वास्तव में इन्हीं दोनों महामानवों को युग परिवर्तन का श्रेय जाता है। दोनों ही तपस्वी ऋषि होते हुए भी समाज और राजनीति को प्रभावित करने की विलक्षण क्षमता भी रखते थे। दोनों के पास तपोबल के साथ ही शस्त्रबल भी था। भार्गव राम मूलतः तपस्वी थे और परिस्थितिवश सामरिक क्षेत्र में उतरे थे। विश्वामित्र राज्य छोड़कर तपस्वी बने थे। दोनों ही क्रान्तिकारी व्यक्तित्व थे। सत्ययुग की अन्तिम शताब्दियाँ राजनीतिक दृष्टि से बहुत उथल-पुथल भरी रहीं और अनेक युद्धों में जीत-हार के साथ ही देशव्यापी गृहयुद्ध भी हुआ। उसमें विध्वंस के साथ ही देश को स्थिरता और सुव्यवस्था भी मिली। राजतन्त्र और धर्मतन्त्र के बीच सन्तुलन स्थापित हुआ।

इस सङ्घर्षपूर्ण अभियान में भार्गव राम महानायक बनकर उभरे।उनके जीवन का आदर्श था,

अग्रे चत्वारो वेदाः, पृष्ठे सशरम् धनुः। द्वयोरपि समर्थो अहम्, शापादपि शरादपि।।

इसका सन्देश यह है कि हमारे आगे चारो वेद होने चाहिए जिससे धर्म का रक्षण-पालन हो सके। परन्तु आवश्यक होने पर वेद को न मानने वाले लोगों को उचित मार्ग पर लाने के लिए धनुष-बाण जैसा शस्त्र-बल भी आपद्-धर्म के रूप में स्वीकार्य है।

सत्ययुग के प्रारम्भिक वर्षों में ही वरुण पुत्र वशिष्ठ ने देश में धर्मतन्त्र के माध्यम से शिक्षा व्यवस्था और नैतिकता के संरक्षण का कार्य प्रारम्भ किया था। समय के साथ अनेक अन्य ऋषि आश्रम भी अस्तित्व में आये। इन्हीं में भृगु ऋषि भी एक थे। भृगु ऋषि को पैरों और सिर को धूप से बचाने के लिए जूते और छाते का आविष्कार करने का भी श्रेय दिया जाता है। इस आविष्कार की कथा भी बड़ी रोचक है। भृगु के आश्रम में शस्त्र शिक्षा भी दी जाती थी। एक बार भृगु किसी नये अस्त्र का परीक्षण कर रहे थे। भृगु ऋषि अस्त्र को लक्ष्य पर फेंकते थे और उनकी पत्नी फिर उसी अस्त्र को उठा लाती थीं और वे पुनः लक्ष्यवेध करते थे। धूप प्रखर थी, अतः उनकी पत्नी के पैर धूप में जलने लगे। भृगु तो अपने कार्य में तल्लीन थे, लेकिन उनकी पत्नी का उत्साह जाता रहा। पहले तो भृगु अपनी पत्नी से रुष्ट हुए, लेकिन जब उन्होंने पैरों में छाले देखे तो ऋषि के प्रयास दूसरी दिशा में मुड़ गये और ताप से बचने का उपाय खोजने लगे। इसी प्रयास में भृगु को पादुका और छत्र बनाने में सफलता मिली। पादुका पहनकर और छत्र लेकर आराम से टहला जा सकता था और धूप से बचा जा सकता था। बाद में पादुका कंकरीली, पथरीली जमीन और पानी-कीचड़ से भी पैरों की रक्षा करने लगी और छाता वर्षा से भी बचने के काम आने लगा। निश्चित रूप से अन्य ऐसे आविष्कार भी ऐसी ही रोचक परिस्थितियों में हुए होंगे।

विश्वामित्र और भार्गव राम समकालीन थे। यह बात इन

दोनों महापुरुषों की जन्म-कथा से स्पष्ट है। चन्द्रवंशी राजा पुरुरवा के वंशज एक राजा कुशाम्ब हुए। उनके पुत्र गाधि कौशिक थे। गाधि की पुत्री सत्यवती भृगुपुत्र ऋचीक की पत्नी थी। सत्यवती तथा उनकी माता एक ही समय में गर्भवती थीं। ऋषि ऋचीक ने गर्भवती स्त्रियों के सेवन के लिए औषधि तैयार की। वह औषधि गर्भकाल में बालक के गुणों को प्रभावित करने की क्षमता रखती थी। क्षत्रिय गुणों वाली औषधि सत्यवती की माता के लिए तथा ब्राह्मण धर्म वाली औषधि अपनी पत्नी सत्यवती के लिए बताकर उन्होंने दे दी। बाद में सत्यवती की माता ने औषधियाँ बदल लीं।

इस प्रकार सत्यवती के पुत्र जमदग्नि हुए। औषधि बदल जाने का ज्ञान होने पर पत्नी के अनुरोध पर ऋषि ऋचीक ने निवारण औषधि दे दी थी, अतः उनके पुत्र जमदग्नि ब्राह्मण स्वभाव वाले रहे। जमदग्नि का विवाह इक्ष्वाकु कुल की कन्या रेणुका से हुआ। इन्हीं रेणुका-जमदग्नि के पुत्र युग नायक भार्गव राम थे जो परशुराम के नाम से लोकिविख्यात हैं। सत्यवती की माता ने ऋचीक ऋषि की औषधि के प्रभाव से विश्वामित्र जैसा तपस्वी बालक उत्पन्न किया जो राज परिवार में पलने के बाद भी ब्रह्मर्षि हुए। इस प्रकार विश्वामित्र और जमदग्नि समवयस्क थे। यहाँ यह ध्यान रखने योग्य तथ्य है कि कौशिक विश्वामित्र तथा भार्गव राम सत्ययुग के अन्तिम चरण में हुए और दशरथ-पुत्र राघव राम त्रेता युग के अन्त में।

उल्लेख मिलता है कि चन्द्रवंश की हैहय शाखा ने इक्ष्वाकुओं को पराजित किया था। सम्राटों के अनुक्रम में हैहयवंशी सम्राट् सहस्रबाहु अर्जुन के बाद लोकप्रिसद्ध सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र के पिता सम्राट् सत्यव्रत त्रिशङ्कु का नाम आता है। इससे स्पष्ट है कि सत्यव्रत ने दिग्विजय के समय हैहयों की शक्ति को समाप्त कर पुनः इक्ष्वाकुवंश की प्रतिष्ठा स्थापित की थी। भृगुवंशी जमदग्नि के पुत्र परशुराम ने एक महायुद्ध का नेतृत्व करते हुए सहस्रबाहु अर्जुन का वध कर दिया था। वह भारत का प्रथम व्यापक गृहयुद्ध माना जाता था।

सहस्रबाहु अर्जुन के दिग्विजय अभियान का सशक्त प्रतिरोध भार्गवों के ऋषि आश्रमों ने भी किया था। अतः हैहयों ने आश्रम भी उजाड़े तथा ऋषियों को भी अपमानित किया। इन्हीं युद्धों में ऋषि जमदग्नि भी मारे गये। ऋषि आश्रमों पर आक्रमण ही हैहयों को भारी पड़ा। उस समय की संस्कृति में ऋषि पूज्य थे और उनके आश्रम अनुलङ्घ्य माने जाते थे। आश्रमों में बिना अनुमति चक्रवर्ती सम्राट भी प्रवेश नहीं कर सकते थे। अतः जमदग्नि पुत्र राम ने आश्रमों पर आक्रमण के विरोध में हैहयों पर आक्रमण कर दिया।

कहते हैं कि जब युवा भार्गव ऋषि राम ने उजड़ा हुआ आश्रम तथा मारे गये पिता का मृत शरीर देखा तो उन्होंने ऐसे अत्याचारी राजाओं का अन्त करने का प्रण कर लिया। उन्होंने 21 बार युद्ध-अभियान चलाकर अनेक युद्ध किये तथा अधर्मी और अत्याचारी राजाओं का संहार किया। युद्ध में हैहय सम्राट् सहस्रबाहु अर्जुन मारे गये।उस युद्ध का नेतृत्व भार्गव ऋषि राम ने किया था। अतः वे ही विजेता सम्राट कहे जा सकते थे। इतिहास में एक तपस्वी ऋषि की सामरिक विजय अद्भुत घटना थी। ऋषि युद्धकला सिखाते तो थे, लेकिन स्वयम् कभी युद्ध नहीं करते थे। भार्गव ऋषि राम ने सफल युद्ध-अभियान का संचालन किया और शक्तिशाली क्षत्रियों के राज्यों का विनाश करके स्वयम् अधिपति हो गये। बाद में ऋषियों की

मध्यस्थता में तय हुआ कि ऋषि राम सम्राट नहीं बनेंगे। देश का शासन यथास्थान शासक कुल ही चलाते रहेंगे। आश्रम सीधे राजनीति में हस्तक्षेप नहीं करेंगे तथा पहले की तरह सम्राटों का ही यह दायित्व होगा कि वे आश्रमों की प्रतिष्ठा की रक्षा करते रहें।

❖❖ ❖ ❖❖

इतिहास के दर्पण में सत्ययुग का सत्य

वैवस्वत मनु से हरिश्चन्द्र तक लगभग तैंतीस पीढ़ियों का शासनकाल है। इसी अवधि को कृतयुग अथवा सत्ययुग कहा जाता है। यह अवधि कुल कितनी थी और वर्तमान समय से कितने वर्ष पूर्व थी, इसमें मतभेद के लिए पर्याप्त अवसर हैं। उस समय का कोई भी पुरातात्विक प्रमाण हमारे पास निर्विवाद रूप से उपलब्ध नहीं है। आधुनिक अर्थों में युक्त इतिहास भी कहीं उपलब्ध नहीं हुआ है। प्राचीन भारतीय इतिहास ग्रन्थों में सुरक्षित एकमात्र सुनिश्चित जानकारी पीढ़ी-दर-पीढ़ी राजाओं के नाम तथा महत्त्वपूर्ण राजाओं के समय की कुछ राजनीतिक और सामाजिक घटनायें हैं। इसी आधार पर हमने उस युग का इतिहास प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

प्राचीन भारतीय इतिहासकारों ने वैवस्वत मनु से गौतम बुद्ध तक के लम्बे इतिहास को चार युगों सत्ययुग, त्रेतायुग, द्वापर युग और कलियुग में विभाजित किया है। चारो युगों को मिलाकर महायुग या चतुर्युगी कहा जाता है। द्वापर युग का अन्त और कलियुग आरम्भ होने की तिथि निश्चित है जो 20 फरवरी 3102 ई.पू. को अपराह्न 2.27-30 बजे हुआ था। उस समय से गौतम बुद्ध के समय तक मगध में 32 क्रमागत राजा हुए, यद्पि कलियुग में महाभारत में मारे गये वृहदबल के बाद गौतम बुद्ध इक्ष्वाकु वंश की 25वीं पीढ़ी में हुए थे। वैवस्वत मनु से गौतम बुद्ध तक सूर्य वंश की सवा सौ से अधिक पीढ़ियाँ हुईं। युगाब्ध को कलि सम्वत् भी कहते हैं। इस प्रकार कलियुग की बारह शताब्दियों में इक्ष्वाकुवंश में 25 तथा मगध में 32 पीढ़ियाँ हुईं। चूँकि बाद में इतिहास में मगध प्रभावी रहा, अतः मगध की वंशावली अधिक महत्वपूर्ण और प्रामाणिक रूप से उपलब्ध है, ऐसा माना जाता है।

इस प्रामाणिक विवरण से इस बात की पुष्टि हो जाती है कि प्रत्येक युग में राजाओं की क्रमागत संख्या तीस से पैंतीस तक की अवधि लगभग बारह सौ वर्ष थी। हमें ज्ञात है कि गौतम बुद्ध का जीवनकाल युगाब्द 1215 से युगाब्ध 1295 तक अर्थात् 1887 ई. पूर्व से 1807 ई. पूर्व था। सत्ययुग गौतम बुद्ध से 4800 वर्ष पूर्व प्रारम्भ हुआ और 3600 वर्ष पूर्व समाप्त हुआ। अर्थात् सत्ययुग की अवधि 3600 वर्ष पूर्व से 2400 युगाब्द पूर्व अथवा 6702 ईस्वी पूर्व से 5502 ई. पू. तक थी।

वर्तमान समय से लगभग 8700 से 7500 वर्ष पूर्व तक रहा सत्ययुग सभ्यता के प्रारम्भ का समय था। कृषि कला, पशुपालन, सामूहिक जीवन, शासन-प्रशासन और शिक्षा व्यवस्था आरम्भ होना सामाजिक जीवन की मुख्य उपलब्धियाँ हैं। कहा जा सकता है कि मानव सभ्यता और संस्कृति के मूल आधार उस युग में स्थापित किये गये, सभ्यता के प्रमुख तत्वों का बीजारोपण हुआ। राजा

मान्धाता ने अपने समय के ज्ञात सभी शासकों पर विजय प्राप्त कर अन्तर्राष्ट्रीय सैनिक अभियान और विश्वविजय की भी अवधारणा को ज्नम दिया। कई राजाओं ने देश की पश्चिमी सीमा पर सफल युद्ध करके तथा उत्तरी सीमा पर त्रिविष्टप राज्य से सन्धि-सहयोग कर विदेश नीति को भी पुष्ट किया। हमारे देश की सीमाओं और संस्कृति का विस्तार धीरे-धीरे हिमालय से दक्षिण समुद्र (हिन्द महासागर) तक हो गया।

उसी युग में ऋषि शुक्राचार्य को असुरों का समर्थन लेना पड़ा था। शुक्राचार्य ने चमत्कारी औषधि अमृत रसायन का आविष्कार असुरों के सहयोग से ही किया था। स्वभावतः इससे असुर अधिक शक्तिशाली बने। आयुर्वेद में शुक्राचार्य का महत्व कम नहीं है, लेकिन विद्रोही होने के कारण उन्हें उतना सम्मान नहीं मिल सका। उन्होंने देवों और असुरों की विरोधी संस्कृतियों के बीच समन्वय का बहुत प्रयास किया था।

राजनीतिक दृष्टिकोण से पूरे सत्ययुग में इक्ष्वाकुवंश प्रभावी रहा, यद्यपि चन्द्रवंश के प्रमुख सम्राटों पुरूरवा, ययाति, नहुष आदि ने कई बार उल्लेखनीय सफलतायें प्राप्त कीं। चन्द्रवंश की हैहय शाखा ने इक्ष्वाकुओं को पराजित किया। चन्द्रवंशी रजि ने देवों की ओर से युद्ध करके दैत्यों को पराजित किया था। उस युद्ध से पूर्व देवों एवं दैत्यों दोनों ही पक्षों ने महारथी रजि से सहायता मांगी थी। रजि की शर्त थी कि मैं उसी पक्ष की सहायता करूँगा जो युद्ध में विजय के बाद मुझे राजा स्वीकार करें। दैत्यों ने कहा कि हमारे राजा प्रह्लाद हैं और वही रहेंगे। देवों ने रजि की शर्त स्वीकार कर ली और रजि ने देवों की ओर से युद्ध किया। देवों ने राजा शतक्रतु इन्द्र ने बाद में रजि को इन्द्र पद नहीं सौपा। इस पर रजि के पुत्रों ने स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया और इन्द्र पद पर अधिकार कर लिया।

महारथी रजि पुरूरवा के पौत्र और नहुष के भाई थे। नहुष ने भी स्वर्ग पर अधिकार करके इन्द्र पद प्राप्त किया था। बाद में वे इन्द्र की पत्नी पर भी अधिकार करने के प्रयास में सप्त ऋषियों के कोप का भाजन बने और स्वर्ग से निष्कासित कर नाग लोक भेज दिये गये। हो सकता है कि भाई का बदला लेने के लिए ही रजि ने इन्द्र पद पाने की शर्त युद्ध में सहायता के लिए रख दी हो। इससे यह बात स्पष्ट हुई कि नहुष और रजि, त्रिविष्टप या स्वर्ग में शतक्रतु और असुर सम्राट प्रह्लाद समकालीन राजा थे। अभी यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि रजि से युद्ध में पराजित हुए दैत्य राजा प्रह्लाद ही लोकप्रसिद्ध हिरण्य कशिपु के पुत्र प्रह्लाद थे अथवा इसी नाम के कोई अन्य दैत्य राजा थे।

उस युग के अस्त्र-शस्त्रों में पत्थर और काष्ठ का प्रयोग बहुत मिलता है। धातुओं से हथियार बनाना भी प्रारम्भ हो गया था। सत्ययुग में धनुष-बाण विकसित हो गया था। उस युग में पशुपालन और कृषि ही मुख्य उद्योग थे। इसके अलावा कृषि के सहायक उपकरण, अस्त्र-शस्त्र, रथ आदि वाहन, दैनिक घरेलू वस्तुएं, बर्तन, आभूषण आदि के साथ वस्त्रों का निर्माण भी शिल्पियों द्वारा कुटीर उद्योग के रूप में विकसित हो रहा था। इनका विकास होने तथा बहुराष्ट्रीय सम्पर्क बढ़ने से व्यापार की भी उन्नति हुई और व्यापारी वर्ग भी महत्त्वपूर्ण होने लगा था।

धर्म के रूप में वेद मन्त्रों की गूंज ही प्रमुख थी। प्रमुख मन्त्रदृष्टा ऋषि वशिष्ठ, विश्वामित्र, गृत्समद आदि उसी युग में हुए

थे। आध्यात्मिक दृष्टि से माना जाता था परमात्मा की शक्ति ही प्रकृति में व्याप्त है। सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि व वनस्पतियों में उसी की चमत्कारी शक्ति है। इन्हीं शक्तियों का ज्ञान प्राप्त कर उनसे लाभ उठाया जा सकता है। इस प्रकार अध्यात्म और विज्ञान को साथ लेकर चलने वाले दर्शन की नींव पड़ गयी थी।

❖❖ ❖ ❖❖

त्रेतायुग का प्रथम चरण – गंगावतरण

हरिश्चन्द्र के साथ प्राचीन इतिहास का प्रथम कालखण्ड सतयुग समाप्त हो जाता है और इसके बाद दूसरा कालखण्ड त्रेतायुग आरम्भ होता है। त्रेतायुग में भी हरिशचन्द्र के पुत्र रोहिताश्व से दशरथ पुत्र राम तक तैंतीस पीढ़ियां इक्ष्वाकुवंश में हुई हैं। इस युग में राजतन्त्र मजबूत हुआ। ऋषि आश्रमों का प्रभाव बना रहा तथा राजतन्त्र ऋषियों को चुनौती देने का साहस नहीं जुटा पाया।

हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व बनी- बनायी व्यवस्था के अनुसार पैतृक शासन बनाये रहे। कहीं से बड़ी चुनौती मिलने की सम्भावना ही नहीं रह गयी थी। उनके बाद पुत्र हरित राजा हुए। उनके पुत्र चञ्चु और चञ्चु के पुत्र विजय और वासुदेव हुए। विजय के पुत्र हरुक और उनके पुत्र वृक हुए। इन छह पीढ़ियों ने लगभग दो शताब्दियों तक शान्ति पूर्वक शासन किया। उसके बाद वृक के पुत्र बाहु के शासन काल में हैहय और तालजंघ शासकों ने मिलकर अयोध्या पर सफल आक्रमण किया। राजा बाहु पराजित होकर भाग गये और वनों में शरण ली। और्व ऋषि के आश्रम के निकट निवास करते हुए राजा बाहु की मृत्यु हो गयी। उस समय बाहु की रानी गर्भवती थी। इस विपत्ति में धैर्य ने रानी का साथ छोड़ दिया और उन्होंने भी प्राण देने का निश्चय कर लिया।

महर्षि और्व ने समझा-बुझाकर रानी को बचाया और सन्तान को जन्म देकर उसके माध्यम से राज्य वापस लेने की आशा बंधायी। इसके बाद गर्भवती रानी और्व के आश्रम में रहने लगीं। रानी ने बालक को जन्म दिया तो उसका नाम सगर रखा गया। सगर शब्द का अर्थ है विषयुक्त। इन विपत्तियों के बीच जन्में सबसे प्रतिष्ठित राजकुल के बालक को ऐसा होना ही था। सगर का पालन-पोषण प्रारम्भ से ही एक उद्देश्य को लेकर किया गया और उन्हें वैसी ही शिक्षा-दीक्षा दी गयी तथा अजेय योद्धा की तरह तैयार किया गया।

सगर को भार्गव आग्नेयास्त्रों की भी शिक्षा दी गयी थी, ऐसा उल्लेख मिलता है। इसका अर्थ इतना तो है ही कि सगर के समय में भार्गव ऋषियों ने किसी तरह के आग्नेयास्त्रों का विकास किया था। वह आग्नेयास्त्र सगर के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ।

युवा होने पर सगर ने भार्गव आश्रमों के सहयोग से सेना एकत्र की और अयोध्या पर अधिकार कर लिया। हैहय और तालजंघ राजा उस युद्ध में मारे गये। सगर को वशिष्ठ और विश्वामित्र आश्रमों का भी समर्थन प्राप्त था। इस सफलता के बाद भी वे शान्त नहीं बैठे और त्रेतायुग का पहला सामरिक इतिहास लिखने निकल पड़े। हैहय और तालजंघ को पराजित करते ही पूरा देश उनके अधिकार में आ ही गया था। अतः सगर ने उत्तर-पश्चिमी सीमा की ओर युद्ध

अभियान किया। सगर से पराजित होने वालों में शक, यवन, काम्बोज, पारद और पह्लव गणों का उल्लेख है। यह भी बताया गया है कि वशिष्ठ ने सन्धि कराकर उन्हें जीवन दान दिलाया और देश निकाला दे दिया गया।

यह स्पष्ट किया गया है कि सगर से युद्ध के समय तक ये सभी जातियां वैदिक धर्म के ही अन्तर्गत थीं। वे देश से निष्कासन के पश्चात् वैदिक समाज की सीमा से सुदूर पश्चिम की ओर बढ़ गयीं तथा ऋषियों के आश्रमों से उनका सम्पर्क भी टूट गया। ऐसा लगता है कि उन जातियों ने सगर का प्रबल प्रतिरोध किया था और विजयी होने पर सगर उनको मिटा देने पर दृढ़ थे। इसीलिए वशिष्ठ को मध्यस्थता करके उन्हें जीवनदान दिलाना पड़ा। वशिष्ठ ने सगर को आश्वासन दिया था कि ऋषि आश्रम और क्षत्रिय कुल उन जातियों से कोई सम्पर्क नहीं रखेंगे। अतः सम्पर्क टूट जाने का स्पष्ट राजनीतिक कारण भी था। मूल सांस्कृतिक केन्द्रों से सम्पर्क टूट जाने के कारण वे सब पश्चिम की स्थानीय जातियों में घुल मिल गये और उनकी वेशभूषा और आचार विचार भी बहुत कुछ बदल गये। शायद यही कारण है कि आधुनिक इतिहासकारों ने ऐसी जातियों को अर्द्ध आर्य जातियां बताया है जिनमें आर्य लक्षणों के साथ ही अनार्य तत्व भी पाये जाते थे।

सकारण ही सही, सगर प्राचीन इतिहास के क्रूर शासक थे। उनकी क्रूरता अपनी प्रजा के प्रति नहीं, लेकिन शत्रुओं के प्रति अवश्य स्पष्ट थी। विजय के बाद उन्होंने यवनों के शीश मुड़वाये, शकों के आधे सर को मुड़वाया, पारदो के लम्बे बाल स्त्रियों की तरह रखवा दिये, पह्लवों को दाढ़ी मूछ नहीं बनाने दी। सबकी विचित्र अपमानजनक और हास्यप्रद वेशभूषा बनाकर अपने राज्य की सीमाओं से बाहर देश निकाला दे दिया। इस प्रकार अपना साम्राज्य सुरक्षित किया तथा शत्रुओं से कठोर प्रतिकार भी लिया।

राजा सगर की दो रानियां थीं। एक काश्यप पुत्री सुमति और दूसरी विदर्भराज की पुत्री केशिनी। उनके राज्य में तीन ऋषियों का महत्व था। सगर का पालन पोषण महर्षि और्व के आश्रम में हुआ था, अतः उनका महत्व सर्वोपरि था। कुल गुरु वशिष्ठ और तेजस्वी विश्वामित्र का आश्रम भी महत्वपूर्ण था। सगर की वैदर्भी रानी केशनी के पुत्र असमञ्जस थे। विपरीत परिस्थितियों में सगर के पलने और उसके कारण उत्पन्न असहनशीलता का शिकार असमञ्जस हुए। वे बचपन से ही उद्दण्ड, क्रूर और अनाचारी बन गये। राजा सगर को पुत्र के चरित्र निर्माण से अधिक साम्राज्य विस्तार में रुचि थी। उसमें असमञ्जस जैसे पुत्र ही सहायक थे।

दिग्विजय के बाद राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। सगर के शत्रुओं के लिए यही अवसर उपयुक्त था। अश्व पकड़ने और युद्ध करने का साहस किसी में नहीं था। अतः कपट चाल चली गयी। असमञ्जस से रुष्ट कुछ लोगों की मदद से अश्व को किसी तरह छिपा लिया गया और चुपके से महर्षि कपिल के आश्रम में छोड़ दिया गया। यज्ञाश्व गायब हो जाने से प्रचण्ड रोष स्वाभाविक था। खोजने पर अश्व मिला भी तो कपिल ऋषि के आश्रम में। सगर के पुत्रों में उस समय विवेक शेष ही कहां रह गया था। अपनी उद्दण्डता के कारण सभी साठ हजार योद्धा कपिल ऋषि के आश्रम में मारे गये। दिग्विजयी चक्रवर्ती सम्राट और उनकी अजेय सेना ऋषि आश्रमों में कितनी लाचार स्थिति में होती थी, यह भी उसका एक

उदाहरण है।

यह दुःखद सूचना पाकर राजा सगर ने असमञ्जस के पुत्र अंशुमान् को भेजा। उन्होंने परिस्थिति को समझा और महर्षि कपिल के पास जाते ही दण्डवत् प्रणाम कर त्राहि माम् बोला। अपनी विनम्रता से उन्होंने कपिल को प्रसन्न किया और उनकी अनुमति से अश्व को ले जाकर यज्ञशाला में अपने पितामह को सौपा। महर्षि कपिल ने अंशुमान से कहा कि अपने पिता और उनके सैनिकों की क्रूरता का प्रायश्चित करने के लिए गंगा को पृथ्वी पर प्रवाहित करने का प्रयास करो। वह जलधारा देश की जीवनधारा होगी और आश्रम में मारे गये साठ हजार वीर भी तर जायेंगे क्योंकि उस धारा का कारण परोक्ष रूप में वही होंगे।

यज्ञाश्व को पाकर राजा सगर ने यज्ञ पूर्ण किया। सगर के बाद उनके पौत्र अंशुमान ही सम्राट हुए। गंगा की पवित्र धारा को स्वर्ग के पर्वतीय प्रदेश से मैदानी क्षेत्र में लाने का प्रयास प्रारम्भ हुआ। गंगा का प्रवाह जनहितकारी होने के साथ ही महर्षि कपिल की आज्ञा भी थी, अतः इसे पूरा करना अनिवार्य ही था। अंशुमान के पुत्र दिलीप हुए तथा उनके पुत्र प्रसिद्ध भगीरथ थे जिनको अन्ततः गंगा का प्रवाह पृथ्वी पर लाने में सफलता प्राप्त हुई। महर्षि वाल्मीकि ने इसका वर्णन काफी विस्तार से रामायण में किया है। यह घटना लगभग 72 शताब्दियों पूर्व की है। इसकी तिथि लगभग 2100 युगाब्द पूर्व अथवा 5200 ईस्वी पूर्व मानी जानी चाहिए।

सम्राट सगर की तीन पीढ़ियों के प्रयासों से मैदानी क्षेत्र में गंगा का प्रवाह अस्तित्व में आया। अंशुमान, दिलीप और भगीरथ की तपस्या आज तक प्रसिद्ध है। गंगा को भागीरथी के साथ ही जाह्नवी भी कहा जाता है। जिस समय गंगा का प्रवाह हिमालय से उतरा तो उसका वेग स्वभावतः बहुत अधिक था। मार्ग में राजा जह्नु यज्ञ कर रहे थे। गंगा प्रवाह उनकी यज्ञशाला को बहा ले गया। वह युग यज्ञों की चरम महत्ता का था। यज्ञ में विघ्न सबसे बड़ा अपराध माना जाता था। राजा जह्नु भगीरथ के अधीन रहे हों या स्वतन्त्र शासक, यह तो ज्ञात नहीं है, लेकिन उन्होंने इस परियोजना का विरोध कर दिया और अपने राज्य से गंगा का प्रवाह ले जाने की अनुमति नहीं दी।

लेकिन इस समय तक गंगा- प्रवाह का महत्व काफी प्रचारित हो चुका था। यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच की प्रमुख संयुक्त परियोजना बन चुकी थी। अतः देवों और मानवों ने संयुक्त रुप से राजा जह्नु से वार्ता की। उन्हें इस परियोजना की उपयोगिता और उनके राज्य को होने वाला लाभ समझाया। राजा जह्नु को आश्वासन दिया गया कि गंगा प्रवाह का नामकरण उनके नाम पर जाह्नवी क्या जायेगा। इसके बाद जह्नु ने अनुमति दी तथा धारा का प्रवाह आगे बढ़ सका। महर्षि वाल्मीकि ने राजा जह्नु के विषय में और विस्तृत जानकारी नहीं दी है।

भगीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाये जाने की कथा में भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस जलधारा का नाम गंगा भगीरथ से पहले भी था। बाद में वह भगीरथ के नाम पर भारीरथी और जह्नु के नाम पर जाह्नवी कहलायी।

सम्भावना है कि गंगा नदी का अस्तित्व पहले रहा हो और हिमालय की शिवालिक पर्वत मालाओं में भूगर्भीय परिवर्तनों के कारण यह नदी पर्याप्त जलग्रहण न कर पाने से सूख गयी हो। अतः

हिमालय क्षेत्र में गंगा नदी की जलस्रोत धाराओं को मोड़कर जलग्रहण बढ़ाया गया होगा।

गंगा को लाने के लिए सारा श्रम-तपस्या हिमालय क्षेत्र में ही किये जाने का उल्लेख मिलता है। शिवालिक का शाब्दिक अर्थ है शिव की जटायें। अतः शिवालिक पर्वत मालाओं में जलधारा के उलझ जाने और मैदानी क्षेत्र में आने के लिए मार्ग न मिल पाने की बात समझ में आती है। गंगा नदी के विषय में इस दृष्टि से वैज्ञानिक शोध की आवश्यकता है। स्वयम् हिमालय पर्वत के जन्म और विकास के बारे में अनेक प्राचीन मान्यतायें वैज्ञानिक शोध से प्रमाणित हुई हैं।

❖❖ ❖ ❖❖

प्रतापी सम्राट भरत

सम्राट भगीरथ का राजनीतिक महत्व भी कम नहीं है। वंशक्रम के अनुसार वैवस्वत मनु के वंश में भगीरथ 43वें राजा थे। भारत के सम्राटों की एक सूची के अनुसार देश के 44वें सम्राट दुष्यन्त और 45वें सम्राट उनके पुत्र भरत थे जिनके नाम पर इस देश का नाम भारत वर्ष पड़ा। कहीं स्पष्ट उल्लेख न होने के बावजूद यह अनुमान किया जा सकता है कि सम्राट सगर के बाद अंशुमान्, दिलीप और भगीरथ नें गंगा के अवतरण की परियोजना पर अधिक ध्यान दिया जिससे साम्राज्य की सैनिक शक्ति कमजोर पड़ गयी। गंगा अवतरण से भगीरथ का नाम अमर हो गया लेकिन राजनीतिक दृष्टि से पुरुवंशीय दुष्यन्त को अपनी शक्ति बढ़ाने का अवसर मिला और वे भारत के चक्रवर्ती सम्राट बन गये। दुष्यन्त के दिग्विजय अभियान का विवरण उपलब्ध न होने के कारण यह बता पाना सम्भव नहीं है कि उन्होंने भगीरथ के किस वंशज को पराजित किया था। लेकिन इतना तो निश्चित है कि उस समय इक्ष्वाकुवंश के राजाओं को पराजित किये बिना चक्रवर्ती सम्राट का पद प्राप्त कर लेने की तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी।

सम्राट भगीरथ का समय त्रेतायुग का द्वितीय चरण माना जाता है। इन युगों पर आधारित काल गणना में प्रत्येक युग को चार चरणों में विभाजित किया गया है। इस प्रकार तीन शताब्दियों की अवधि एक चरण है और इस अवधि में आठ-नौ राजाओं का शासन काल रहा है। त्रेतायुग के द्वितीय और तृतीय चरण के लगभग पांच-छः शताब्दियों के इतिहास की कोई महत्वपूर्ण घटना उपलब्ध नहीं है। भगीरथ के बाद राजनीति में इक्ष्वाकुवंश का प्रभाव घटने लगा तथा पुरुवंश प्रभावी हो गया। लेकिन दुष्यन्त और भरत के अलावा इस अवधि में भरत वंश के भी किसी महत्वपूर्ण सम्राट का उल्लेख नहीं मिलता है। इसके बावजूद आश्चर्यजनक रूप से इक्ष्वाकुवंश, पुरुवंश, यदुवंश, निमि वंश आदि की वंशावली सुरक्षित है। इन वंशों के कुछ राजाओं की समकालीनता के आधार पर काल निर्धारण भी किया जा सकता है।

उपलब्ध तथ्यों के आधार पर अनुमान किया जा सकता है कि भगीरथ के प्रयासों से गंगा-अवतरण के बाद की शताब्दी में इस देश में दुष्यन्त और भरत का शासन रहा। इन दोनों सम्राटों की सामरिक सफलताओं, लोकहितकारी शासन तथा कला-कौशल की उन्नति के कारण आज तक जन मानस में उनका नाम अमर है। ये पुरुवंशी

सम्राट थे। अब पुरुवंशी का परिचय प्राप्त कर लेना भी आवश्यक है। परम्परागत रूप से पुरुवंश को भी मनु वंश की ही एक शाखा माना जाता है। यह वंश मनु की पुत्री इला से चला है। अत्रि के पुत्र चन्द्रमा थे। उनके पुत्र बुध का विवाह मनु पुत्री इला से हुआ था।

बुध के जन्म का प्रसंग भी महत्वपूर्ण है। बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण राजा चन्द्रमा ने कर लिया था। तारा अपहरण काण्ड को लेकर प्रसिद्ध तारकामय संग्राम हुआ था। बृहस्पति देवों के गुरु थे। उनकी पत्नी का अपहरण सम्पूर्ण देवों के लिए प्रतिष्ठा का प्रश्न था। महर्षि शुक्राचार्य चन्द्रमा के पक्ष में हो गये। शुक्राचार्य देवों से त्रस्त होकर विद्रोही हो गये थे और असुरों के सहयोग से उन्होंने अमृत रसायन का आविष्कार किया था। शुक्राचार्य के प्रभाव से दैत्य और दानव कुल के असुरों ने चन्द्रमा का साथ दिया। लम्बे युद्ध के बाद समझौता हुआ और बृहस्पति को उनकी पत्नी तारा वापस दे दी गयी। लेकिन तारा इस बीच गर्भवती हो चुकी थी। जब तारा ने पुत्र को जन्म दिया तो प्रश्न उठा कि यह पुत्र बृहस्पति का है या चन्द्रमा का? पूछने पर तारा ने स्पष्ट बता दिया कि यह चन्द्रमा का ही पुत्र है। इस पर उसे बृहस्पति ने झाड़ियों में फेंक दिया। चन्द्रमा ने उसे उठा लिया और अपना पुत्र मान कर पालन किया। उसका नाम बुध रखा गया। बुध बहुत बुद्धिमान् और प्रतापी राजा हुए। उसी बुध से ही चन्द्रवंश आगे चला है।

बुध के वंशजों में पुरूरवा, आयु, नहुष, ययाति जैसे प्रसिद्ध राजा हुए। ययाति की दो पत्निया थीं देवयानी और शर्मिष्ठा। शर्मिष्ठा के पुत्र अनु और पुरु थे। देवयानी के पुत्र यदु, तुर्वसु और द्रुह्य हुए। इन सभी से चन्द्रवंश की शाखायें चलीं। भरत पुरुवंश में हुए थे और द्वापर के अवतारी पुरुष कृष्ण यदुवंश में। इसी वंश की एक शाखा में एक राजा जह्नु भी हुए है। यह शाखा महोदय या कान्यकुब्ज क्षेत्र में शासन करती थी। विश्वामित्र भी इन्ही के वंशज थे। राजा जह्नु के नाम पर गंगा को जाह्नवी कहा गया है।

सूर्यवंश या मनुवंश तथा चन्द्रवंश या बुधवंश की अनेक शाखायें रहीं हैं। लेकिन इतिहास में इक्ष्वाकुवंश और पुरुवंश ही सर्वाधिक प्रभावशाली रहे हैं। पुरुवंश में पन्द्रहवीं और सोलहवीं पीढ़ी में दुष्यन्त और भरत हुए थे। भरत का काल निर्णय करने के लिए हमारे पास पर्याप्त सूत्र उपलब्ध हैं। हमारे देश के चक्रवर्ती सम्राटों की सूची में भरत का नाम पैंतालिसवां है। वे भगीरथ के कुछ बाद में हुए थे। भरत पुरुवंश की सोलहवीं पीढ़ी में हुए थे और पुरुवंश की इकत्तीसवीं पीढ़ी में राजा दिवोदास हुए हैं जिनकी बहन अहल्या गौतम ऋषि की पत्नी थी जिससे राम की भेंट हुई थी। इस प्रकार राजा दिवोदास राम के पिता दशरथ के समकालीन होने चाहिए।

त्रेतायुग के अन्तिम सम्राट दशरथ पुत्र राम और पुरुवंशी दुष्यन्त पुत्र भरत के बीच सोलह से बाईस पीढ़ियों का अन्तर स्पष्ट है। यह बात इस तथ्य से भी पुष्ट होती है कि भगीरथ मनुवंश की तैतालीसवीं पीढ़ी में हुए थे और राम पैंसठवीं पीढ़ी में थे। इस प्रकार भगीरथ और राम के बीच बाइस पीढ़ियों का अन्तर है। दो अलग-अगल राजवंशों में इतना अन्तर स्वीकार्य है। एक तथ्य यह भी है कि जितने विस्तृत रूप से इक्ष्वाकुवंश की वंशावली और वंशानुचरित हमारे पास सुरक्षित है, उतना किसी अन्य वंश का नहीं। इस लम्बी वंशावली में अनेक नाम छूट भी गये हैं। यह कमी इक्ष्वाकुवंश के बारे में सबसे कम और अन्य वंशों में अधिक है।

इस प्रकार सम्राट भरत वैवस्वत मनु के लगभग सोलह शताब्दियों के बाद हुए थे। वह समय दो हजार वर्ष युगाब्द पूर्व या लगभग 5100 ई.पू. हैं। जिनके नाम पर हमारे देश का नाम भारतवर्ष पड़ा, वे सम्राट भरत हमारे समय से 7100 वर्ष पहले हुए थे।

साहित्य में दुष्यन्त और भरत की दिग्विजयों से अधिक दुष्यन्त की प्रणय कथा सम्मानित है। महर्षि कण्व के आश्रम में एक अनाथ कन्या शकुन्तला पल रही थी। एक दिन अचानक आश्रम में दुष्यन्त ने उसे देखा, परिचय हुआ और दोनों के बीच गहरा प्रेम हो गया। दोनों ने आश्रम में ही गन्धर्व विवाह किया और दुष्यन्त राजधानी लौट गये। शकुन्तला ने उसी आश्रम में इस प्रेम के परिणाम के रूप में भरत को जन्म दिया। आश्रम में पल रहा भरत बचपन से ही सिंह जैसे हिंसक पशुओं के साथ खिलौनों की तरह से खेलता रहा। महर्षि कण्व ने अपने शिष्यों के साथ शकुन्तला को पतिगृह अर्थात् दुष्यन्त के राजमहल में भेजा। पहले तो दुष्यन्त लोक भय से उसे स्वीकार नहीं कर पाये लेकिन जब ऋषियों ने उन्हें अपनी पत्नी शकुन्तला और पुत्र भरत को अपनाने का आदेश दिया तो दुष्यन्त ने स्वीकार कर लिया। वही बालक आगे चलकर प्रतापी सम्राट भरत हुआ।

महाकवि कालिदास ने इस कथा के काव्यात्मक सौन्दर्य के लिए कवि-कल्पना का सहारा लेकर काफी परिवर्तन करके विश्व प्रसिद्ध नाटक '**अभिज्ञान शाकुन्तलम्**' लिखा है। लेकिन उस नाटक में कल्पना अधिक है और इतिहास कम। यह कथा ऐतिहासिक शुद्धता के साथ इतिहास ग्रन्थ महाभारत में वर्णित है।

भरत के बाद पांचवी पीढ़ी में सम्राट हस्ती या हस्तिन् हुए जिन्होंने हस्तिनापुर नगर बसाया जो आने वाली शताब्दियों में भारतीय राजनीति का केन्द्र बना रहा। हस्तिन् पुरुवंश की इक्कीसवीं पीढ़ी में हुए थे। पुरुवंश की पच्चीसवीं पीढ़ी में सम्राट कुरु हुए। उनके नाम पर कुरुक्षेत्र स्थापित हुआ। इन्हीं के नाम पर आगे कुरुवंश कहलाया जिनके बीच कुरुक्षेत्र का प्रसिद्ध महाभारत युद्ध लड़ा गया था। ऐसा लगता है कि सम्राट दुष्यन्त और भरत से कुरु के समय तक भारत में यह पुरुवंश या भरत वंश ही प्रबल रहा। इक्ष्वाकुवंश में इस बीच किसी प्रतापी सम्राट का नाम नहीं मिलता है। अतः भरत वंश की दस पीढ़ियों ने भारत पर एकछत्र राज्य किया था, ऐसा माना जाना चाहिए।

❖❖ ❖ ❖❖

राजा मित्रसह - शाप तथा नियोग

इक्ष्वाकुवंश में भगीरथ के पुत्र सुहोत्र, उनके पुत्र श्रुति, उनके पुत्र नाभाग, नाभाग के पुत्र अम्बरीष, उनके सिन्धुद्वीप, उनके पुत्र अयुतायु हुए। अयुतायु के पुत्र ऋतुपर्ण एक अन्य प्रसिद्ध राजा नल के सहायक बने। राजा नल के विषय में कहानियां प्रचलित हैं। नल चन्द्रवंशी राजा थे।

राजा ऋतुपर्ण के पुत्र सर्वकाम और उनके पुत्र सुदास् हुए। सुदास् के पुत्र मित्रसह थे। हम जानते हैं कि त्रेतायुग यज्ञ प्रधान था। सफलता पाने के लिए भी यज्ञ किये जाते थे और सफल होने पर भी। मित्रसह ने भी यज्ञ किया। वशिष्ठ स्वभावतः पुरोहित थे। मूल

कथा के अनुसार यज्ञ के बाद वशिष्ठ की अनुपस्थिति में मित्रसह के पुराने शत्रु एक राक्षस ने वशिष्ठ की ओर से नरमांस का भोजन कराने का आदेश राजा को दिया। उस आदेश के अनुसार वशिष्ठ के समक्ष नरमांस का भोजन प्रस्तुत किया गया। वशिष्ठ इससे बहुत नाराज हुए और राजा को नरभक्षी होने का शाप दे दिया। जब राजा ने बताया कि आपके आदेश पर ही नरमांस प्रस्तुत किया गया था तो वशिष्ठ ने कृपा करते हुए शाप को बारह वर्ष तक के लिए सीमित कर दिया।

कुल पुरोहित के इस अन्याय पर राजा मित्रसह ने भी वशिष्ठ को शाप देने के लिए अञ्जलि में जल ग्रहण किया, लेकिन रानी मदयन्ती ने राजा को रोक दिया और कहा कि कुलगुरु को शाप देना उचित नहीं है। राजा को रानी की बात माननी पड़ी और वह जल राजा के पैरों पर गिरा। इससे मित्रसह का नाम कल्माषपाद भी पड़ गया। वशिष्ठ के शाप से राजा मित्रसह तीसरे दिन के अन्तिम भाग में नर भक्षी होकर वन में विचरण करने चले गये।

प्राचीन काल में शाप देने के प्रसंग बहुत मिलते हैं। संस्कृत भाषा और साहित्य में शप् धातु और शाप बहु प्रचलित है। अतः शाप को समझना आवश्यक है। सामान्यतः शाप देने की शक्ति ऋषियों में रही है, लेकिन इसी मित्रसह प्रसंग से भी ज्ञात होता है कि राजा भी ऋषि को शाप दे सकते थे। आजकल शाप को चमत्कारिक शक्ति माना जाता है और तार्किक लोग इसे अविश्वसनीय और असम्भव भी मानते हैं। एक मत यह भी व्यक्त किया गया है, कि जिस प्रकार शासक और न्यायाधीश किसी अपराध पर दण्ड देते हैं, उसी प्रकार ऋषियों द्वारा दिये गये दण्ड को ही शाप कहते थे और समाज और शासन ही उसे लागू कराता था।

योग विद्या और चेतना विज्ञान को मानने वाले इतना स्वीकार करते हैं कि योगी के अन्दर इतनी प्रबल चेतना शक्ति हो सकती है कि वह अपने शाप को प्रबल चेतना शक्ति से लागू करा ले या जिसे शाप दिया गया है, उसे उस तरह आचरण के लिए बाध्य कर दे। दोनों में जो भी बात सत्य हो, यह स्पष्ट है कि मित्रसह के मामले में वशिष्ठ ने शाप देने की शक्ति का दुरुपयोग किया था। यहाँ यह भी जान लेना आवश्यक है कि संस्कृत साहित्य में शाप द्वारा ऐसा कोई कार्य नहीं किया गया है जो आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि से असम्भव हो। अतः शाप कोई अलौकिक कल्पना नहीं है। भले ही शाप देने की कुछ घटनाओं को अतिरञ्जित रूप में प्रस्तुत किया गया हो।

जो कुछ भी हो, राजा मित्रसह वनवासी नरभक्षी हो गये। एक दिन अत्यन्त भूखे मित्रसह ने एक मुनि दम्पति को सम्भोगरत अवस्था में देखा और पकड़ कर मुनि का मांस खाकर भूख मिटायी। मुनि पत्नी ने राजा को शाप दे दिया कि मेरे अतृप्त रहते हुए तुमने मेरे पति को मार डाला है, अतः तुम भी अपनी पत्नी के साथ सम्भोग करते ही मर जाओगे। ऐसा शाप देकर मुनि पत्नी ने भी आग लगाकर आत्महत्या कर ली।

बारह वर्ष होने पर राजा शाप मुक्त हुए और घर वापस आ गये। मुनि पत्नी के शाप के कारण वे अपनी पत्नी के साथ सहवास नहीं कर सकते थे। अतः वशिष्ठ ने नियोग प्रथा का सहारा लेकर रानी मदयन्ती के साथ सम्भोग करके गर्भ स्थापित किया। उस पुत्र का नाम अश्मक रखा गया और वे राजा मित्रसह के उत्तराधिकारी हुए।

अश्मक के पुत्र मूलक हुए। एक युद्ध में स्त्रियों ने घेरकर मूलक की जान बचायी थी, अतः उनको नारीकवच भी कहा गया है। इन राजाओं की कथाओं से स्पष्ट होता है कि वह इक्ष्वाकुवंश का पतनकाल था। राजा और पुरोहित दोनों ही गरिमा से गिर चुके थे।

नियोग प्रथा का उपयोग ऐसे समय किये जाने का विधान है जब पति सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ हो तो पति की सहमति से किसी व्यक्ति के साथ पत्नी तब तक सहवास कर सकती है जब तक वह गर्भवती न हो जाये। इक्ष्वाकुवंश चलाना भी जरूरी था और मदयन्ती तब तक पुत्रहीन थी। अतः स्थिति का भरपूर लाभ उठाया गया।

मूलक के पुत्र का नाम दशरथ था। लेकिन वे राम के पिता दशरथ से बहुत पहले हुए थे। दशरथ के पुत्र इलिबिल और उनके पुत्र विश्वसह हुए। विश्वसह के पुत्र खट्वांग वीर सेनानी थे। भारत में खट्वांग की सामरिक सफलताओं की कोई जानकारी हमारे पास नहीं है। लेकिन उन्होंने देवों के समर्थन में असुरों से युद्ध में काफी वीरता दिखायी थी और दैत्यों का संहार किया था। खट्वांग के पुत्र दीर्घबाहु थे।

ऐसा अनुमान है कि मूलक की अपमानजनक पराजय के बाद इक्ष्वाकुवंश ने शक्ति बढ़ानी प्रारम्भ कर दी थी। मूलक के पुत्र दशरथ ने निश्चित ही कुछ सामरिक सफलतायें प्राप्त की थीं। इसीलिए कुछ पीढ़ियों के बाद अज ने अपने पुत्र का नाम उनके नाम पर दशरथ रखा जो राम के पिता थे। तीन पीढ़ियों के बाद खट्वांग का देवासुर संग्राम में भाग लेना भी इस बात का प्रमाण है कि तब तक इक्ष्वाकुवंश अपनी प्रतिष्ठा पुनः स्थापित कर चुका था, अन्यथा जब चन्द्रवंश भारत में प्रबल था तो रजि आदि चन्द्रवंशी राजाओं ने भी देवों का साथ दिया था।

❖❖ ❖ ❖❖

सम्राट रघु

सम्राट रघु खट्वांग के पुत्र दीर्घबाहु थे। दीर्घबाहु के उत्तराधिकारी इच्छवाकुवंश के सुयोग राजा दिलीप हुए। उन्होंने अपनी योग्यता से वह आधारभूमि तैयार की जिससे इक्ष्कवाकुवंश का प्रताप पुनः मध्याह्न के सूर्य की भांति दमकने लगा। कालिदास ने अपने महाकाव्य रघुवंश में लिखा है कि दिलीप बहुत बलवान् और तेजस्वी राजा थे। वे बुद्धिमान्, विद्वान् और कर्मशील भी थे। उनकी पत्नी सुदक्षिणा मगध देश की राजकुमारी थीं।

सन्तान न होने पर दिलीप और सुदक्षिणा ने गुरु वशिष्ठ के आश्रम में बहुत दिनों तक सेवा की। इसके बाद वशिष्ठ प्रसन्न हुए और दिलीप और सुदक्षिणा को अयोध्या वापस जाने की अनुमति मिली और सन्तान के लिए औषधि भी। रानी गर्भवती हुईं और पूरे गर्भकाल में सुयोग्य चिकित्सकों ने उनकी देखभाल की। सुदक्षिणा ने जिस पुत्र को जन्म दिया, वे इक्ष्वाकुकुल को नया गौरव प्रदान करने वाले प्रतापी रघु थे। रघु के नाम पर ही बाद में इस कुल को रघुवंश कहा गया।

दिलीप ने सम्राट बनने के लिए अश्वमेध यज्ञ प्रारम्भ किया। कहा

जाता है कि दिलीप ने सौ अश्वमेध करने का संकल्प लिया था। उन्होंने 99 अश्वमेध पूरे कर लिये। सौवें अश्वमेध यज्ञ का अश्व हिमालय की सीमा पर ही देवराज इन्द्र ने पकड़ लिया और अश्वमेध रोकने के लिए कहा। इन्द्र का कहना था कि सौ अश्वमेध करने वाला तो इन्द्र पद का अधिकारी बन जाता है, अतः सौवां अश्वमेध पूरा होने देना मेरी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल है। फिर स्वर्ग की सीमा पर कैसे दिग्विजयी अश्व को जाने दिया जाये। रघु ने चुनौती स्वीकार की और भीषण युद्ध हुआ।

रघु के पराक्रम से विचलित होती देवसेना को बचाने के लिए इन्द्र ने महासंहारक वज्र का प्रहार किया। इससे पासा पलटा अवश्य, लेकिन रघु भी अन्त तक युद्ध के लिए डटे रहे। बाद में समझौता हुआ। इन्द्र ने अपना दूत अयोध्या में महाराज दिलीप के पास भेजा और उनसे सन्धि का अनुमोदन कराया। दिलीप भारत के चक्रवर्ती सम्राट बन गये और त्रिविष्टप या स्वर्ग के साथ मैत्री सम्बन्ध स्थापित हो गये।

कालिदास ने रघु के विषय में लिखा है कि अन्य शासकों के मन में दिलीप के गौरव को देखकर जो आग सुलग रही थी, रघु के सिंहासनारूढ़ होने पर भड़क उठी। परन्तु रघु ने भी पिता के सिंहासन और शत्रुओं के मस्तक पर एक साथ पैर रखा। इसका अर्थ है कि रघु के सत्ता सम्भालते ही जगह-जगह सामन्त शासकों ने विद्रोह कर दिया था, लेकिन रघु ने सफलतापूर्वक सबका दमन किया। उन्होंने अपने पराक्रम और बुद्धिबल से राज्य में शान्ति की स्थापना की। उसके बाद सम्राट ने अश्वमेध यज्ञ के आयोजन की घोषणा कर दी। उन्होंने राजधानी की सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध किया, मार्ग की सुरक्षा के लिए सेनायें नियुक्त कीं और दिग्विजय के लिए सेना का नेतृत्व सम्भाला।

रघु ने दिग्विजय अभियान पूर्व की दिशा से प्रारम्भ किया। अयोध्या से चले रघु पूर्वी समुद्र (बंगाल की खाड़ी) तक जा पहुंचे। बंग प्रदेश में उन्हें प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, लेकिन उन्होंने गंगा की धाराओं के बीच द्वीपों पर विजय ध्वज फहरा दिये। नदी को पार करने के लिए उन्होंने हाथियों का पुल बनाया। युद्ध क्षेत्र में तुरन्त अस्थायी पुल बनाने की यह भी अद्भुत रणनीति थी। कलिंग में रघु को कड़े प्रतिरोध का सामना करना पड़ा, लेकिन वे विजयी रहे। कलिंग से आगे वे दक्षिण की ओर बढ़े। उनकी सेना ने मलयाद्रि की तराई में पड़ाव डाला। आगे पाण्ड्य क्षेत्र में उनका स्वागत हुआ। उसके बाद उन्होंने सह्य पर्वत और केरल प्रदेश में विजय पताका फहरायी। उन्होंने पश्चिम समुद्र (सिन्धु सागर या अरब सागर) में कुछ द्वीपों पर भी अधिकार किया।

आगे उन्होंने गुर्जर प्रदेश से पश्चिम की ओर पारसीक देश पर आक्रमण किया। अश्वारोही पारसी सेना ने घनघोर युद्ध किया। अन्त में रघु विजयी हुए। वे पारसीक के उत्तर में बढ़ते हुए कम्बोज, गान्धार और उसके उत्तर में आर्यवीर्यान आदि मध्य एशियायी राज्यों को जीतकर वापस लौटे और कश्मीर में विश्राम किया। कश्मीर से आगे बढ़कर वे हिमालय के किन्नर आदि पर्वतीय मार्ग से ही पूर्व की ओर बढ़े। दक्षिणी त्रिविष्टप और नेपाल को पार करते हुए लौहित्य नदी पारकर वे प्राग्ज्योतिषपुर पहुंचे। फिर उन्होंने कामरूप को भी जीता। इस तरह भारत की पूरी सीमा पर विजय प्राप्त करके देश को सुरक्षित किया और राजधानी लौट आये। अश्वमेध पूरा हो गया।

इसके बाद रघु ने विश्वजित यज्ञ में समस्त सम्पत्ति दान कर दी और 'मृत्तिकापात्र शेष' उपाधि धारण की। अर्थात् सम्राट के पास केवल मिट्टी के बर्तन शेष थे। वरतन्तु ऋषि के शिष्य कौत्स विद्या अध्ययन समाप्त कर दक्षिणा की धनराशि लेने रघु के पास आये। रघु की दशा देखकर उन्हें संकोच था। उन्हें चौदह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं की आवश्यकता थी। रघु ने उन्हें अतिथि गृह में ठहराया और कहा कि मैने धन दान किया है, धनुष नहीं। रघु ने सेना को कुबेर पर आक्रमण की तैयारी करने का आदेश दिया और स्वयं उस रात युद्धक रथ में ही सोये। कालिदास ने कुबेर को कैलाश का राजा लिखा है। कुबेर ने यह सूचना पाकर अपार धनराशि रघु के पास भेजकर सन्धि कर ली। राजा रघु ने सारा धन कौत्स को दे दिया। कौत्स ने कहा कि मुझे गुरुदक्षिणा के लिए चौदह करोड़ मुद्रायें चाहिये, अधिक नहीं ले सकता। रघु का कहना था कि यह सारा धन तुम्हारे लिए ही आया है, हम नहीं रख सकते।

रघु के पुत्र अज थे। अज का विवाह विदर्भ देश के राजा भोज की पुत्री इन्दुमती के साथ स्वयम्वर में हुआ था। स्वयम्वर के लिए विदर्भ जाते समय अज की मित्रता गन्धर्व राजकुमार प्रियम्वद से नर्मदा तट पर हो गयी थी। स्वयम्वर में अनेक राजाओं के साथ कार्तवीर्य अर्जुन के वंशज प्रतीप भी थे। शूरसेन के राजा सुषेण, कलिंग के राजा हेमांगद आदि की भी स्वयम्वर में उपस्थिति कालिदास ने दर्शायी है। स्वयम्वर में विवाह के बाद अज दुल्हन के साथ अयोध्या की ओर चले। लेकिन एक दुरभिसन्धि हो गयी। रघु से पराजित राजा, सेना सहित वहां उपस्थित थे। सबकी सम्मिलित सेना ने बदला लेने के लिए अज पर आक्रमण कर दिया। भीषण युद्ध हुआ और अन्त में बड़ी कठिनाई से अज ने प्रियम्वद से प्राप्त सम्मोहन अस्त्र से शत्रु सैनिकों को निष्क्रिय करके विजय पायी।

❖❖ ❖ ❖❖

दशरथ

कुछ समय बाद रघु ने अज को सत्ता सौंपकर वानप्रस्थ ले लिया। अज के पुत्र दशरथ हुए। अज की पत्नी इन्दुमती की मृत्यु दशरथ के बचपन में ही हो गयी थी। आठ वर्ष तक अज ने अपने पुत्र को पाला और युवा होने पर उन्हें राज्य सौंपकर प्राण त्याग दिये। पत्नी के वियोग में वे काफी दुःखी रहते थे और धीरे-धीरे खाना-पीना तक छोड़ दिया था।

दशरथ ने कोशल, केकय और मगध की राजकुमारियों से विवाह किया था। उन्हें उत्तराधिकार में ही चक्रवर्ती साम्राज्य मिला था। फिर भी परम्परा का निर्वाह करते हुए उन्होंने औपचारिक दिग्विजय यात्रा की जो बिना किसी युद्ध के निर्विघ्न सम्पन्न हो गयी। फिर उन्होंने राजसूय यज्ञ किया।

राजा दशरथ के शासनकाल में असुरों ने इन्द्र के राज्य त्रिविष्टप या स्वर्ग पर आक्रमण कर दिया था। इन्द्र ने रघु के साथ हुई सन्धि के अनुसार दशरथ को सहायता के लिए बुलाया। दशरथ ने सेना सहित इन्द्र की सहायता की और भीषण युद्ध किया। उस युद्ध में देवों की विजय हुई और असुर पराजित हुए। उसी युद्ध में एक दिन दशरथ

बुरी तरह घायल हो गये थे। उनकी वीर पत्नी कैकेयी ने रणक्षेत्र में दशरथ के प्राणों की रक्षा की थी। उसी समय उन्होंने प्राणदान देने वाली पत्नी को दो वरदान देने का वचन दिया था। वही दोनों वरदान बाद में राम के वनवास के कारण बने।

रायसूय यज्ञ के बाद एक दिन शिकार खेलते हुए दशरथ के शब्द-भेदी बाण से मुनिपुत्र श्रवणकुमार की हत्या हो गयी। श्रवण को बाल्मीकि ने शूद्र का पुत्र बताया है। उनके माता-पिता दोनों अन्धे थे और मुनि दम्पति के रूप में प्रतिष्ठित थे। श्रवण की अनजाने में हुई हत्या से दशरथ बहुत दुःखी हुए। अन्धे ऋषि दम्पति ने दशरथ को शाप दिया कि तुमको भी वृद्धावस्था में पुत्र के वियोग में तड़प-तड़प कर मरना पड़ेगा। प्रौढ़ दशरथ दुःखी तो थे लेकिन यह शाप उनको वरदान जैसा ही लगा। उनके तीन रानियां थीं, लेकिन पुत्र कोई नहीं था। उन्हें लगा कि इस शाप के प्रभाव से पुत्र तो होगा, वंश तो चलेगा। मुझे पुत्र वियोग में मरना भी पड़ा तो कोई दुःख की बात नहीं होगी।

इस शाप के रूप में मिले वरदान को भी काफी समय बीत गया, परन्तु दशरथ को पुत्र लाभ नहीं हुआ। इसके बाद राजा दशरथ ने अपने महामन्त्री सुमन्त्र की सलाह से पुत्रेष्टि यज्ञ का आयोजन किया। पुत्रेष्टि यज्ञ के विशेषज्ञ ऋषि ऋष्यशृंग माने जाते थे। वे अंग देश के राजा रोमपाद के दामाद थे और राजा के साथ ही रहते थे। राजा दशरथ स्वयं रानियों सहित अंग देश में गये और ऋष्यशृंग को उनकी पत्नी शान्ता सहित अयोध्या बुला लाये। उसी यज्ञ के बाद दशरथ की तीनों रानियों ने चार पुत्रों राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न को जन्म दिया। एक पुत्र के लिये तड़पते दशरथ को चार पुत्र मिले।

दशरथ का शासनकाल कई दृष्टियों से बहुत महत्वपूर्ण है। दशरथ के पुत्र राम विश्व के सर्वाधिक लोकप्रिय सम्राटों में माने जाते हैं। महर्षि वाल्मीकि ने राम को विष्णु के समान तेजस्वी बताया तो बाद में उनको विष्णु का अवतार या दूसरा जन्म बता दिया। राम के जीवन की तमाम घटनाओं के बीज दशरथ काल में पड़ गये थे। दशरथ के समय की घटनाओं का विश्लेषण करके रामकाल को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

असुरों के साथ युद्ध में इन्द्र ने दशरथ की सहायता ली थी। इससे यह बात स्पष्ट है कि तब तक इन्द्र स्वतन्त्र शासक थे और रावण के पुत्र मेघनाद उन पर विजय नहीं प्राप्त कर सके थे। लंका साम्राज्य का उत्कर्ष उसके बाद का घटनाक्रम है। हो सकता है कि उस समय लंका साम्राज्य का विस्तार महासागर के द्वीपों में हो रहा हो। असुरों के साथ हुए उस युद्ध में देवों की शक्ति काफी नष्ट हो गयी होगी। अतः बाद में लंका को उस पर विजय मिल सकी।

दशरथ का शासनकाल निश्चित रूप से रघुवंश का उत्कर्ष काल था। सुरक्षित सीमाओं के भीतर शान्ति और सम्पन्नता थी। सामाजिक व्यवस्था और कला कौशल भी उन्नत अवस्था में था। लेकिन उन्हीं दिनों दक्षिण समुद्र से खतरे के बादल उठने लगे थे। उत्तर के देवों और पश्चिम के असुरों से भी अधिक शक्तिशाली लंका में राक्षस साम्राज्य का उदय हो रहा था। रावण ने दक्षिण भारत में अपना प्रभाव काफी जमा लिया था और इस प्रकार रघुवंशियों के चक्रवर्ती साम्राज्य को खुली चुनौती दे दी थी। इसके बावजूद अभी अयोध्या से सीधा टकराव नहीं हुआ था। इस पर भी प्रेक्षक किसी भी समय सीधे टकराव की आशंका अनुभव करने लगे थे। इसी कारण से

वशिष्ठ और विश्वामित्र कुल भी एक साथ अयोध्या का समर्थन कर रहे थे।

❖❖ ❖ ❖❖

लंका और वैकुण्ठ

त्रेतायुग में दो नयी महाशक्तियों का उदय हुआ, लंका और वैकुण्ठ। ये दोनों शक्तियां अल्पजीवी होने के बावजूद दीर्घकालीन प्रभाव छोड़ने में सफल रहीं। वैकुण्ठ कश्यप सागर या क्षीर सागर के तट पर बसा हुआ मध्य एशियाई नगर थआ। वहां पर महर्षि कश्यप की पत्नी विनीता के वंशज वैनतेय गरुड़ और कश्यप की ही एक अन्य पत्नी कद्रू के वंशज शेषनाग के कुल के लोगों का प्रभुत्व था। विष्णु ने इन दोनों कुलों के बीच समन्वय स्थापित करके शक्तिशाली राज्य स्थापित किया।

भारत की सीमाओं से अपेक्षाकृत दूर होने के कारण वैकुण्ठ के इतिहास की विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। कुछ लेखकों ने खुदाईमें वैकुण्ठ नगर मिलने का दावा भी किया है लेकिन हमारे पास कोई पुष्ट जानकारी नहीं है। महर्षि वाल्मीकि ने विष्णु को इन्द्र का भाई बताया है। इन्द्र को विष्णु की सहायता मिल रही है। महर्षि कश्यप की पत्नी अदिति के दस पुत्रों में सबसे बड़े इन्द्र तथा सबसे छोटे विष्णु थे। उन्ही विष्णु का नगर वैकुण्ठ माना जाता है।

लंका के राक्षस कुल के विरुद्ध विष्णु की सहायता बहुत महत्वपूर्ण है। वाल्मीकि के अनुसार यक्ष और राक्षस कभी साथ ही रहते थे और एक ही मूल संस्कृति की दो धारायें हैं। यक्ष लोग वृक्षों, जलाशयों और प्राकृतिक पर्यावरण के पूजक-संरक्षक थे। राक्षस युद्ध प्रेमी और भोगवादी वीर सैनिक थे। यक्षों का प्रमुख क्षेत्र कूर्मांचल पर्वत मालाओं की तराई बना जबकि राक्षसों ने लंका द्वीप को अपना केन्द्र बनाया।

राक्षस संस्कृति के आदि नायक हेति और प्रहेति दो भाई थे। प्रहेति तप करने चले गये और हेति ने साम्राज्य का दायित्व सम्भाला। हेति का विवाह काल की बहन भया से हुआ था। उनके पुत्र विद्युत्केश हुए। संध्या की पुत्री सालकटंकटा का विवाह विद्युत्केश के साथ हुआ था। उनके पुत्र का नाम सुकेश था। उनका विवाह गन्धर्व ग्रामणी की कन्या देववती से हुआ था। उनके तीन पुत्र हुए - माल्यवान्, सुमाली और माली। उन तीनों भाईयों ने सुमेरु पर्वत पर तपस्या की और ब्रह्मा से युद्ध में अजेय रहने और आपस में प्रेम बना रहने का वरदान प्राप्त किया।

इन तीनों भाईयों ने सुमेरु पर्वत के निकटवर्ती देवों और असुरों के विरुद्ध कुछ सफल युद्ध किये और बाद में लंका में राजधानी स्थापित की। नर्मदा नामक एक गन्धर्व नारी ने अपनी तीन पुत्रियों के विवाह राक्षस नायकों माल्वान्, सुमाली और माली के साथ कर दिये। माल्यवान् की पत्नी का नाम सुन्दरी था। उनके सात पुत्र वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त हुए। उनकी एक पुत्री अनला भी थी। सुमाली की पत्नी केतुमती के पुत्रों के नाम प्रहस्त, अकम्पन, विकट, कालिकामुख, धूम्राक्ष, दण्ड, सुपार्श्व, संह्रादि, प्रघस और भासकर्ण थे। उनकी चार पुत्रियां राका, पुष्पोत्कटा, कैकसी, और कुम्भनसी थीं। माली की पत्नी का नाम वसुदा था। उनके चार पुत्र अनल, अनिल, ह्रर और सम्पाति थे।

माल्यवान्, सुमाली और माली के नेतृत्व में लंका ने बहुत उन्नति की। उनकी समुद्री शक्ति उस युग में सर्वश्रेष्ठ थी। देवों और असुरों के साथ भी उन्होंने सफल युद्ध किये। कैलाशपति शिव के साथ सुकेश के मैत्री सम्बन्ध थे। अतः शिव ने उनके विरुद्ध देवों का साथ देना अस्वीकार कर दिया। शिव से निराश होकर देवों ने विष्णु से मदद मांगी। इन्द्र का भाई होने के कारण विष्णु ने राक्षस शक्ति को समाप्त करने का संकल्प ले लिया।

देवों और विष्णु के बीच सैनिक सन्धि के समाचार से लंका की चिन्ता बढ़ गया। पहले भी देवों और असुरों के बीच युद्ध में भारतीय सम्राटों और वैकुण्ठ की सहायता मिलने से देव विजयी होते रहे थे। राक्षसों ने विचार किया कि वैकुण्ठ या विष्णु से हमारा कोई विरोध नहीं है। केवल देवों की ओर से ही वे हमसे युद्ध के लिए तत्पर हैं। अतः देवों का विनाश किया जाये और विष्णु को अपनी ओर से न छेड़ा जाये।

माल्यवान् ने देवों पर आक्रमण कर दिया। सन्धि के कारण विष्णु ने सहायता की और युद्ध में आ डटे। तब राक्षस सेना ने विष्णु को ही लक्ष्य बनाया और भयानक बाण वर्षा कर उनका सांस लेना तक एक बार बन्द कर दिया। इसके बाद आहत विष्णु ने भीषण प्रत्याक्रमण किया और राक्षस सेना का संहार होने लगा। मैदान में राक्षस सेना भागने लगी। इस पर सुमाली ने भयानक रूप धारण किया और विष्णु को बाणों से ढ़क दिया। विष्णु ने सुमाली के सारथी को मार डाला। इससे उनके रथ के घोड़े अनियन्त्रित हो गये।

उस समय माली ने मोर्चा सम्भाला और विष्णु के शरीर को बाणों से बांध दिया। विष्णु ने उनका ध्वज और धनुष काट डाला और घोड़ों को मार दिया। माली गदा हांथ में लेकर रथ से कूद पड़े। उनके गदा प्रहार से एक बार विष्णु भी युद्ध छोड़कर भागे। इसके बाद देव सेना का प्रत्याक्रमण प्रबल था। विष्णु ने सुदर्शन चक्र छोड़ा और माली का सिर काट दिया। रणभूमि लाशों से पट गयी और राक्षस सेना भागने लगी। विष्णु ने भागती हुई राक्षसे सेना का संहार जारी रखा। इस पर माल्यवान् पटले और विष्णु से कहा कि भागती हुई सेना पर आक्रमण युद्ध नियमों का उल्लंघन है। विष्णु ने कहा कि मैने राक्षस शक्ति के विनाश का संकल्प लिया है, इसमें कोई नियम बाधा नहीं बन सकेगा। माल्यवान् और विष्णु के बीच युद्ध फिर शुरू हो गया। परन्तु अन्त में माल्यवान् को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। विष्णु भी काफी घायल हो चुके थे।

महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि विष्णु और लंका की राक्षस शक्ति के बीच कई युद्ध हुए और अन्त में बाध्य होकर राक्षसों ने लंका छोड़ दी तथा पाताल में जाकर रहने लगे। माल्यवान्, सुमाली और माली रावण से अधिक वीर थे। लंका खाली हो जाने पर वहां महर्षि पुलस्त्य के पौत्र और विश्रवा के पुत्र वैश्रवण कुबेर ने अधिकार कर लिया। वे देवों के समर्थन से दक्षिण दिशा के लोकपाल बन गये।

सुमाली ने एक कूट योजना तैयार की। उन्होंने अपनी पुत्री कैकसी को मुनि विश्रवा की सेवा में भेज दिया। कैकसी ने पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा की सेवा समर्पणभाव से की और गन्धर्व विवाह करने में सफल हुई। महर्षि विश्रवा से कैकसी के तीन पुत्र दशग्रीव, कुम्भकर्ण और विभीषण तथा एक कन्या सूर्पणखा हुई। सूर्पणखा विभीषण से बड़ी तथा दो भाईयों से छोटी थी। बाद में दशग्रीव नामक कैकसी के बड़े पुत्र ही रावण के नाम से लंका के सम्राट बने। दशग्रीव पिता के

कुल से मानव ऋषि के वंशज थे। उन्होंने पिता के आश्रम में ऋषि संस्कृति-वैदिक संस्कृति का अध्ययन किया था। ऋषि पुत्र होने के कारण उन्हें भारत में भी सम्पर्क सम्बन्ध का लाभ मिला। उन्होंने भारतीयों और देवों की युद्ध कला सीखी और संस्कृतियों का मन्थन किया। उन्होंने अपनी योग्यता और साहस से खोये हुए लंका के साम्राज्य को प्राप्त किया और विश्व में एक बड़ी शक्ति के रूप में स्थापित किया।

उन्होंने वैदिक संस्कृति के आधार पर ही महान् राक्षस संस्कृति की स्थापना की जो देवों, असुरों और मानवों की संस्कृति का समन्वय होने के साथ ही अधिक व्यावहारिक और उपयोगी भी थी। उस संस्कृति में भोगवाद की प्रधानता थी। वे वैदिक संस्कृति के अनुसार प्रकृति की शक्तियों का महत्व समझते थे। विभिन्न कुलों और संस्कृतियों के बीच रहने के कारण वे कोई भेदभाव नहीं मानते थे और समानता-समरसता के समर्थक थे।

❖❖ ❖ ❖❖

दशग्रीव का लंका पर अधिकार

कैकसी के पुत्रों पर ननिहाल के दैत्यवंशी राक्षसों का प्रभाव अधिक था। सुमाली ने एक योजना के तहत ही अपनी पुत्री कैकसी को विश्रवा की पत्नी बनाया था। अन्यथा कैकसी रूपवती युवती थी और उस समय तक विश्रवा की आयु उनसे बहुत अधिक थी। सुमाली ने दशग्रीव, कुम्भकर्ण और सूर्पणखा को अपनी छाया से कभी अलग नहीं होने दिया। विभीषण कैकसी के ही नही, विश्रवा के भी सबसे छोटे पुत्र थे। उन पर पिता का प्रभाव अधिक पड़ा। वे शान्त प्रकृति के दयालु, अध्ययनशील व्यक्ति थे जबकि दशग्रीव का पालन-पोषण ही प्रतिशोध की भावना के तहत दुर्धर्ष योद्धा बनाने के लिए हुआ था। युवा दशग्रीव के भीतर प्रतिशोध की भावना कूट-कूट कर भरी गयी थी। उनका जीवन लक्ष्य लंका के खोये साम्राज्य को प्राप्त करना और देवों से बदला लेना था।

दशग्रीव की सफलताओं से कुछ आश्वस्त होकर उनके नाना सुमाली अपने मन्त्रियों मारीच, प्रहस्त, विरूपाक्ष और महोदर के साथ आकर मिले। उन्होंने दशग्रीव से अब लंका पर अधिकार कर लेने के लिए कहा। लेकिन लङ्का में लोकपाल के रूप में उनके सौतेले भाई कुबेर प्रतिष्ठित थे। दशग्रीव ने अपने बड़े भाई कुबेर से युद्ध करना स्वीकार नहीं किया।

कुछ समय के बाद सुमाली के बड़े पुत्र प्रहस्त ने अपने भागिनेय दशग्रीव को समझाया। उन्होंने कहा कि राजनीति में कोई भाई नहीं होता है। कुबेर लोकपाल है और तुम वनों में भटक रहे हो। देवों से पीड़ित सम्पूर्ण राक्षस शक्ति तुम्हारे साथ है। दैत्य-असुरों का भी समर्थन तुम्हारे साथ रहेगा। उन्होंने कहा कि देव और असुर महर्षि कश्यप के ही वंशज हैं। पहले दैत्य, दानव और असुर ही प्रबल थे। विष्णु की सहायता से देवों ने शक्ति बढ़ा ली है। विष्णु के कारण ही दैत्य-राक्षसों को लंका का राज्य खोना पड़ा है। अतः भाई का मोह छोड़कर अपने भविष्य की चिन्ता करो। हम सब तुम्हारी सहायता करेंगे। लंका के सम्राट तुम्हीं होगे। राक्षस लोगों की खोयी प्रतिष्ठा तुम्हीं वापस ला सकते हो और देवों से बदला भी ले सकते हो। बहुत

समझाने पर दशग्रीव युद्ध के लिए तैयार हो गये।

दशग्रीव के नेतृत्व में राक्षस सेना ने लंका की ओर कूच कर दिया। त्रिकूट पर्वत पर उस सेना ने डेरा डाला और स्वयं प्रहस्त दशग्रीव के दूत के रूप में लंका गये। उन्होंने कुबेर से कहा कि तुम्हारे भाई दशग्रीव ने यह सन्देश दिया है कि लंका पहले राक्षस वीरों की थी। अतः उन्हें वापस कर दो, यही उचित होगा। कुबेर ने भी उत्तर दिया कि जिस समय यह लंका राक्षसों से रहित थी, तब हमारे पिता विश्रवा ने मुझे यहाँ रहने का आदेश दिया था। मेरा राज्य और धन जो कुछ भी है, वह दशग्रीव का भी है। उन्हें पूरा अधिकार है कि वे हमारे साथ इसका उपभोग करें। दूत प्रहस्त को इस प्रकार कूटनीतिक उत्तर देकर कुबेर ने टाला और स्वयं पिता विश्रवा से परामर्श लेने गये। विश्रवा ने कुबेर को बताया कि दशग्रीव मुझसे भी यह प्रस्ताव रख चुका है। उचित यही होगा कि तुम उससे विरोध मत लो और कैलाश पर्वत पर नया नगर बसा कर रहो। कुबेर ने लंका को खाली कर दिया और कैलाश पर्वत पर अलकापुरी नाम से नगर बसाया। अलका कुबेर की पत्नी का नाम था।

प्रहस्त ने आकर दशग्रीव को यह सूचना दी। उसके बाद दशग्रीव के नेतृत्व में राक्षस सेना ने लंका में प्रवेश किया। वहाँ दशग्रीव का विधिवत् राज्याभिषेक किया गया। राज्य स्थापित हो जाने पर पूरे संसार में बिखरे और छुपे हुए राक्षस लोग आकर लंका में बस गये। दशग्रीव उन सबके लिए उद्धारकर्ता थे। वे राक्षस जाति के लिए तारणहार और पूज्य थे। राज्य स्थापना के बाद रावण ने राक्षस संस्कृति को व्यवस्थित रूप दिया। उन्होंने सभी नागरिकों को राक्षस संस्कृति में दीक्षित किया। सामाजिक दूरियाँ और मतभेद मिटाये और जातीय तथा राष्ट्रीय स्वाभिमान से युक्त समाज बनाया।

दशग्रीव रावण ने सबसे पहले अपनी इकलौती बहन सूर्पणखा का विवाह विद्युतजिह्व के साथ किया। उसके बाद उनकी भेंट दानव मय से हुई। दानव मय का विवाह देव जाति की अप्सरा हेमा के साथ हुआ था। उनके दो पुत्र मायावी और दुन्दुभि थे। मय ने अपनी पुत्री मन्दोदरी का विवाह दशग्रीव के साथ कर दिया। उन्होंने एक अमोघ शक्ति भी दशग्रीव को दी। दशग्रीव ने कुम्भकर्ण का विवाह विरोचन कुमार बलि की दौहित्री वज्रज्वाला से किया। विभीषण का विवाह गन्धर्वराज शैलूष की कन्या सरमा से हुआ था। कुछ समय बाद मन्दोदरी ने वीर बालक मेघनाद को जन्म दिया।

आन्तरिक व्यवस्थाओं से निश्चिन्त होकर दशग्रीव ने सैनिक शक्ति को सुदृढ़ किया। लंका द्वीप राज्य है, अतः उन्होंने जल सेना पर विशेष ध्यान दिया और आसपास द्वीपों पर विजय पताका फहरायी। आस्ट्रेलिया और अफ्रीका के बीच पूरे महासागर पर लंका की जलसेना का वर्चस्व स्थापित हो गया। उसके बाद उन्होंने अपने प्रमुख शत्रु देवों पर ध्यान केन्द्रित किया। लंका ने देवों के राज्य त्रिविष्टप पर छुटपुट छापामार हमले किये। इससे देव विक्षुब्ध हो गये। एक दिन कुबेर ने दूत भेजकर दशग्रीव को उपद्रव रोकने के लिए मनाने का प्रयास किया। उन्होंने यह भी बताया कि देवगण लंका के विरुद्ध अभियान की तैयारी कर रहे हैं।

दशग्रीव ने इस सन्देश को स्पष्ट धमकी समझा और दूत का वध करके कुबेर पर आक्रमण के लिए निकल पिड़े। उनके साथ प्रहस्थ,

महोदर, मारीच, शुक्र, सारण और धूम्राक्ष आदि प्रमुख महारथी थे। घनघोर युद्ध में हजारों लोग हताहत हुए। दशग्रीव ने कुबेर को घायल कर अलकापुरी पर अधिकार कर लिया और पुष्पक विमान लेकर लौटे। मार्ग में उनका विमान शिव के गणों ने रोक दिया। इस पर विजयी योद्धा दशग्रीव को क्रोध आना स्वाभाविक था। उनकी विजयी बाहों की उत्साही शक्ति से मानो पर्वत हिलने लगा, लेकिन शिव उन्हें परास्त करने में सफल रहे। शिव ने उनकी वीरता से प्रसन्न होकर उनको चन्द्रहास नामक शस्त्र दिया और उनके संरक्षक मित्र हो गये। वाल्मीकि ने लिखा है कि शिव के गण छोटे कद के, छोटी बाहों वाले और पीले रंग के थे। ये लक्षण उस क्षेत्र से आगे रहने वाले चीनी लोगों से मिलते हैं।

इसके बाद हिमालय के वन क्षेत्र में दशग्रीव ने देववती नाम की एक कन्या के साथ बलात्कार करने का प्रयास किया तो उसने आग लगाकर आत्महत्या कर ली। वेदवती कुशध्वज ऋषि की पुत्री थीं और विष्णु से प्यार करती थीं। उनके पिता का वध शम्भू नामक दैत्य राजा ने किया था। ऐसा सम्भव है कि देवासुर संग्रामों के बीच उत्तर पश्चिमी हिमालय के कुछ क्षेत्रों पर दैत्यों का अधिकार हो गया हो। शम्भू ऐसे ही एक राजा होंगे। वे भी वेदवती को चाहते थे। लेकिन इस प्रेम में असफल रहने के क्रोध में उन्होंने कन्या के पिता कुशध्वज की हत्या कर दी। कुशध्वज को बृहस्पति का पुत्र और देवगुरू बृहस्पति के समान बुद्धिमान् कहा गया है।

इसके बाद दशग्रीव की सेना मध्य एशिया के उशीरबीज देश में पहुंची। उस देश की समानता वर्तमान अजरबेजान भी मानी जाती है। वहाँ के राजा मरुत्त थे। दशग्रीव के आक्रमण के समय वे यज्ञ कर रहे थे। पुरोहितों ने यज्ञ मण्डप से उठकर युद्ध करने से मरुत्त को रोक दिया। लेकिन रावण ने उन ऋषियों के रक्त से चन्द्रहास की प्यास बुझायी और वहाँ आये प्रमुख देवगणों को जान बचाकर भागना पड़ा। इन्द्र, कुबेर, वरुण, धर्मराज आदि प्रमुख देवों की उपस्थिति से प्रतीत होता है कि उशीरबीज प्रदेश भी देवलोक का ही भाग था।

दक्षिण भारत के पश्चिमी समुद्र सिन्धु सागर (वर्तमान नाम अरब सागर) के तट पर दलजा व फरात नदियों की घाटी के पूर्व में यम लोक था। यम को भी सूर्यवंशी राजा कहा गया है। रावण ने देवों के सभी लोकपालों को जीतने का प्रण किया था। इसलिए उनका विजय अभियान अपने भाई कुबेर से प्रारम्भ हुआ था। यम भी लोकपाल थे। अतः दशग्रीव ने उन पर भी आक्रमण कर दिया। यम अत्यन्त कठोर क्रूर प्रशासक थे। अतः लोग उन्हें साक्षात् मृत्यु समझते थे। दशग्रीव ने स्वयं देखा कि वहाँ जगह-जगह मानव यातना केन्द्र थे और लोगों को अमानवीय यातनायें दी जा रही थीं। यह सब कुछ वैध कानून के शासन के नाम पर होता था। दशग्रीव ने उन लाखों लोगों को मुक्त करा दिया। लोग बहुत सुखी हुए। रावण उनके लिए भी त्राता बन गये। यम की सेना ने भयंकर युद्ध किया। दशग्रीव का पुष्पक विमान तोड़ डाला गया। राक्षस सेना ने भी राजधानी में भयानक तोड़-फोड़ की। युद्ध में दशग्रीव का कवच कट गया और वे बुरी तरह से घायल हुए लेकिन अन्त में यम भी युद्ध क्षेत्र से भाग गये तथा दशग्रीव रावण विजयी रहे।

❖❖ ❖ ❖❖

लंका का स्वर्णयुग - इन्द्र पर विजय

यम पर विजय के बाद दशग्रीव का साहस काफी बढ़ा हुआ था। वे युद्ध में में बुरी तरह से घायल और शरीर से जर्जर हो चुके थे, लेकिन विजय अभियान का उत्साह कम नहीं हुआ। स्वास्थ्य लाभ के बाद दशग्रीव ने समुद्री अभियान प्रारम्भ किया। उस समुद्री क्षेत्र में दैत्य और नागजाति का बाहुल्य था तथा केन्द्रीय सम्राट वरुण थे। दशग्रीव का युद्ध पहले नाग बहुल भोमवती पुरी में हुआ था। उस पर अधिकार करने के बाद दशग्रीव ने मणिमयी पुरी में घेरा डाला। वहां पर निवातकवच नामक दैत्यवंश की शाखा का राज्य था। वे बड़े पराक्रमी और शक्तिशाली थे। एक वर्ष तक दोनों पक्षों में भीषण युद्ध चला, लेकिन कोई परिणाम नहीं निकला। उसके बाद दोनों में मैत्री सन्धि हो गयी। दशग्रीव ने सेना सहित मणिमयीपुरी में बहुत दिनों तक निवास किया तथा यद्धों में क्षत विक्षत हुई सेना को नये सिरे से संगठित किया। लंका की राक्षस सेना ने निवातकवच लोगों की युद्ध कला भी सीखी। इस प्रकार शक्ति बढ़ाकर दशग्रीव ने वरुण की राजधानी की ओर प्रयाण कर दिया।

इस अभियान में अश्म नगर में उनका युद्ध कालकेय दानवों से हुआ। कालकेयों ने वीरतापूर्वक सामना किया, लेकिन दशग्रीव की दिग्विजयी सेना के सामने ठहर न सके। कालकेयों का नेतृत्व रावण दशग्रीव की बहन सूर्पणखा के पति विद्युतजिह्व कर रहे थे। वे भी युद्ध में मारे गये। उसके बाद दशग्रीव ने वरुण का महल घेर लिया। वर्णन मिलता है कि वह बादलों के समान उज्जवल और कैलाशपति के समान प्रकाशमान था। वरुण का मुख्य भवन श्वेत पत्थरों से निर्मित और काफी ऊँचा रहा होगा। वरुणद्वीप दक्षिणपूर्वी एशिया में है। लेकिन ऐसा लगता है कि दशग्रीव का वरुण नगर में युद्ध पश्चिम में हुआ था क्योंकि यह भी उल्लेख है कि यहां पर कोई तीव्रधारा झरना या नदी थी जिसका प्रवाह श्वेत लगता है और कल्पना की गयी है कि क्षीर सागर उसी के प्रवाह से भरा है। क्षीर सागर पश्चिम एशिया के उत्तर मध्य में मध्य एशिया की विशालतम् झील है।

वहां पर वरुम के पुत्रों और पौत्रों ने दशग्रीव की सेना का सामना किया, लेकिन पराजित हुए। वरुण स्वयं युद्ध के लिए नहीं आये। वे सम्भवतः विदेश यात्रा पर गये हुए थे। उनके मन्त्री ने दशग्रीव को सन्धि के समय यही सूचना दी थी। यहाँ पर दशग्रीव का दिग्विजय अभियान पूर्ण होता है। उत्साही विजेता रावण दशग्रीव जब लंका की और वापस लौटो को उनके साथ पराजित शत्रुओं की अनेक सुन्दर स्त्रियां भी थीं। स्पष्ट किया जा चुका है कि राक्षस संस्कृति पूरी तरह भौतिकवादी थी और खाना-पीना मनोरंजन और भोग-विलास उनके जीवन के प्रमुख अंग थे। अतः पराजित शत्रुओं के धन और स्त्रियों का उपभोग करना वे उचित समझते थे।

लंका में पहुंचते ही दशग्रीव को पारिवारिक संकट का सामना करना पड़ा। कालकेय युद्ध में सूर्पणखा के पति विद्युतजिह्व मारे गये थे। सूर्पणखा उन्हें बहुत चाहती थी। उन्होंने रावण के प्रति रोष जताया। बड़ी कठिनाई से सम्राट दशग्रीव ने अपनी प्यारी इकलौती बहन को मनाया। दक्षिण भारत में नर्मदा तट तक लंका के छापामार

हमले होने लगे थे। दशग्रीव ने दण्डकारण्य में स्थायी सैनिक छावनी बनाकर सूर्पणखा को अपने भारतीय प्रदेश का शासक बना दिया। मौसेसे भाइयों खर और दूषण को उनका सेनापति नियुक्त किया और चौदह सहस्र सैनिक उनके अधीन कर दिये।

यह भारत में उनकी पहली और महत्वपूर्ण सफलता थी। दण्डकारण्य में सूर्पणखा की नियुक्ति भारत को स्पष्ट चुनौती थी और अयोध्या के लिए चिन्ता का कारण। ऐसा लगने लगा था कि रघुवंश का गौरव दशरथ के साथ ही समाप्त हो जायेगा। अयोध्या को रावण की सामरिक सफलताओं के समाचार मिल रहे थे। यह आशंका भी अब स्पष्ट रूप से अनुभव होने लगी कि कभी भी अयोध्या सीधा आक्रमण हो सकता है। दशरथ वृद्ध हो चले थे और राजकुमार अभी बालक ही थे। उस युग में या यह कहें कि राजतन्त्र में यही सबसे बड़ी कमी थी कि यदि राजा स्वयं युद्ध नहीं कर सकता तो सेना व्यर्थ होती थी।

इस दिग्विजय अभियान के बाद लंका में शान्ति और समृद्धि का काल रहा। इस बीच राजकुमार मेघनाद बड़े हुए और योग्य उत्तराधिकारी बनने की तैयारी में लगे। उन्होंने विभिन्न प्रकार की युद्ध कलायें सीखीं, नये-नये अस्त्र-शस्त्र और युद्ध वाहन प्राप्त किये। इसके अनन्तर उन्होंने दीर्घकाल तक अध्ययन और तपस्या की। इस बीच दशग्रीव की मौसेरी बहन कुम्भनसी का अपहरण मधु नामक दैत्य ने कर लिया। यह समाचार पाकर दशग्रीव ने पुनः सेना सजायी और एक बार फिर विजय अभियान की घोषणा कर दी। उनका पहल लक्ष्य था मधु पर विजय और उसके बाद देवलोक त्रिविष्टप पर भी पूरी तरह अधिकार कर लेना। इस अभियान में देवों के परम्परागत शत्रु दानवों और दैत्यों ने भी दशग्रीव का साथ दिया। मधुपुरी में कुम्भनसी ने दशग्रीव का स्वागत किया और अपने पति के लिए प्राणदान मांगा। उन्होंने मधु को बहनोई स्वीकार कर लिया और देवलोक के विरुद्ध युद्ध में उन्हें भी साथ ले लिया। रातभर विश्राम कर प्रातः ही मधु सहित दशग्रीव ने उत्तर की ओर प्रयाण किया और सीधे कैलाश पर सैनिक शिविर स्थापित किया। मधुपुरी परम्परागत रूप से मथुरा को ही माना जाता है।

महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं कि कैलाश पर्वत को पार करके महातेजस्वी दशग्रीव रावण इन्द्रलोक में जा पहुंचे। रुद्र, आदित्य, मरुत, वसु, अश्विनी कुमार आदि देवगण कवच और शस्त्र धारण कर रावण का सामना करने आ डटे। दशग्रीव के नाना सुमाली ने राक्षस सेना का नेतृत्व किया। देवसेना बुरी तरह पराजित होकर भाग खड़ी हुई। उस समय सवित्र नामक वसु ने राक्षस सेना पर प्रबल आक्रमण कर दिया और सुमाली का वध कर दिया। इसके बाद वीर मेघनाद ने राक्षस सेना का नेतृत्व किया और प्रलय मचा दी। भागती हुई देवसेना को सम्भालने के लिए इन्द्र ने अपने पुत्र जयन्त को भेजा। उन्होंने वीरतापूर्वक युद्ध किया लेकिन बुरी तरह घायल हो गये। उनके घायल होकर भाग जाने के कारण देवों का हाल और बुरा हो गया। अब स्वयम् इन्द्र युद्ध क्षेत्र में उतरे। इधर दशग्रीव ने मोर्चा सम्भाला। कुम्भकर्ण बुरी तरह घायल हुए। अधिकांश राक्षस सेना नष्ट हो गयी लेकिन मेघनाद इन्द्र को बन्दी बनाने में सफल रहे। रावण भी बुरी तरह घायल थे। विजय की बात सुनकर उनको राहत मिली। मेघनाद को अग्निरथ मिला। तेजहीन पराजित इन्द्र लंका के अधीन सामन्त की तरह देवलोक का शासन चलाने लगे।

राम विवाह तथा वनवास

जिस समय लंका की शक्ति चरम उत्कर्ष पर थी, अयोध्या राजकुमार राम के रूप में एक नन्हीं चुनौती आकार ले रही थी। लंका के विरुद्ध वशिष्ठ और विश्वामित्र कुल एक हो गये थे और दशरथ को दोनों का समर्थन प्राप्त था। विश्वामित्र ने राम की प्रगति से संतुष्ट होकर उनको रणक्षेत्र में उतारने का निश्चय किया। वे राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले गये तथा ताटका का वध कराया। ताटका यक्ष नारी थी, परन्तु अगस्त ऋषि से विरोध हो जाने के कारण लंका की राक्षस संस्कृति अपना ली थी और संरक्षण प्राप्त कर लिया था।

उसके बाद विश्वामित्र ने अपने आश्रम में यज्ञ प्रारम्भ किया। और राम-लक्षमण ने सुरक्षा का दायित्व सम्भाला। इसी बीच ताटका के पुत्र मारीच ने अपने साती सुबाहु के साथ आकर आक्रमण कर दिया। सुबाहु मारे गये और मारीच घायल होकर भाग निकले। बचे-खुचे उनके सैनिक भी भाग गये। इसी युद्ध में अयोध्या की ओर से लंका की राक्षस शक्ति की परीक्षा हो सकी, पहली चुनौती मिली। राम की सफलता से प्रसन्न विश्वामित्र ने राम को व्यापक संहार की क्षमता वाले अनेक शस्त्र दिये और युद्ध कला की श्रेष्ठ शिक्षा दी।

मिथिला से उन्ही दिनों विश्वामित्र को यज्ञ का निमन्त्रण मिला। वे राम और लक्षमण को साथ ले गये। रास्ते में एक सूना उजड़ा हुआ आश्रम मिला। विश्वामित्र ने बताया कि यह आश्रम पहले बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखता था। महर्षि गौतम इसके कुलपति थे। एक बार छल से इन्द्र ने गौतम की पत्नी अहल्या से बलात्कार किया। गौतम ने शाप दे देवराज इन्द्र को नपुंसक बना दिया और अण्डकोश नष्ट कर दिया। बाद में इन्द्र को बकरे के अण्डकोश को प्रत्यारोपण किया गया।

अहल्या पर भी व्यभिचारिणी होने का आरोप लगा और तत्कालीन सामाजिक मर्यादाओं के कारण गौतम को अपनी प्रिय पत्नी का त्याग करना पड़ा। वे आश्रम छोड़कर चले गये और नया आश्रम स्थापित किया। अहल्या समाज से बहिस्कृत एकाकी जीवन व्यतीत करने लगीं। बाल्मीकि के अनुसार इन्द्र के साथ सहवास में अहल्या की स्वीकृति मानी गयी थी, इसलिए अहल्या को भी दण्ड मिला। लेकिन राम ने एक भूल के लिए इतनी बड़ी सजा को क्रूरता ही माना और वे अहल्या के आश्रम में गये। राम ने अहल्या को चरणस्पर्श करके सम्मान दिया और सामाजिक प्रतिष्ठा दिलायी। विश्वामित्र के साथ राम और लक्षमण अहल्या को लेकर गौतम के पास गये तो गौतम ने अपनी पत्नी को स्वीकार कर लिया। जब चक्रवर्ती सम्राट के पुत्र राम और ब्रह्मर्षि विश्वामित्र ने सम्मान दे दिया तब अन्य लोगों को अपनाना ही पड़ा।

अहल्या प्रकरण समाज सुधार के क्षेत्र में राम का महत्वपूर्ण कार्य था। महर्षि गौतम और उनके पुत्र सदानन्द को अपार प्रसन्नता हुई तथा उन्होंने राम और विश्वामित्र की सराहना की। गौतम के दोनों आश्रम मिथिला राज्य में थे। उनके पुत्र सदानन्द मिथिला नरेश सीरध्वज जनक के राज पुरोहित हो गये थे। इन्द्र के दुराचार का भारत में घोर विरोध हुआ और उनका बहिष्कार कर दिया गया। इसी कारण से जब रावण ने इन्द्रलोक पर आक्रमण करके उन्हें बन्दी बनाया तब इन्द्र को भारत की सहायता नहीं मिल सकी। इससे पूर्व

देवासुर संग्रामों में इन्द्र को भारत से सहायता मिलती रही थी। ऋषि भारद्वाज ने इन्द्र की पराजय को स्पष्ट रूप से दुराचार का फल बताया। अहल्या अपने युग की अपूर्व सुन्दरी थी। इन्द्र उनको पाना चाहते थे लेकिन उनका विवाह गौतम से हो जाने पर उन्हें काफी मलाल था। इसी असफल प्रेम का परिणाम था अहल्या बलात्कार प्रकरण। वे पुरुवंश की तीसवीं पीढ़ी के राजा बृहदश्व की पुत्री और दिवोदास की बहन थीं।

अहिल्या को उनके पति और पुत्र के पास पहुंचाने के लिए विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण मिथिला गये। राजा सीरध्वज जनक ने बताया कि मेरी पालित पुत्री सीता को पाने के लिए कई राजा आये, लेकिन मेरी शर्त यह थी कि जो वीर शिव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा, उसी के साथ सीता का विवाह करेंगे। जब राजागण शिव धनुष चढ़ा नहीं सके तब उन्होंने सेना सहित आक्रमण कर दिया। एक वर्ष तक वे घेरा डाले रहे। हमारी युद्ध सामग्री और सेना समाप्त होने की स्थिति में आ गयी। तब मैने देवों की सहायता ली और आक्रमणकारियों को पराजित कर भगा दिया। शिव धनुष हमारे पूर्वज देवरात को शिव ने दिया था। देवरात निमि वंश के छठवें और सीरध्वज जनक बाइसवीं पीढ़ी के राजा थे। राम ने शिव धनुष को उठाया और प्रत्यञ्चा खींची तो वह टूट गया। सीरध्वज जनक ने दूत भेजकर दशरथ को बुलवाया और राम के साथ सीता और दूसरी पुत्री उर्मिला के साथ लक्ष्मण का विवाह किया। सीरध्वज जनक के भाई कुशध्वज की पुत्रियों माण्डवी और श्रुतिकीर्ति का विवाह क्रमशः भरत और शत्रुघ्न के साथ कर दिया गया। राज दशरथ चारों बहुओं के साथ अयोध्या के लिए चल पड़े।

रास्ते मे ऋषि भार्गव राम मिल गये। निश्चित रूप से वे सत्ययुग के जमदग्निपुत्र राम नहीं, उनके आश्रम के तत्कालीन अधिष्ठाता ऋषि थे, वशिष्ठ तथा विश्वामित्र की तरह ही। वशिष्ठ और दशरथ ने उनका सत्कार किया। वे शिव धनुष टूटने से क्रोधित थे। दशरथ ने भार्गव राम से अपने पुत्र राम के प्राणों की भीख मांगी। लेकिन भार्गव राम ने जैसे सुना ही नहीं। उन्होंने राम को अपना वैष्णव धनुष चढ़ाने के लिए चुनौती दी। राम ने मुस्कराकर वह धनुष उनके हांथों से लिया और प्रत्यञ्चा खींची। भार्गव राम ने राजकुमार राम की शक्ति को स्वीकार किया और वापस चले गये। केकय प्रदेश के राजकुमार युधाजित् अयोध्या आये और भरत तथा शत्रुघ्न को साथ लेते गये। राजा जनक के महल में ऋषि राम और लक्ष्मण संवाद केवल कल्पना है। शापवश अहल्या के पत्थर हो जाने की बात भी कवि की कल्पना ही है। बाल्मीकि के अनुसार उपेक्षित अहल्या के चरणस्पर्श कर राम ने उन्हें सामाजिक प्रतिष्ठा दिलायी।

कुछ समय के बाद दशरथ ने राम को युवराज पद देने की घोषणा कर दी। भरत अपने नाना केकय नरेश अश्वपति के पास ही थे। कैकेई और मन्थरा ने एक कूट योजना तैयार की। रानी कैकेई कोपभवन में जा बैठीं। उन्होंने याद दिलाया कि एक बार देवासुर युद्ध में दशरथ बुरी तरह घायल हो गये थे। उस युद्ध में कैकेई ने दशरथ के प्राण बचाये थे, इसलिए दशरथ ने दो वरदान देने का वचन दिया था। कैकेई ने दो वरदानों में भरत को युवराज बनाना और राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास मांग लिया। राम, लक्ष्मण और सीता वन चले गये। अयोध्या का राजमहल पारिवारिक कलह का शिकार हो गया। षड्यन्त्र ने अयोध्या को जर्जर कर दिया। राजा दशरथ ने प्राण

त्याग दिया। पूरे साम्राज्य में विक्षोभ की स्थिति उत्पन्न हो गयी। लक्ष्मण ने को बलपूर्वक राज्य पर अधिकार कर लेने की घोषणा दी लेकिन राम के धैर्य ने गृहयुद्ध रोका। भरत को ननिहाल से बुलाया गया। उन्होंने भी राज्य का त्याग करके स्थिति को सम्भाला। यदि भरत सत्ता सम्भाल लेते तो गृहयुद्ध होना तय था।

भरत ने स्थिति को समझा और राम को वापस लाने के लिए चित्रकूट गये। राम को न लौटना था और न वे लौटे। अयोध्या लौटने पर राम की अपेक्षा त्याग भावना में पलड़ा भरत का ही भारी पड़ता। अतः राम और भरत दोनों ने त्याग का परिचय दिया। भरत ने शासन चलाया, लेकिन सिंहासन पर राम की पादुका रखकर। रक़्तपात रोकने का यही मध्यम मार्ग अचूक उपाय था। राम वनों में स्थित ऋषियों के आश्रमों में जाकर आत्मीयता बढ़ायी और समर्थन जुटाया। इसी बीच विराध नामक राक्षस ने सीता को पकड़ लिया। वह तुम्बरु नामक गन्धर्व था। कुबेर ने उसे निष्कासित कर दिया था। अतः विराध नाम से राक्षस बन गया था। राम ने बड़ी कठिनाई से उसे हराया और सीता को मुक्त कराया। लक्ष्मण ने उसे कब्र खोदकर दफना दिया था। इस घटना पर राम ने कहा कि कैकेई ने जिस उद्देश्य से हमें वन भेजा था, वे संकट प्रारम्भ हो गये हैं। उन्हें केवल भरत को राज्य दिलाने से ही सन्तोष नहीं हुआ।

इन परिस्थतियों के बीच राम ने जिस तरह एक के बाद एक सफलतायें पायीं, उससे ऋषियों के साथ पराजित देवों को भी राम के अन्दर भविष्य की सम्भावनायें दिखायी पड़ने लगीं थीं। परिस्थितियाँ ऐसी बनीं कि राम के लिए वनवास भी वरदान बन गया और भरद्वाज, सुतीक्ष्ण, अगस्त्य आदि प्रमुख ऋषियों का समर्थन और सहायता प्राप्त हुई। अहल्या प्रकरण में महर्षि गौतम के हृदय में तो राम अपूर्व प्रतिष्ठा पा ही चुके थे।

❖❖ ❖ ❖❖

लंका शासित दक्षिण भारत में राम की विजय

चित्रकूट के आगे दक्षिण दिशा में बढ़कर राम ने गोदावरी नदी के निकटवर्ती पञ्चटी क्षेत्र में निवास करना प्रारम्भ किया। मार्ग में राम की भेट दशरथ के मित्र जटायु से हुई। वाल्मीकि ने उनका पूरा वंश परिचय दिया है। वे महर्षि कश्यप की एक पत्नी विनता के दूसरे पुत्र अरुण के वंशज थे। विनता के एक पुत्र गरुड़ थे जिनके वंशज कश्यप सागर या क्षीर सागर के तट पर मध्य एशिया के वैकुण्ठ राज्य में विष्णु के साथ प्रमुख भागीदार थे। जटायु के बड़े भाई सम्पाति थे। इस प्रकार ऋषियों तथा जनजातियों के साथ सम्पर्क बढ़ाते हुए राम ने वनवास काल के तेरह वर्ष सकुशल बिता दिये।

एक दिन राम के आश्रम में सूर्पणखा आ पहुंचीं। उन्होंने राम से सीधा प्रश्न किया कि मुनियों के तपस्वी वेश में, लेकिन धनुष बाण लिए हुए आप यहाँ क्या कर रहे हैं? उन्होंने कहा कि यह क्षेत्र लंका के राक्षसों के अधीन और उनके द्वारा सुरक्षित है। राम ने अपना परिचय दिया और यह भी बताया कि किस प्रकार सौतेली माता कैकेयी के कारण वनवास काटना पड़ रहा है। सूर्पणखा के पति उनके भाई रावण के हाथों से ही मारे जा चुके थे। वे विधवा तो थी ही,

उन्हें पारिवारिक कारणों से राम का वनवास अपने दुःख को ताजा करने वाला लगा। उन्होंने राम के साथ मित्रता की चरम परिणति के रूप में विवाह का ही प्रस्ताव रख दिया। राम को हंसी आ गयी। सूर्पणखा की आयु राम की तुलना में बहुत अधिक थी। वाल्मीकि ने उन्हें युवा राम की तुलना में उस समय वृद्धा बताया है। राम ने उन्हें परिहास में लक्ष्मण की कुटी में भेज दिया। लक्ष्मण ने स्वयं को राम का दास बताते हुए राम के पास वापस भेजा।

सूर्पणखा का प्रस्ताव था कि अपने राज्य से निकाल दिये जाने से आप दयनीय स्थिति में हैं और मेरे साथ विवाह करके इस दक्षिणापथ क्षेत्र के राजा हो जायेंगे। जब सूर्पणखा को यह अहसास हुआ कि उनके सहानुभूतिपूर्वक रखे गये प्रस्ताव का उपहास किया जा रहा है तो उन्होंने क्रोध में आक्रामक रूप ले लिया। अब तक राम की कुटी में लक्ष्मण भी आ चुके थे। लक्ष्मण ने तलवार खींच ली और सूर्पणखा के कान और नाक काटकर विश्वविजेता रावण को सीधी चुनौती दे डाली। सूर्पणखा बदहवास हो भागी अपने शिविर में गयीं। उनके भाई ऐर सेनापति खर ने उनकी हालत देखी तो क्रोध में कांप उठे। सूर्पणखा के नाक और कानों से बुरी तरह से खून बह रहा था। वे खर के सामने जमीन पर धड़ाम से गिर पडीं। धीरे-धीरे होश में आकर सूर्पणखा ने बताया कि दो युवक इस क्षेत्र में आ गये हैं। राजकुमार तो लगते हैं, पर मैं कह नही सकती कि व देव हैं या मानव। वे स्वयं को अयोध्या नरेश दशरथ का पुत्र बता रहे हैं। खर ने चौदह सैनिकों का एक दस्ता राम, लक्ष्मण और सीता के वध के लिए भेज दिया। लेकिन उन सबकी मृत्यु की सूचना देने के लिए केवल सूर्पणखा ही जीवित लौट सकी।

इस पर खर व दूषण ने पूरी सेना तैयार करने को कहा और स्वयं भी चौदह हजार सैनिकों के साथ युद्धक रथ पर बैठ आक्रमण के लिए चल दिये। लेकिन उनकी समस्या यह थी कि राम इन स्थितियों के लिए तैयार बैठे थे और उन्हे अचानक युद्ध का सामना करना पड़ा। राम ने महासंहारक अस्त्रों का प्रयोग किया और खर की सेना भाग खड़ी हुई। दूषण ने जोरदार हमला किया, पर वे भी मारे गये। इसके बाद खर ने स्वयं मोर्चा सम्भाला, लेकिन वे भी मारे गये।

इस विजय से दक्षिणापथ अथवा दक्षिण भारत से राक्षसों के पैर उखड़ गये और राम का प्रभुत्व स्थापित हो गया। लंका के इस सैनिक शिविर के बावजूद अयोध्या उस क्षेत्र पर अपना अधिकार मानता था। राम ने व्यावहारिक रूप से उसे राक्षसों से मुक्त करा लिया। यह एक प्रकार से निर्णायक युद्ध था जिससे राम के रणकौशल की धाक जम गयी। वे भारत के लिए नायक और लंका के लिए खलनायक सिरदर्द बन गये।

इस विनाश का समाचार लेकर जनस्थान से अकम्पना लंका पहुंचे। उन्होंने बताया कि अधिकांश राक्षस सैनिक मारे गये हैं और मुझे जान बचाकर भागना पड़ा है। उन्होंने दशग्रीव से कहा कि राम और लक्ष्मण के साथ कोई सेना नहीं है लेकिन उनका अस्त्र-शस्त्र भण्डार उच्चकोटि का है। राम के साथ उनकी पत्नी सीता भी है। सीता अति सुन्दर है। उनका अपहरण कर लें तो राम वैसे ही शक्तिहीन हो जायेंगे।

रावण को याद आया कि राम ताटका का भी वध कर चुके हैं। अतः वे ताटका के पुत्र मारीच के पास गये ऐर सीता के अपरहण में सहयोग मांगा। मारीच स्वयं भुक्तभोगी थे और उन्हें राम की

सामरिक शक्ति के विकास की भी जानकारी थी। उन्होंने दशग्रीव रावण को समझाकर वापस भेज दिया। इस प्रकार सीता अपहरण योजना ही निरस्त हो गयी। लेकिन लंका में सूर्पणखा खुद जा पहुंची। उन्होंने रावण को बुरी तरह से फटकारा और कहा कि आप विलास में लीन हैं और राज्य की व्यवस्था ध्वस्त हो गयी है। दक्षिण भारत हाथ से निकल गया है। जनस्थान सैनिक शिविर ध्वस्त कर दिया गया और गुप्तचरों ने आपको सूचना तक नहीं दी। जो राजा अपने खोये हुए प्रान्त को वापस पाने का प्रयत्न नहीं करता, उस प्रजा बहुत दिन तक सहन नहीं करती है। सूर्पणखा ने भी रावण को सीता के अपहरण के लिए उकसाया। दशग्रीव एक बार फिर मारीच के पास गये और आदेश के स्वर में सहयोग के लिए कहा। मजबूरी में उन्हें साथ देना पड़ा। सीता अपने आश्रम में फूल चुन रही थी, जब उन्होंने स्वर्णमृग देखा। पूरे अधिकार से उन्होंने राम से उस मृग को जीवित या मृत अवस्था में लाने के लिए कहा। राम ने तलवार और धनुष उठाया और चले गये। जब मारीच ने राम की आवाज की नकल करते हुए 'हा लक्ष्मण! हा सीते! की आवाज लगायी तो सीता ने लक्ष्मण को जबरन भेजा। उन्होंने कहा कि लगता है कि तुम चाहते हो कि राम किसी संकट में फंस जायें और तुम मुझे अपनी पत्नी बना लो।

जो लक्ष्मण अपने भाई राम के लिए बलपूर्वक अयोध्या पर अधिकार करने को तैयार थे और जिन्होंने राज्य छोड़कर केवल राम और सीता की सेवा सहायता के लिए वनवास स्वीकार किया था, उन लक्ष्मण के प्रति ऐसे विचार का जो परिणाम होना था, वही हुआ। लक्ष्मण तो राम की खोज में चले गये और रावण राम के आश्रम में आ गये। मुनिवेशधारी रावण का सीता ने स्वागत किया। जब वे सन्तुष्ट हो गये कि सीता अकेली हैं तो उन्होंने अपना परिचय दिया और पटरानी बनाने का प्रस्ताव रखा। सीता ने उन्हें बुरी तरह फटकार दिया तो वे सीता का अपहरण करके ले गये। मार्ग में जटायु ने सीता को बचाने का प्रयास किया लेकिन रावण ने उन्हें बुरी तरह से घायल कर दिया। सीता ने ऋष्यमूक पर्वत पर कुछ लोगों को बैठे देखकर अपने वस्त्र और आभूषण रथ से फेंक दिये।

दशग्रीव रावण सीता को लेकर लंका पहुंचे। उन्होंने सबसे पहले जनस्थान में गुप्तचर नियुक्त किये। विश्व विजय के उन्माद में सोये हुए दशग्रीव जगे और शासन व्यवस्था चुस्त करने लगे। इतना वे समझ ही रहे थे कि सीता अपहरण के बाद लंका को एक युद्ध लड़ना ही पड़ेगा। उन्होंने आठ प्रमुख सैनिक गुप्तचरों को जनस्थान भेजा और राम की एक-एक गतिविधि पर नजर रखने के लिए आदेश दिया। उन्होंने गुप्तचरों को बताया कि जनस्थान सैनिक शिविर ध्वस्त कर दिया गया है, अतः वहाँ से कोई सहायता नहीं मिल सकेगी और आपको अपने ही भरोसे वहाँ पर रहकर कार्य करना पड़ेगा। वापस लौटने पर राम ने सीता को आश्रम में नहीं पाया तो उनकी खोज शुरू कर दी।

❖❖ ❖ ❖❖

लंका का पतन - राम की महान् विजय

दशग्रीव रावण सीता को अपना वैभव दिखाकर प्रभावित करने का प्रयास किया। उन्होंने सीता को पटरानी बनाने तथा समस्त बल वैभव की स्वामिनी बनाने का प्रस्ताव रखा। लेकिन राम को सच्चे मन से प्यार करने वाली सीता ने उन्हें कठोरता से झिड़क दिया और कहा कि तू इस शरीर को बन्धन में जाल सता है या टुकड़े-टुकड़े कर सकता है लेकिन सीता कभी भी राम के अलावा किसी अन्य की नहीं हो सकती। दशग्रीव ने सीता को प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर अशोक वाटिका में रखा और वहाँ महिला सुरक्षा कर्मियों का ही पहरा बैठाया। सीता की सुरक्षा में कोई भी पुरुष नियुक्त नहीं किया गया। दशग्रीव ने सीता को चेतावनी देते हुए कहा किय यदि बारह मास के अन्दर मेरी पटरानी बनना स्वीकार नहीं किया तो तुमको मार डाला जायेगा।

वे इन्द्रलोक की अप्सरा के साथ तो बलात्कार कर सकते थे, लेकिन भारत की नारी के साथ नहीं। उन्हें सीता की स्वीकृति की आवश्यकता थी। उनका मानना था कि विवाहित स्त्री के साथ उसका इच्छा के बिना सहवास अनुचित था। इससे सिद्ध होता है कि राक्षस संस्कृति सामाजिक मर्यादायओं को मानती थी और शत्रुओं के साथ भी उसका पालन करती थी। अविवाहित कन्या का हरण करके विवाह करने की परम्परा तो राक्षस विवाह के रूप में मान्य है, परन्तु विवाहित स्त्री के साथ बलात्कार घोर अनैतिक ही माना जाता था।

सीता की खोज में भटकते हुए राम और लक्ष्मण की भेंट जटायु से हुई। वे अत्यधिक घायल थे। उन्होंने किसी तरह राम को इतनी सूचना दी कि सीता को दशग्रीव रावण साथ ले गये हैं और उनके साथ युद्ध में ही मेरी यह दशा हुई। राम के सामने ही जटायु ने प्राण त्याग दिये। राम ने उनका विधिवत् अन्तिम संस्कार किया। आगे बढ़ने पर अयोमुखी राक्षसी से टकराव हुआ तो लक्ष्मण ने उसके नाक, कान और दोनों स्तन तलवार से काट दिये। यह घटना सीता के अपहरण स्थल जनस्थान दण्डकारण्य से काफी आगे दक्षिण की है। वह क्षेत्र क्रोञ्चारण्य से आगे मातङ्ग मुनि के आश्रम के निकट बताय गया है। उसी क्षेत्र में राम और लक्ष्मण ने कबन्द नामक दानव का भी वध किया जिनसे उन्हें सुग्रीव और ऋष्यमूक पर्वत के विषय में जानकारी मिली। कबन्ध ने राम को बताय कि पम्पा सरोवर के पश्चिम में मातङ्ग ऋषि का प्राचीन आश्रम है जिसमें अब केवल शबरी निवास करती हैं। वे विद्वान् तपस्विनी हैं। पम्पा के पूर्व में ऋष्यमूक पर्वत है जिस पर सुग्रीव अपने सहयोगियों के साथ रहते है। उनके भाई बालि ने राज्य और उनकी पत्नी पर अधिकार कर लिया है। सुग्रीव और आपका कष्ट समान है। अतः आप सुग्रीव से मित्रता कर लें। आप उनका कष्ट दूर करने में समर्थ हैं तथा मित्रता के साथ आपको सुग्रीव के राज्य की सेना और संसाधन प्राप्त हो जायेंगे। सुग्रीव राक्ष साम्राज्य से भली-भांति परिचित हैं। सीता को जहाँ भी रखा गया होगा, उनके गुप्तचर खोज निकालेंगे।

राम पम्पा सरोवर पर गये। पहले शबरी का आश्रम देखा। वह पूरा क्षेत्र मातङ्गवन कहलाता था। मातङ्ग ऋषि के आश्रम में बालि नहीं जा सकते थे। इसलिए सुग्रीव उस क्षेत्र में आश्रम लिये हुए थे। राम

से आकर पहले सुग्रीव के मन्त्री हनुमान मिले। उन्होंने दोनों में मित्रता करायी। वे भी सूर्यवंशी कहे जाते हैं। बालि की शत्रुता मय दानव के पुत्रों मायावी और दुन्दुभि से थी। बालि एक युद्ध में दुन्दुभि का वध कर चुके थे। मायावी के साथ युद्ध एक गुफा में हुआ जिसके बाहर सुग्रीव रक्षक के रूप में थे। बालि को मारा गया समझकर सुग्रीव किष्किन्धा आ गये और राजा बन गये। जब बालि लौटे तो सुग्रीव को राज्य से बाहर निकाल दिया। अतः दोनों भाईयों के बीच शत्रुता हो गयी। बालि ने दुन्दुभि दानव का वध करके शव को मातङ्ग आश्रम क्षेत्र में फेंक दिया था। अतः ऋषियों के क्रोध के भय से बालि मातङ्ग क्षेत्र में नहीं जाते थे।

राम से मिलकर हनुमान को आभास हुआ कि इनको भी सुग्रीव की सहायता चाहिए तो उन्होंने मन ही मन अपने स्वामी सुग्रीव का स्मरण का और उन्हें लगा कि सुग्रीव का राज्य वापस मिलने का योग बन रहा है। हनुमान की आशा सत्य हुई। राम ने भरोसा दिलाकर सुग्रीव को बालि से युद्ध करने के लिए भेजा। एक बार वे हारकर भाग आये। लेकिन दोबारा राम साथ गये और कुछ दूरी पर धनुष पर बाण चढ़ाकर खड़े रहे। जब बालि अपने भाई सुग्रीव के साथ युध् में उलझे हुए थे, राम ने बाण छोड़ दिया जो सीने में लगा और बालि घायल होकर गिर पड़े। उन्होंने राम को बहुत धिक्कारा और कहा कि रघुवंश के धर्मात्मा और वीर सम्राट दशरथ ने तुम्हारे जैसे शठ और पापी को कैसे जन्म दे दिया। तुम्हारे राज्य में धरती पापी की पत्नी की तरह दुःखी रहेगी। तुमने स्वार्थवश मुझे मारा है। यदि तुम मुझसे कहते तो मैं एक दिन में ही सीता को खोज कर ले आता। यदि तुम सामने आकर युद्ध करते तो अब तक जीवित नहीं होते।

राम ने कहा कि इस समय के चक्रवर्ती सम्राट भरत हैं। हमें तथा अन्य राजाओं को भरत का आदेश है कि धर्म के प्रसार का प्रयास किया जाये। राजाओं में श्रेष्ठ भरत के राज्य में धर्म का उल्लंघन करने वालों को हम उनकी ओर से दण्ड देते हैं। तुमने अपने छोटे भाई की पत्नी रूपा का उपभोग किया है, जो अपराध है। अतः राजा भरत के आदेशानुसार तुम्हें दण्ड दिया गया। इसके अलावा मैंने सुग्रीव के साथ मित्रता का निर्वाह भी किया है। अर्थात् राम केवल भरत के राज्य के कानून-व्यवस्था देख रहे थे। सुग्रीव को पत्नी मिला और राज्य भी। वे सैन्य संगठन में लग गये। सीता की खोज के लिए चारों दिशाओं में अभियान दल भेजे गये।

इसी क्रम में बाल्मीकि ने कम से कम सम्पूर्ण एशिया के भूगोल का वर्णन किया है। उत्तर में उत्तरी ध्रुव महासागर तक, पूर्व में यवद्वीप (जावा), सुमात्रा, वरुणद्वीप से आगे आधुनिक प्रशान्त महासागर तक तथा पश्चिम में क्षीर सागर, लोहित या लाल सागर, मृत सागर तक अभियान दल भेजे गये थे। दक्षिण के अभियान दल के नायक केसरी के पुत्र हनुमान सफल सिद्ध हुए। उन्होंने दक्षिण भारत का चप्पा-चप्पा छान मारा और दशग्रीव की राजधानी लंका तक जाकर सीता से मिलने और राम का सन्देश देने में सफल रहे। हनुमान का यह अभियान योद्धा का नही, दक्ष गुप्तचर का कार्य था। हनुमान का सीता खोज अभियान आधुनिक जासूसी उपन्यासों से कम रोचक नहीं था। हनुमान ने सीता को अशोक वाटिका, प्रमदानव में चैत्य प्रासाद (धर्मस्थल) के निकट देखा था।

जब वे एक वृक्ष पर छिपे हुए थे, संयोगवश दशग्रीव वहाँ आये।

हनुमान ने उन्हें पहचानने का प्रयास किया। उनके साथ अनेक स्त्रियां थीं। उन्होंने सीता से कहा कि बारह मास की अवधि में केवल दो मास शेष हैं। यदि तू दो मास में मेरी शैय्या पर नहीं आयी तो मेरे रसोइये तेरी बोटी-बोटी काटकर भोजन बना देंगे। हनुमान ने उनके चले जाने के बाद सीता को राम की दी हुई मुद्रिका दी। सारा समाचार पाकर सीता ने हनुमान को चूड़ामणि दी और शीघ्र मुक्त कराने के लिए राम से आने के लिए कहा। हनुमान ने सीता को साथ ले चलने का प्रस्ताव रखा, लेकिन सीता ने अनेक खतरे तथा राम के यश न होने की बात कहकर ठुकरा दिया।

उसके बाद हनुमान ने लंका में भीषण विध्वंस किया। अशोक वाटिका उजाड़ दी, चैत्य प्रासाद को ध्वस्त कर दिया और प्रहस्त के पुत्र जम्बुमाली, मन्त्रयों के सात पुत्रों, पाँच सेनापतियों तथा रावण के पुत्र अक्षयकुमार सहित दर्जनों लोगों को मौत के घाट उतार दिया। मेघनाद ने हनुमान को बन्दी बनाया और दशग्रीव के दरबार में पेश कर दिया। राजदूत का वध न करने की आचार संहिता के कारण मृत्युदण्ड नहीं दिया जा सका और हनुमान लंका में भीषण अग्निकाण्ड करके वापस लौट आये।

हनुमान से सीता का समाचार पाकर राम ने सुग्रीव के नेतृत्व में सेना सहित प्रयाण कर दिया। विशाल सेना ने समुद्र तट पर डेरा डाला। नल और नील ने समुद्र पर पुल बनवाया। इसी बीच दशग्रीव से मतभेद होने पर उनके छोटे भाई विभीषण राम से आकर मिल गये। उसके बाद अपने युग के भीषणतम महायुद्ध में लंका की सम्पूर्ण सैन्य शक्ति का व्यापक रूप से विध्वंश हुआ। परिवार सहित दशग्रीव रावण मारे गये और लंका पर राम का अधिकार हो गया।

लंका युद्ध में दशग्रीव के साथ युद्ध में घायल होकर राम और लक्ष्मण दोनों मूर्क्षित हुए। जाम्बवान् के आदेश पर हनुमान हिमालय से कोई दिव्यौषधि लाये थे जिससे राम और लक्ष्मण स्वस्थ हुए। मेघनाद को मारकर लौटे लक्ष्मण की चिकित्सा सुषेण ने की थी। सुषेण नाम के दो लोग सुग्रीव की सेना में थे। एक थे सुग्रीव के ससुर और दूसरे सेनापति। सुग्रीव पर्वतीय जनजाति वानर समुदाय के सदस्य थे और वनस्पतियों के औषधीय गुणों से वे लोग भली-भांति परिचित थे। मेघनाद जब मन्दिर में पूजा कर रहे थे, तब विभीषण की सलाह पर आक्रमण किया गया था। लक्ष्मण के साथ विभीषण भी गये थे।

युद्ध के दौरान राम को सुग्रीव के माध्यम से दक्षिण भारत से विशाल सेना की सहायता तो मिली ही, साथ ही रावण से पराजित इन्द्र ने भी सेना और युद्ध सामग्री से सहायता दी। इन्द्र द्वारा दिये गये युद्धक रथ पर राम ने युद्ध किया। स्वयं इन्द्र ने राम के अधीन युद्ध में भाग लिया। यह श्रेय राम से दो हजार से अधिक वर्षों पूर्व उनसे लगभग साठ पीढ़ी पहले हुए पुरञ्जय ककुत्स्थ को ही मिला था। उन्हीं के नाम पर राम को काकुत्स्थ भी कहा गया। लंका से सुषेण को लाया जाना, राम के द्वारा रामेश्वरम् की स्थापना, दशग्रीव रावण की नाभि में अमृत होने जैसी बातें हजारों वर्ष बाद की कवि कल्पना से अधिक महत्व नहीं रखती हैं।

लंका युद्ध का ऐतिहासिक महत्व है। अयोध्या में रघुवंश और लंका में राक्षस शक्ति परस्पर प्रतिद्वद्न्द्वी पड़ोसी शक्तियां थीं। एक दिन दोनों में टकराव और एक का पतन निश्चित था। जिस तरह से नाटकीय घटनाक्रम और चमत्कारी ढंग से लंका का पतन हुआ, उस

पर विचार करके आज भी रोमाञ्च हो जाता है। अयोध्या में राजमहल के षड़यन्त्र से निर्वासित राम एक के बाद एक संकट से जूझते हुए हताश स्थिति में थे। सुग्रीव से मैत्री स्वयं टूटते हुए राम के लिए राम के लिए सञ्जीवनी बन गयी। युद्ध के दौरान भी एक बार विजय से निराश और हार की आशंका से पीड़ित राम ने सेना से लौट जाने को कह दिया था। लेकिन इन्द्र की सहायता मिली, युद्ध का पासा पलटा और राम एक ही युद्ध में विश्व विजयी हो गये।

राम ने लंका पर विजय के बाद दशग्रीव रावण के विद्रोही भाई विभीषण को लंका का राजा बना दिया। अब विभीषण राम के अधीन माण्डलिक सामन्त के रूप में ही सही, पर लंका के शासक तो थे ही। राम ने उन्हें सीता को लाने का आदेश दिया। राम के शिविर के बाहर सीता की पालकी रोकी गयी। राम के आदेश पर सीता को वहाँ से पैदल ही लाया गया। राम के सभी सहयोगी सीता को देखने के लिए उत्सुक थे। सुरक्षाकर्मियों ने भीड़ को हटाना शुरू किया तो राम ने कहा किय ये सभी लोग मेरे अपने हैं। सभी को सीता का दर्शन करने दो।

जब सीता राम के पास पहुंची, तब राम ने कहा कि मैंने रघुकुल के सम्मान की रक्षा के लिए इतना बड़ा युद्ध लड़ा और तुम्हें मुक्त कराया है। अब तुम पूरी तरह स्वतन्त्र हो, जहाँ जाना चाहो, जा सकती हो। सीता को राम से ऐसे व्यवहार की आशा नहीं थी। उन्होंने राम के इस व्यवहार को अनुचित बताया और अग्निप्रवेश का निर्णय ले लिया। इस निर्णय पर राम के पूरे शिविर में अवसाद और विक्षोभ फैल गया। इन्द्र के नेतृत्व में प्रमुख देवगण भी वहाँ थे। देवों ने विजयी राम को आदेश देते हुए सीता को साथ रखने के लिए कहा। राम ने कहा कि सीता का निवास सदैव मेरे हृदय में है। यह बात तो मैंने लोक व्यवहार के विचार से ही कही थी। इसी प्रकरण को सीता की अग्नि परीक्षा उचित ही कहा जाता है।

इसके बाद राम विजयी सेना के साथ अयोध्या चले गये। सीता के कहने पर सेना ने किष्किन्धापुर में एक रात विश्राम किया और वहां तार तथा अन्य प्रमुख लोगों को भी साथ लेकर आगे बढ़े। अब तक राम के वनवास की अवधि भी पूरी हो चुकी थी। इतनी बड़ी विजय के बाद राम महानायक बन चुके थे। उनके स्वागत के लिए पूरी अयोध्या उत्सुक थी। भरत ने राम को सहजता से राज्य सौंप दिया।

❖❖ ❖ ❖❖

राम का शासनकाल

दशग्रीव रावण का शासन काल वास्तव में लंका का स्वर्णयुग था। अपराजेय सैनिक शक्ति, अतुल धन वैभव और व्यवस्थित शासन व्यवस्था लंका के लिए गर्व का विषय था। यदि भारत में रघुवंश की शक्तिशाली सत्ता न होती और केन्द्र थोड़ा भी कमजोर होता तो दशग्रीव हिमालय से महासागर तक एकछत्र राज्य स्थापित कर चुके होते। इतना भी कम नहीं है कि नर्मदा तक बढ़ते हुए शत्रुओं को रोकने का साहस दशरथ नहीं कर सके थे। यदि राम के नेतृत्व में लंका पर विजय न मिली होती तो मेघनाद के हांथों अयोध्या का पतन निश्चित था। लेकिन राक्षस संस्कृति के भोगवाद और क्रूरता ने मित्रों से अधिक शत्रु बना लिये थे। उन सबने राम का साथ दिया और लंका के पतन के कारण बने। लंका का पतन उसकी सैनिक

कमजोरी नहीं, विदेशनीति की असफलता थी।

राम ने छत्तीस वर्षों तक मर्यादा से बंधे रहकर राज किया। उनके शासन काल में सीता का निष्कासन, मथुरा और गान्धार) उत्तरी पंजाब से अफनगानिस्तान) के विद्रोहों का दमन और शम्बूक वध प्रमुख घटनायें हैं।

सीता निष्कासन - एक दिन दरबारियों ने राम को बाताया कि प्रजा में सीता को लेकर निन्दा फैल रही है। लोगों का कहना है कि एव वर्ष तक लंका में रहने पर सीता को स्वीकार कर लेना मर्यादा का उल्लंघन है और राम की यह कामुक आसक्ति है कि उन्होंने सीता को रख लिया। इससे इस रामराज की तथाकथित मर्यादा के स्वरूप की बानगी मिलती है। सीता के पूर्ण समर्पित पत्नी और आदर्श प्रेयसी होने पर तो प्रश्न उठाया ही नहीं जा सकता। राम ने भारी मन से लोकभय से सीता को छोड़ने का निर्णय लिया और यह कठोर कार्य लक्ष्मण को सौंपा गया। वे गर्भवती सीता को वाल्मीकि के आश्रम के निकट छोड़ आये।

विद्रोहों का दमन - हम जान चुके हैं कि मधुपुरी (मथुरा) में दानव मधु का राज्य था। उन्होंने रावण की रिश्ते की बहन कुम्भीनसी का अपहरण कर विवाह कर लिया था। मधु ने इन्द्र के विरुद्ध युद्ध में रावण का साथ दिया था। रावण के बाद राम ने स्वाभाविक ही उसे अयोध्या का राज्य माना। मधु तो शान्त रहे, लेकिन लवण ने विद्रोही तेवर दिखाने प्रारम्भ कर दिये। शत्रुघ्न सेना लेकर गये और लवम को मारकर विद्रोह शान्त किया। राम ने शत्रुघ्न को मधुपुरी में प्रान्तीय शासक नियुक्त कियि।

अयोध्या से मधुपुरी जाते समय शत्रुघ्न एक रात वाल्मीकि के आश्रम में रुके। संयोगवश उसी दिन सीता ने जुड़वा बालकों को जन्म दिया। मधुपुरी में नियुक्ति होने के बारह वर्षों बाद शत्रुघ्न एक सप्ताह के लिए अयोध्या गये थे। रास्ते में वाल्मीकि आश्रम में उन्होंने राम के जीवन पर आधारित काव्य का गान सुना। सीता के पुत्र कुश और लव वाल्मीकि के संरक्षण में तैयार हो रहे थे।

केकय नरेश युधाजित् ने एक बार गन्धर्वों के विद्रोह की सूचना अयोध्या को दी। इस बार भरतको सेनापति बनाकर भेजा गया। केकय को इससे और भी प्रसन्नता हुई। भरत ने वीरतापूर्वक गन्धर्वों के विद्रोह का दमन किया और तक्षशिला तथा पुष्कलावर्त नामक नगरों की स्थापना कर वहाँ पर अपने पुत्रों तक्ष और पुष्कल को नियुक्त कर दिया और अयोध्या लौट गये। इसके बाद राम ने लक्ष्मण के दोनों पुत्रों अंगद और चन्द्रकेतु के बारे में विचार किया। भरत की राय से कारुपथ क्षेत्र में अंगदीप और चन्द्रकान्त नामक नगर बसाकर उन दोनों कुमारों को भी नियुक्त कर दिया गया।

सीता का आत्मोसर्ग - यदि अश्वमेघ का आयोजन न करे तो सम्राट कैसा, अतः राम ने भी अश्वमेघ यज्ञ किया। योजनानुसार वाल्मीकि ने कुश और लव को अयोध्या भेज दिया। वे गली गली में रामायण का गान कर रहे थे। उनकी चर्चा राज दरबार तक भी पहुंची और उन्हें बुलाया गया। उन्होंने सीता निष्कासन की करुण कथा मार्मिक स्वरों में सुनायी तो सार वातावरण बोझिल हो गया। कुश और लव ने अपना परिचय वाल्मीकि के शिष्य के रूप में दिया था। रामायण गान से ही राम समझ गये थे कि ये दोनों बालक सीता के ही पुत्र हैं। उन्होंने दूतों को भेजकर सीता को बुलवाया। महर्षि वाल्मीकि की आज्ञा से उनके साथ सीता यज्ञ मण्डप में आयीं। अब

तक सीता के प्रति माहौल बदल चुका था। जिस प्रकार राम ने सम्मान देकर अहल्या को समाज में प्रतिष्ठा दिलायी थी, उसी प्रकार वाल्मीकि ने सम्मान प्रदान कर सीता की पवित्रता को प्रमाणित किया तो राजा-प्रजा सब पानी-पानी हो गये। लेकिन अब सीता उस कथित मर्यादा का बोझ सहने के लिए तैयार नहीं थी। वे पहले ही बहुत सहन कर चुकीं थीं। मर्यादा के इस रूप को देखकर सीता ने वहीं प्राण त्याग दिये।

❖❖ ❖ ❖❖

शम्बूक वध तथा लक्ष्मण का परित्याग

सीता निष्कासन के अलावा रामराज पर सबसे बड़ा कलंक है तपस्वी शम्बूक का वध। एक दिन राम की राजसभा में एक वृद्ध ब्राह्मण ने आकर कहा कि मेरे बालक की अकाल मृत्यु हो गयी है। उसने विश्वासपूर्वक कहा कि मैने कभी कोई दुष्कर्म नहीं किया है, अतः इस बालक की अकाल मृत्यु तुम्हारे ही दुष्कर्मों के कारण हुई है। या तो तुम मेरे इस बालक को जीवित करो या मैं अपनी पत्नी सहित राजमहल के द्वार पर प्राण त्याग दूंगा और तुम ब्रह्म हत्या के अपराधी माने जाओगे।

राम परेशान हो उठे। ब्रह्महत्या के आरोप का फल होता मृत्यु दण्ड या उससे भी बुरी स्थिति में जीवन काटना। उन्होंने गुरु वशिष्ठ को बुलवाया। वे अपने समर्थक आठ अन्य ऋषियों के लेकर आये। उनमें न विश्वामित्र शामिल थे और न वाल्मीकि या भार्गव राम। मार्कण्डेय, मौद्गल्य, वामदेव, कश्यप, कात्यायन, जाबालि, गौतम तथा नारद नाम के ऋषि उस दल में सम्मिलित बताये गये हैं। भारत के विभिन्न क्षेत्रों में दूर-दूर रहने वाले इन ऋषियों का उस दिन एक साथ अयोध्या आ जाना ही आश्चर्यजनक है। राम ने वशिष्ठ के समक्ष अपनी समस्या रखी और कहा कि ब्राह्मण राजभवन के द्वार पर धरना दिये हुए हैं। वशिष्ठ ने परम चतुरता का परिचय दिया। वे स्वयं कुछ नहीं बोले। सात प्रमुख ऋषि भी शान्त रहे।

नारद ने राम से कहा कि तुम्हारे राज्य में एक शूद्र कठोर तपस्या कर रहा है। इसी कारण बालक की अकाल मृत्यु हुई है। वशिष्ठ की इस बात में मौन सहमति थी। राम को मानना पड़ा। यदि शम्बूक का कोई दोष था भी तो राजा का उसे न रोक पाना किसी अन्य नागरिक के पुत्र की मृत्यु का कारणं कैसे बना? और उसी ब्राह्मणं का बालक क्यों मरा? राज्य के किसी अन्य बालक की मृत्यु क्यों नहीं हुई। स्वयं शम्बूक ही क्यों नहीं मरे अथवा राजा के परिवार में कोई क्यों नहीं मरा? लेकिन मर्यादा की मूर्ति कुलगुरु वशिष्ठ की सहमति है तो मानना ही पड़ेगा। राम ने उस कथित अपराधी की खोज प्रारम्भ कर दी।

अयोध्या के दक्षिण दिशा में शैवाल पर्वत के उत्तर में सरोवर के तट पर एक तपस्वी मिले। राम ने उनसे कहा कि हे उत्तम व्रत का पालन करने वाले तपस्वी! तुम धन्य हो। मैं दशरथ पुत्र राम तुम्हारा परिचय जानना चाहता हूँ। तुम किस उद्देश्य या फर के लिए अन्य लोगों के लिए दुष्कर तप कर रहे हो? राम ने यह भी कहा कि मुझे यह भी बताओ कि तुम ब्राह्मण को या वीर क्षत्रिय अथवा वैश्य

या शूद्र? उस तपस्वी ने कहा कि देवत्व पाने और स्वर्ग पर अधिकार करने के लिए तपस्या कर रहा हूँ और शूद्र हूँ। बस, राम ने उनकी बात पूरी होने से पहले ही तलवार से उनका सिर काट लिया। शम्बूक का सिर कटने पर देवों को प्रसन्नता हुई। उन्हें भय था कि कहीं वे दूसरे विश्वामित्र न बन जायें।

स्पष्ट है कि विश्वामित्र और वाल्मीकि जैसे क्रान्तिकारी और चिन्तनशील ऋषि इस कृत्य का समर्थन नहीं कर सकते थे। सत्यकाम जाबालि भी शूद्र पुत्र थे। अतः या तो वशिष्ठ के साथ आये जाबालि कोई अन्य ऋषि थे या उन्हें धोखे में रखकर लाया गया था। शम्बूक के वध के समय देवराज इन्द्र अपने साथियों के साथ वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने राम को चाटुकारिता का परिचय देते हुए कहा कि आपने शम्बूक का वध करके देवों का महान् हित किया हा। अब हम लोग महर्षि अगस्त्य के आश्रम में जा रहें हैं, आप वहाँ चलिये। राम अगस्त्य के आश्रम में गये। एक दिन वहाँ रुके और अगले दिन अयोध्या वापस आ गये। ब्राह्मण दम्पत्ति अपने बालक के साथ प्रसन्न थे।

इस घटना को समझने के लिए सामाजिक इतिहास पर ध्यान देना होगा। सत्ययुग का समाज सरल था। बुद्धिजीवी समाज पर प्रभाव बनाये हुए थे। त्रेतायुग में जटिलता बढ़ी। युद्धों के कारण राजशक्ति का महत्व बढ़ा। राजा को ईश्वर का प्रतिनिधि माना जाने लगा। अतः पुरोहित वर्ग को अपनी सत्ता और महत्ता बचाने की चिन्ता हुई। सरल प्राकृतिक धर्म के स्थान पर साधारण नागरिकों के मन में प्रभाव जमाने के लिए कर्मकाण्ड बढ़ने लगा। उन जटिल कर्मकाण्डों की विधि पुरोहित ही जानते थे। अतः बिना पुरोहितों के धार्मिक कार्य नहीं हो सकते थे। उसका ज्ञान प्राप्त किये बिना स्वयं धर्म साधना करना उस वर्ग की सत्त के लिए खतरा था। हाँ, यदि सत्यकाम जाबालि, कवच एलूष, महिदास एतरेय, तुर कावर्षय और अगस्त्य जैसे लोग शूद्र होने के बावजूद परम्परागत ज्ञान प्राप्त कर उनके विधि विधान का पोषण कर सकें तो उन्हें ऋषि के रूप में मान्यता मिल जाती है। लेकिन शम्बूक उस कर्मकाण्ड को अस्वीकार कर देते हैं तो षड्यन्त्र रचकर उनका वध करा दिया जाता है।

भरत द्वारा गान्धार विद्रोह दमन के पूर्व शम्बूक वध और अश्वमेघ के दौरान सीता का प्राणत्याग जैसी घटनायें हो चुकी थीं। मधुपुरी में विद्रोह दमन के बारह वर्षों बाद शत्रुघ्न अयोध्या आये थे और उसके बाद शम्बूक वध हुआ था। मर्यादा पुरुषोत्तम कहे जाने वाले राम के सभी कष्टों का कारण मर्यादायें रही रहीं। राजतिलक होते-होते चौदह वर्ष का वनवास हो या सीता जैसी समर्पित पत्नी को गर्भवती अवस्था में घर से निकालने की मजबूरी या निर्दोष तपस्वी शम्बूक वध का जघन्य कार्य, सब कुछ मर्यादा की रक्षा के नाम पर करना पड़ा था।

इसी मर्यादा का शिकार एक बार लक्ष्मण भी हुए। राम एक ऋषि से बात कर रहे थे और उस ऋषि ने लक्ष्मण से कह दिया था कि यदि कोई बीच में आया को उसकी हत्या कर देना। इसी बीच दूसरे ऋषि आ गये और उन्होंने कहा कि राम को इसी समय मेरे आने की सूचना दो। दोनों ही ऋषियों के आदेष का पालन होना था। लक्ष्मण ने राम को सूचना दी। राम के साथ वार्ता कर रहे ऋषि ने लक्ष्मण की हत्या करने का आदेश राम को सुना दिया। अब राम क्या करते? उन्होंने जीवन में पहली बार मर्यादा के बन्धन को कुछ ढीली करने

का साहस किया। उन्होंने लक्ष्मण से कहा कि मेरे लिए तुम्हारा त्याग करना ही हत्या से कम कठिन नहीं है। मैं तुम्हारा त्याग कर रहा हूँ। तुम यहाँ से दूर चले जाओ। लक्ष्मण को अयोध्या छोड़कर जान पड़ा।

एक प्रश्न और उठता है कि क्या लंका में रावण की ऐतिहासिकता मानी जाती है? उल्लेखनीय तथ्य है कि श्रीलंका के पूर्व राष्ट्रपति रणसिंह प्रेमदास ने तीर्थनगर कटारा ग्राम में नौ फुट ऊंची रावण की प्रतिमा का अनावरण किया था। उसी स्थान पर रावण की जन्मभूमि मानी जाती है।

❖❖ ❖ ❖❖

राम का अन्तिम समय और उत्तराधिकारी

जीवन भर साहस के साथ संघर्षों से जूझने वाले राम का साहसी हृदय सीता और लक्ष्मण के बलिदान को सहन नहीं कर सका। वे भीतर से पूरी तरह टूट चुके थे। अब तक राम काफी वृद्ध भी हो चले थे। अतः उनकी समझ में यह सुरक्षित मार्ग दिखा कि उन्होंने भरत और शत्रुघ्न को वानप्रस्थ लेने की सूचना भेज दी। पता नहीं लक्ष्मण का वियोग नहीं सह सके या कठोर मर्यादावादियों का विरोध असहनीय लगा, राम को जैसे यह जीवन ही भार लगने लगा। शत्रुघ्न मधुपुरी से अयोध्या पहुंचे। राम, भरत और शत्रुघ्न वानप्रस्थ के लिए चले। सब ने सरयू नदी में स्नान कीया। यहाँ तक बड़ी संख्या में नागरिक भी साथ आये। लेकिन वह सरयू स्नान ही राम के संघर्षशील जीवन का अन्तिम संघर्ष था। कह नहीं सकते कि नदी के प्रवाह और लहरों से संघर्ष में हार गये या जानबूझकर स्वयं को उसके हवाले कर दिया। वानप्रस्थ की परम्परा निभाने के लिए कोई भी वहां से जीवित आगे नहीं बढ़ सका, सरयू में ही जलसमाधि बन गयी। मर्यादा पुरुषोत्तम राम पत्नी और भाईयों सहित मर्यादा की भेट चढ़ गये।

कुश को कुशावती में और लव को श्रावस्ती में नियुक्त किया गया। वहीं राम ने महर्षि अगस्त्य से मिला दव्य कंकण कुश को सौंपा था। कुश राम के उत्तराधिकारी सम्राट बने। उन्होंने अयोध्या का त्याग कर दिया और इस प्रकार अयोध्या का वैभव उजड़ गया और नगर वीरान हो गया।

राम त्रेता युग के नायक थे। अतः राम के ऐतिहासिक महत्व तथा समय पर भी विचार करना आवश्यक है। राम त्रेतायुग के अन्त में हुए ते। अतः राम का समय लगभग 6200 वर्ष पूर्व माना जाना चाहिए। राम के समय में यज्ञीय कर्मकाण्ड बहुत व्यापक और बाध्य धर्मकर्तव्य थे। उसकी मर्यादा से बाहर जाना प्रतिष्ठित परम्परावादी पुरोहित वर्ग को असहनीय था। सैनिक शक्ति बहुत महत्वपूर्ण थी। नये-नये शस्त्रास्त्रों का विकास और निर्माण हो रहा था। साथ ही उन्नत शस्त्रास्त्रों का निर्यात-आयात भी किया जाता था। इन्द्रलोक और विष्णुलोक युद्ध सामग्री के निर्यातक थे। शासक प्रमुख ऋषियों की अवहेलना नहीं कर सकते थे। ऋषियों का प्रभाव राज्य की सीमाओं में बंधा हुआ नहीं था। उनका महत्व भारत की सीमाओं के बाहर भी था। ऋषियों के आश्रम ज्ञान-विज्ञान, शिक्षा और शोध के केन्द्र थे। उनके शोध और शिक्षण में युद्ध कला और शस्त्रास्त्र निर्माण

भी शामिल थे। राजतन्त्र पर धर्मतन्त्र का अंकुश भी रहता था।

बाद में कुश ने अयोध्या को पुनः राजधानी बना लिया। कुश को उत्तराधिकार में व्यवस्थित और सुरक्षित साम्राज्य मिला था। गान्धार और सप्त सैन्धव प्रदेश भरत के दोनों पुत्रों तक्ष और पुष्कल के शासन में थे। ब्रज प्रदेश पर शत्रुघ्न के पुत्रों का अधिकार था। शत्रुघ्न ने अपने पुत्र सुबाहु को मधुपुरी में नियुक्त किया और पुत्र शत्रुघाती को विदिशा में। लक्ष्मण के पुत्र अंगद और चन्द्रकान्त को कारुपथ का राज्य मिला था। वह कारुपथ प्रदेश कहां था, यह स्पष्ट नहीं है। कुशावती नगरी विन्ध्य प्रदेश या मध्य भारत में स्थित थी। इस पीढ़ी के सभी आठ राजकुमारों के पास अपने-अपने राज्य थे। राम का भारतीय साम्राज्य आठ प्रदेशों में विभाजित हो गया था। कुश पूरे राष्ट्र के संघीय केन्द्रीय शासक या चक्रवर्ती सम्राट थे।

कुश का विवाह नाग शासक कुमुद की कन्य कुमुदवती के साथ हुआ था। नागवंशीय कुमुद का क्षेत्र सरयू के निकट गोनर्ड (गोण्डा) क्षेत्र था। इस उत्तर कौशल प्रदेश के क्षेत्रीय महाराज लव थे। कुश के शासन काल में भी असुर सम्राट दुर्जय ने इन्द्रलोक पर आक्रमण किया। इन्द्र ने कुश को सहायता के लिए बुलाया। कुश ने वीरतापूर्वक युद्ध किया और दुर्जय को मार गिराया, पर स्वयं भी उस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुए। यह सूचना मिलने पर कुश के पुत्र अतिथि का राज्याभिषेक कर दिया गया। इस अवसर पर बन्दियों को छोड़ दिया गया और अनेक लोगों के मृत्युदण्ड क्षमा कर दिये गये। अतिथि ने अश्वमेघ यज्ञ किया और उस दौरान दिग्विजय के लिए सफल युद्ध भी किये।

अतिथि के शासनकाल में शक्ति तथा प्रशासन व्यवस्था अच्छी स्थिति में बनी रही। उन्होंने गुप्तचर व्यवस्था मजबूत की। शत्रुओं और मित्रों के बीच गुप्तचर कार्यरत थे। वे गुप्तचर आपस में भी परिचित नहीं होते थे। सबकी अलग-अलग सूचनाओं से तथ्य और स्पष्ट हो जाते हैं। मित्र राज्यों और प्रान्तीय शासकों को उन्होंने इतना शक्तिशाली कभी नहीं होने दिया जिससे वे केन्द्रीय सत्ता के लिए खतरा बन सकें। उन्हें इस स्थिति में ही रखा गया कि वे केन्द्र की सहायत कर सकें।

अतिथि का विवाह निषध देश की राजकुमारी के साथ हुआ था। उनके पुत्र का नाम भी निषध रखा गया। वे भी योग्य पिता के योग्य पुत्र थे। लेकिन इतना स्पष्ट है कि अतिथि के शासन काल में चक्रवर्ती सत्ता उतनी सुरक्षित नहीं रह गयी थी। अति सावधानीपूर्वक बनायी गयी गुप्तचर व्यवस्था अतिथि की प्राशासनिक योग्यता को तो स्पष्ट करती है, लेकिन इससे यह भी संकेत मिलता है कि विद्रोहों और षड्यन्त्रों की आशंका रहती थी। दशरथ के समय में लंका के विरुद्ध वशिष्ठ और विश्वामित्र कुलों में जो एकता उत्पन्न हो गयी थी, वह राम के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में टूटने लगी थी। कुश को वाल्मीकि का संरक्षण प्राप्त था, अतः उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। लेकिन उसके बाद स्थितियाँ बदलने लगी। अतिथि के बाद साम्राज्य में कमजोर बिन्दु पनपने लगे।

❖❖ ❖ ❖❖

सुदास् और दशराज युद्ध

वशिष्ठ और विश्वामित्र आश्रमों के बीच प्रतिद्वन्द्विता के कारण भारत को विनाशकारी गृहयुद्ध झेलना पड़ा। वह महायुद्ध प्राचीन साहित्य में 'दशराज युद्ध' के नाम से प्रसिद्ध है। दशराज युद्ध के नायक भरतवंशी पाञ्चाल नरेश सुदास् थे। उनका संक्षिप्त वंश परिचय जान लेना भी उपयोगी होगा। त्रेतायुग के पहले चरण में चन्द्रवंश की एक शाखा में महान् राजु पुरु हुए। पुरु की सोलहवीं पीढ़ी में दुष्यन्त पुत्र चक्रवर्ती भरत हुए जिनके नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। भरत की पांच पीढ़ियों के बाद प्रसिद्ध सम्राट हस्तिन् हुए जिन्होंने हस्तिनापुर नगर बसाया जो शताब्दियों तक देश की राजधानी बना रहा। हस्तिन् की दस पीढ़ियों के बाद उस वंश में राजा दिवोदास हुए। दिवोदास की बहन अहल्या थीं जिनका विवाह महर्षि गौतम के साथ हुआ था। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजा दिवोदास राम के समकालीन थे। दशराज युद्ध के नायक इसी दिवोदास के प्रपौत्र सुदास् थे।

दिवोदास के पुत्र मित्रायु हुए। उनके पुत्र च्यवन थे तथा इसी च्यवन के पुत्र सुदास् हुए। सुदास् को पिजवन का पुत्र भी कहा गया है। हो सकता है कि च्यवन के पुत्र पिजवन हों और उनके पुत्र सुदास्। सूची में पिजवन का नाम छूट गया होगा। वैसे भी पुराणकार केवल मुख्य-मुख्य राजाओं की सूची प्रस्तुत करने का दावा करते हैं। इससे समझा जा सकता है कि सूची तैयार करते समय सूत और मागध लोगों को इस बात का अहसास था की राजाओं की सूची पूर्ण नहीं है और कुछ नाम बीच-बीच में छूट गये हैं। लेकिन इससे इतना स्पष्ट है कि सुदास् का समय राम की कुछ पीढ़ियों के बाद था। अधिकांश विद्वान राम के डेढ़ सौ वर्षों के बाद सुदास् का समय मानते हैं।

आदि विश्वामित्र अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशियों के कुल पुरोहित थे। इस वंश के शासक सत्यव्रत त्रिशंकु का यज्ञ कराना जब वशिष्ठ ने अस्वीकार किया तब विश्वामित्र ने वह यज्ञ कराया। उसी के फलस्वरूप त्रिशंकु को स्वर्ग में स्थान मिला और उनके पुत्र हरिश्चन्द्र राजा बने। सत्यव्रत त्रिशंकु से पूर्व वशिष्ठ ही इक्ष्वाकुवंश के कुलगुरु थे। बाद में जब वशिष्ठ पुनः अयोध्या राजवंश के कुलगुरु हो गये, तब विश्वामित्र ने चन्द्रवंशी राजाओं का आश्रय लिया। राम के पुत्र कुश ने विचारशील महर्षि वाल्मीकि को महत्व दिया और वशिष्ठ की उपेक्षा की। इससे मजबूर होकर वशिष्ठ ने चन्द्रवंश का प्रभाव जमाने का प्रयास किया। उन्हें कुछ सफलता भी मिली।

उल्लेख मिलता है कि वशिष्ठ ने सुदास् का राज्याभिषेक कराया था लेकिन सुदास् ने कुलगुरु विश्वामित्र को ही माना। विश्वामित्र व्यावहारिक और ओजस्वी थे। वे जड़ मर्यादावादी नहीं थे। इसलिए उनका महत्व बढ़ता गया। अब वशिष्ठ आश्रम के पास कोई राज्याश्रय नहीं रहा। वे लोग अवसर की तलाश में रहने लगे। उन्हें यह अवसर भी शीघ्र मिल गया।

सुदास् पाञ्चाल के राजा थे। पुरुवंश की एक अन्य शाखा हस्तिनापुर में शासन कर रही थी। एक युद्ध में सुदास् ने हस्तिनापुर को पराजित कर दिया और उसके राजा संवरण को बुरी तरह घायल कर दिया। संवरण की इसी पराजय ने वशिष्ठ को अवसर दे दिया।

वशिष्ठ ने उन्हें आश्रय दिया और संवरण की ओर से देश के अनेक राजाओं को संगठित कर सुदास् के विरुद्ध युद्ध के लिए तैयार किया। इनमें दस राजा प्रमुख थे। उतः उस युद्ध को 'दशराज युद्ध' कहा जाता है। उनमें लगभग तीस राजाओं के नाम मिल जाते हैं। राहुल सांकृत्यायन ने भी माना है कि सुदास् निरंकुश शासक नहीं थे लोकतन्त्र तथा जनहित के प्रति निष्ठावान् थे। उन्होंने राजतन्त्र के साथ जनता पर भी पुरोहित वर्ग का बन्धन यथासम्भव ढ़ीला किया, इसलिए वे सफल रहे। वशिष्ठ द्वारा संवरण की सहायता के नाम पर सुदास् के विरुद्ध जुटायी गयी सेना ने सप्तसैन्धव प्रदेश में कई स्थानों मोर्चाबन्दी कर ली। उस सेना में यदु, तुर्वसु, अनु, मत्स्य, शिवि, वक्य, भलनसु, अलिन्, और विषाणी लोग सम्मिलित थे। उस युद्ध को तृत्सु-भरत युद्ध भी कहा गया है। भरतवंशी राजा सुदास् थे। संवरण भी भरतवंश की ही एक अन्य शाखा में हुए। दूसरे पक्ष में तृत्सु लोग प्रमुख थे। कुछ तृत्सु सुदास् के पक्ष में भी थे।

इस समय से लगभग छह हजार वर्ष पूर्व तत्कालीन प्रमुख नदी सरस्वती और परुष्णी (रावी) के क्षेत्र में प्रसिद्ध दशराज युद्ध लड़ा गया। इस युद्ध के बारे में कुछ उपयोगी संकेत 'शतपथ' और 'ऐतरेय' ब्रह्मणों से मिलते है। इतिहास के विद्वान् एच0 एन0 वर्मा और अमृत वर्मा ने एक महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी है डिसीसिव बैटिल्स ऑफ इण्डिया थ्रू दि एजेज। उसमें राम रावण युद्ध, सुदास् का दशराज युद्ध और महाभारत युद्ध सहित प्राचीन और आधुनिक काल के सभी महत्वपूर्ण युद्धों का वर्णन है। उन्होंने लिखा है कि उस विनाशकारी युद्ध में 47 हजार लोग मारे गये, सैकड़ों गांव उजड़ गये, अनेक किले भी ध्वस्त हो गये और बड़ी संख्या में मवेशियों की क्षति हुई। व्यापक विनाश के बाद सुदास् विजयी रहे और विरोधी संघीय सेना नष्ट हो गयी। संवरण घायल अवस्था में भाग गये और सिन्धु नदी के किनारे एक पुराने किले में छिपकर जान बचायी। वर्माद्वय ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि इसी युद्ध के बाद हमारे देश का नाम भारत पड़ा क्योंकि विजेता भरत के वंशज या भरतकुल के राजा थे।

भारत के इतिहास में इस युद्ध का महत्व बहुत अधिक है। इस युद्ध ने देश में राजनीति की दिशा और केन्द्र बदल दिया। इक्ष्वाकुवंश और अयोध्या का महत्व सदैव के लिए समाप्त हो गया। इस युद्ध के बाद अयोध्या या इक्ष्वाकुवंश में किसी महत्वपूर्ण शासक का नाम नहीं मिलता है। भारतीय सत्ता का केन्द्र अयोध्या के स्थान पर कुरु-पञ्चाल क्षेत्र हो गया। हमने उल्लेख किया है कि दशराज युद्ध में शामिल हुए लगभग तीस राजाओं के नाम मिलते हैं - ऐसा विभिन्न विद्वानों का विचार है। भारतीय संस्कृत के अध्येता सूर्यकान्त बाली ने भी ऐसा ही लिखा है, लेकिन उन राजाओं के नाम नहीं मिले जबकि उनके नामों का बहुत महत्व है।

यदि तीस राजाओं के नाम भी मिल जायें तो उपलब्ध विभिन्न वंशों की सूची में देखा जा सकता है कि वे राजा किन वंशों के थे। इससे कई राजाओं की समकालीनता भी तय हो जायेगी। साथ ही यह भी ज्ञात हो जायेगा कि अयोध्या के इक्ष्वाकुवंश की भूमिका इस युद्ध में क्या थी। उस वंस ने इसमें भाग लिया या नहीं और युद्ध में शामिल हुए तो किसकी ओर से? सुदास् के राज्य की सीमा कौशल राज्य से भी मिलती थी, यह निश्चित उल्लेख है। महायुद्ध के बाद सुदास् ने पूर्व के कुछ राजाओं को पराजित किया था। अतः सम्भव है कि अयोध्या सुदास् के राज्य में शामिल हो गयी हो और वहां के

राजा पाञ्चाल के अधीन हों। इस सम्भावना को इस तथ्य से बल मिलता है कि सुदास् के बाद महाभारत युद्ध तक अयोध्या में किसी प्रतापी राजा का उल्लेख नहीं है और तत्कालीन कोशल नरेश इक्ष्वाकुवंश के राजा वृहद्बल ने महाभारत युद्ध में महत्वहीन सामन्त की तरह भाग लिया था। यदि सुदास् के दशराज युद्ध में अयोध्या का पतन न भी हुआ हो तो भी इतना निश्चित है कि चक्रवर्ती सत्ता पाञ्चालों के पास आ गयी थी और कोशल एक साधारण महत्वहीन जनपद बनकर रह गया था।

❖❖ ❖ ❖❖

द्वापर युग में सूर्यवंश का पतन

द्वापर युग सत्ता का केन्द्र कुरु-पाञ्चाल प्रदेश रहा। इन प्रदेशों में चन्द्रवंश की विभिन्न शाखाओं का शासन था। यादव, वार्ष्णेय, पाञ्चाल, कौरव आदि प्रमुख राजवंश मूलतः चन्द्रवंश की ही विभिन्न शाखाओं के प्रतिनिधि थे। द्वापर युग इन्हीं राजवंशों के बीच सन्धि और विग्रह का इतिहास है। यह भी महत्वपूर्ण है कि सत्ययुग के अन्त में हुए परशुराम और विश्वामित्र व्यावहारिक और गतिशील होने के कराण अपना महत्व बनाये रख सके जबकि कठोर परम्परावादी वशिष्ठ लुप्त हो गये।

द्वापर युग में सूर्यवंश में लगभग तीन दर्जन पीढ़ियां हुईं लेकिन दशराज युद्ध के बाद उनमें कोई भी प्रतापी सम्राट नहीं हुआ। विभिन्न पुराणों में और कालिदास के रघुवंश महाकाव्य में उन राजाओं के नामों का उल्लेख मिलता है। कुश के शासन काल में ही विशाल साम्राज्य आठ बड़े स्वायत्तशासी प्रान्तों में विभाजित हो गया था। कुश केन्द्रीय सम्राट थे जिनका अपने चचेरे भाईयों द्वारा शासित प्रान्तों पर नाममात्र का ही अधिकार थआ। कुश के बाद केन्द्र की सत्ता धीरे-धीरे कमजोर होती चली गयी और परिणाम स्वरूप सुदास् के नेतृत्व में पाञ्चाल भारत का केन्द्र बन गया।

संस्कृत साहित्य के विद्वान् विद्यावाचस्पति ने लिखा है कि कालिदास ने रघुवंश के अन्तिम दो सर्गो में कुश के चौबीस उत्तराधिकारियों का उल्लेख किया है। उसमें कुश के पुत्र अतिथि को छोड़कर अन्य कोई भी ऐसा नहीं था जिसके विषय में कवि को दो-चार से अधिक श्लोक कहने पड़े हों। वे सब सामान्य राजा थे। नल यौवन काल में ही राज्य का बोझ पुत्र पर डालकर वैरागी हो गये थे। परियात्र अत्यन्त भोग के कारण असमय में मर गये। ध्रुवसन्धि को शिकार का बहुत शौक था, वे शेर द्वारा मारे गये। सुदर्शन अभी आयु में छठवें वर्ष में ही थे कि मन्त्रियों ने देश को अराजकता से बचाने के लिए सिंहासनरूढ़ कर दिया। सुदर्शन बाल्यकाल में ही अनेक महान् पूर्वजों के सिंहासन पर आरूढ़ हो गये। यद्यपि उनकी आयु और शिक्षा अधूरी थी, तो भी कुल के प्रौढ़ संस्कारों के कारण उन्होंने राज्य के भारी बोझ को उठा लिया। इस विशेषता के कारण महाकवि कालिदास ने उन्हें विशेष सम्मान प्रदान किया है- रघुवंश में उसके सम्बन्ध में 19 पद्य हैं।

सुदर्शन के पुत्र अग्निवर्ण पूरी तरह अयोग्य निकले। कालिदास ने लिखा है कि कुछ समय तो अग्निवर्ण ने अपने पिता के अनुरूप कुशलता से राज्य का संचालन किया, परन्तु उसके पश्चात् उन्हें कामुकता ने दबा लिया। उन्होंने राज्य का कार्य अपने मन्त्रियों पर

डालकर यौवन स्त्रियों को अर्पण कर दिया। अग्निवर्ण राज्यक्ष्मा रोग (टी.बी.) का शिकार हो गये और सन्तानहीन मर गये। प्रजा में क्षोभ के भय से उनका अन्तिम संस्कार राजमहल के उद्यान में ही कर दिया गया। मन्त्रियों ने ऐसी स्थिति में अग्निवर्ण की रानी को ही राज सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया। कालिदास के अनुसार उस समय रानी गर्भवती थीं। उन्हें पहली महिला शासक कहा जा सकता है।

अग्निवर्ण की रानी के उत्तराधिकारी पुत्र का नाम शीघ्रग था। उनके बाद द्वापर युग में इस वंश में दस राज और हुए। द्वापर के अन्त में हुए महाभारत युद्ध में सूर्यवंश के प्रतिनिधि कौशल नरेश बृहद्बल मारे गये थे।

द्वापर युग का इतिहास जानने से पूर्व त्रेतायुग पर पुनरावलोकन दृष्टि डाल देना उपयोगी होगा। त्रेतायुग में सूर्यवंश की पैतीस-छत्तीस पीढ़ियां हुईं। सामरिक दृष्टि से त्रेतायुग नये-नये हथियारों के विकास और दक्षिण एशिया में अन्तर्राष्ट्रीय युद्धों का युग था। नवीनतम शस्त्रास्त्रों का आयात-निर्यात भी होता रहा। मध्य एशिया के कश्यप सागर के तट पर वैकुण्ठ राज्य का उदय महत्वपूर्ण है। लंका में दशग्रीव रावण के नेतृत्व में भौतिकवादी राक्षस संस्कृति का उदय और विशाल साम्राज्य की स्थापना कर तत्कालीन विश्व की प्रमुख शक्ति के रूप में उभरना एक प्रमुख घटना है। थोड़े समय के लिए सही, राक्षस शक्ति का लोहा सभी को मानना पड़ा था। उसी के विरोध में चिर प्रतिद्वन्द्वी वशिष्ठ और विश्वामित्र आश्रमों में सहयोग बना जिसके प्रतिफल थे महानायक राम।

सामाजिक दृष्टि से वह युग विभिन्न वर्गों के मजबूती से उभरने का काल था। वंशानुगत शासन मजबूत होने से राजवंशीय शासक वर्ग का अलग अस्तित्व बन गया था। उन्हें वंश गौरव और कुलीनता का गर्व था और स्वयं को अन्य लोगों से श्रेष्ठ समझने की भावना थी। विभिन्न ऋषिकुलों और आश्रमों के रूप में पुरोहित वर्ग भी प्रभावी और शक्तिशाली था। उनकी अवहेलना का साहस तो सम्राट भी नहीं कर सकते थे। जनता के लिए मूलभूत सुविधायें और सामरिक आवश्यकताओं के लिए शिल्पकार वर्ग अस्तित्व में आया। शिल्प कौशल और उद्योग व्यापार पनपने लगा। सैनिक अभियान, प्रशासन व्यवस्था और उद्योग व्यापार की आवश्यकताओं के अनुरूप आवागमन के साधन जैसे आधारभूत ढ़ांचे का विकास भी स्वाभाविक रूप से हुआ।

धार्मिक दृष्टि से त्रेतायुग यज्ञ प्रधान था। विभिन्न प्रकार के जटिल यज्ञों का विकास हो गया था। उनके विधि विधान से सम्पन्न कराने की योग्यता रखने वाला सीमित वर्ग था और उसका काफी महत्व था। सत्ययुग के वेदपाठ, स्वाध्याय तथा सहज ध्यान योग का स्थान जटिल कर्मकाण्डों ने ले लिया था। यज्ञों के अलावा सहज और सरल धर्म भी प्रचलित था, भले ही वह धारा क्षीण हो। महर्षि कपिल, ऋषि शम्बूक, करुणामूर्ति शबरी, सुतीक्ष्ण, महर्षि वाल्मीकि, महर्षि अगस्त्य तथा विश्वामित्र और परशुराम आश्रमों के अधिष्ठाता ऋषि सरल लोकधर्म के ध्वजवाहक प्रतिनिधि थे। इसका यह अर्थ नहीं कि ये लोग यज्ञ विरोधी थे। यज्ञ तो सत्ययुग में भी होते थे, लेकिन उनकी प्रणाली जटिल और तकनीकी नहीं थी।

❖❖ ❖ ❖❖

सुदास् के बाद का भारतवर्ष

द्वापर युग में सबसे अधिक प्रभावशाली कुरुवंश की सत्ता रही। उस काल में विभिन्न जनपदों पर चन्द्रवंश की ही विभिन्न शाखाओं का शासन रहा। दशराज युद्ध के नायक सुदास् के वंश में सहदेव, सोमक, पृषत्, द्रुपद, धृष्टकेतु आदि प्रमुख पाञ्चाल नरेश हुए। हस्तिनापुर, काशी, शूरसेन (मथुरा) अङ्ग, बङ्ग, कलिंग, पौण्ड्र, सुध्य, चम्पा, मगध, केकय, मद्र आदि विभिन्न महाजनपदों पर चन्द्रवंश की शाखाओं का राज्य था। कौशल जनपद में सूर्यवंश का अस्तित्व बना रहा। चन्द्रवंश की प्रमुख शाखाओं में पाञ्चाल, मगध, कुरु, यादव, काशेय, अन्धक, वृष्ण आदि प्रमुख थीं।

चन्द्रवंश की सबसे प्रभावी शाखा पुरुवंश रही। दुष्यन्त और भरत पुरुवंश में ही हुए। भरतवंश में ही सम्राट हस्तिन् हुए जिन्होंने हस्तिनापुर साम्राज्य की नींव डाली। हस्तिन् के पुत्र अजमीढ़, द्विजमीढ़ और पुरमीढ़ थे। इनमें अजमीढ़ का वंश अधिक प्रभावी रहा। उनके तीन पुत्र ब्रह्मदिव, नील व ऋक्ष थे। नील का वंश पाञ्चाल का शासक हुआ। दशराज युद्ध के नायक सुदास् इसी नील के वंशज थे। ऋक्ष का वंश हस्तिनापुर में शासन करता रहा। इसी ऋक्ष के वंश में संवरण और कुरु हुए। सुदास् के साथ युद्ध में संवरण पराजित हुए थे। उसके बाद उसके वंशज कुरु ने अपनी शक्ति बढ़ा ली और पाञ्चाल के उत्तर का विशाल क्षेत्र उनके नाम पर कुरुक्षेत्र कहा जाने लगा। उनकी राजधानी हस्तिनापुर थी। कुरु के बाद द्वापर युग में उनकी कम से कम बीस पीढ़ियों ने हस्तिनापुर में शासन किया। भीष्म, युधिष्ठिर आदि महाभारत युद्ध के मुख्य पात्र इसी वंश में हुए।

पुराणों में मगध, पाञ्चाल और काशेय राजाओं की वंशावलियां सुरक्षित हैं। पुराणकारों ने कम से कम प्रमुख राजाओं के नाम तो लिख ही दिये हैं। यदुवंश भी चन्द्रवंश की ही एक अन्य मुख्य शाखा है। यदुवंश के अन्तर्गत ही अन्धक, वृष्णि, हैहय, मधु, अनु, महाभोज आदि उपशाखायें भी थीं। द्वापर के युगावतार और महाभारत युद्ध के मुख्य नायक वसुदेव पुत्र कृष्ण यदुवंश में हुए थे।

मिथिला या जनकपुर का निमिवंश भी महत्वपूर्ण है। इस वंश को भी इक्ष्वाकुवंश की ही शाखा माना गया है। त्रेतायुग नायक राम की पत्नी सीता के पिता सीरध्वज जनक इसी वंश के थे। निमिवंश की तिरेपन पीढ़ियों की सूची हमारे पास उपलब्ध है। सूची में निमि से प्रारम्भ कर सीरध्वज जनक का क्रम बाइसवां है। सीरध्वज के पुत्र का नाम भानुमान् था जो सीता के भाई थे। कालक्रम के अनुसार यदि उनको त्रेतायुग का अपने वंश में अन्तिम राजा मान लिया जाये तो उनके बाद हमें कुल तीस पीढ़ियों के राजाओं के नाम मिलते हैं। यदि यह सूची लगभग पूर्ण मानी जाये तो माना जाना चाहिये कि ये सभी राजा द्वापर युग में हुए थे। इस वंश के अन्तिम राजा का नाम कृति मिलता है। यदि यह उल्लेख मिल जाये कि कृति ने महाभारत युद्ध में भाग लिया था तो काफी कुछ निश्चयपूर्वक कहा जा सकेगा। निमिवंश का महत्व राजनीतिक रूप से तो नहीं, पर विद्वानों के आश्रय के लिए सर्वोच्च रहा।

मगध का राजवंश भी कुरुवंश की ही एक शाखा थी जिसमें महाभारतकालीन सम्राट जरासन्ध थे। हस्तिनापुर शाखा के कुरुवंश में

जह्नम, सुरथ, विदुरथ, सार्वभौम, जयत्सेन, आराधित, आमुतोष, अक्रोधन, देवातिथि, ऋक्ष(द्वितीय), भीमसेन, दिलीप आदि प्रमुख सम्राट द्वापर युग के मध्यकाल में हुए। द्वापर युग का अन्तिम चरण घटना प्रधान रहा और वह हमारे पास विस्तृत रूप से उपलब्ध भी है।

❖❖ ❖ ❖❖

शान्तनु तथा उत्तराधिकारी

दिलीप के पुत्र प्रतीप थे। प्रतीप के तीन पुत्र देवापि, शान्तनु और बाह्लीक हुए। देवापि ने वैराग्य ले लिया, अतः प्रतीप के बाद शान्तनु राजा हुए। उनके विषय में कहा जाता है कि उन्होंने सर्वत्र शान्ति स्थापित की, अतः उनको शान्तनु कहा गया। हो सकता है कि उनका मूल नाम कुछ और हो, लेकिन वह ज्ञात नहीं है। शान्तनु के शासनकाल में एक बार भयंकर सूखा पड़ा। कई वर्षों तक पर्याप्त वर्षा नहीं हुई। पुरोहितों ने इसका कारण बताया कि आपके बड़े भाई देवापि जीवित हैं, अतः शासन का अधिकार उनका है। अतः आप यह राज्य उनको ही सौंप दें। आप केवल संरक्षक के रूप में राजकार्य करते रहें। आपका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है।

यह सुनकर राजा शान्तनु बड़े भाई देवाप को मनाने के लिए वन गये। शान्तनु के साथ गये पुरोहितों ने वैदिक संस्कृति का हवाला देकर बड़े भाई होने के कारण राज्य सम्भालने का आग्रह देवापि से किया, लेकिन वे नहीं माने। उन्होंने ऋषि जीवन अपना लिया था और सन्तुष्ट थे।

हम कह चुके हैं कि द्वापर युग जड़ मर्यादाओं का नहीं था। वह समय व्यावहारिक राजनीति का था। शान्तनु अपने बड़े भाई के खड़ाऊ मांगने नहीं गये थे। उनका उद्देश्य वर्षा न होने का जो कारण बताया गया था, उस आरोप से मुक्त भर होना था। देवापि ने भी किसी के कहने से नहीं, स्वेच्छा से ऋषिधर्म चुना था। उन्हें कुटिल राजनीति की अपेक्षा सम्मानीय और शान्तिपूर्ण ऋषि जीवन ही पसन्द था।

जो भी हो, देवापि ने शासन करना स्वीकार नहीं किया। शान्तनु के साथ गये, पुरोहितों ने शान्तनु से कह दिया कि आप शासन कर सकते हैं। पुरोहितों ने वर्षा होने का आश्वासन भी दिया था। धीरे-धीरे वर्षा की स्थिति भी सुधरी और शान्तनु का शासन अधिकार मान्य हो गया। शान्तनु के भाई बाह्लीक के पुत्र सोमदत्त हुए। उनके तीन पुत्र भूरि, भूरिश्रवा और शल्य थे।

राजा शान्तनु के शासनकाल में हस्तिनापुर भारतवर्ष का प्रमुख सत्ता केन्द्र था। लेकिन उस पारिवारिक कलह के बीज भी शान्तनु ने ही बो दिये थे जिसके कारण केन्द्रीय सत्ता कमजोर पड़ने लगी और पाञ्चाल, मथुरा तथा मगध में महत्वाकांक्षायें पनपने लगीं। शान्तनु की दो पत्नियां थीं - गंगा और सत्यवती। उन्होंने दोनों विवाह सौन्दर्य से आकर्षित होकर ही किये थे। इसी कमजोरी के कारण वंश खतरे में पड़ गया था।

शान्तनु प्राशासनिक कुशलता के बावजूद सफल शासक नहीं बन सके। इसका कारण उनकी कमजोर सौन्दर्यलिप्सा भी थी। उनकी पहली पत्नी गंगा अपने पुत्र देवव्रत को लेकर महल छोड़ गयी। कहा

जाता है कि गंगा ने अपने सात पुत्रों को जन्म लेते ही गंगा नदी में प्रवाहित कर दिया था लेकिन उन्होंने देवव्रत को अच्छी शिक्षा दिलायी और शस्त्र तथा अस्त्र में पारंगत कर दिया। बाद में शान्तनु अपने उस योग्य पुत्र को ले आये और युवराज घोषित क दिया। देवव्रत सुयोग्य और बुद्धिमान् थे। उनके नेतृत्व में सशक्त और सुव्यवस्थित साम्राज्य के संगठन की आशा बंधने लगी थी। लेकिन परिस्थितियों ने अचानक ऐसा मोड़ लिया कि योग्यता-क्षमता के बावजूद देवव्रत लाचार होकर रह गये।

राजा शान्तनु ने धीमक कन्या सत्यवती पर मोहित होकर उससे विवाह का प्रस्ताव रखा। कन्या के पिता ने शर्त रख दी कि उसका पुत्र ही सत्ता का अधिकारी होगा। देवव्रत को युवराज घोषित किया जा चुका था, अतः यह वादा करना सम्भव नहीं था। शान्तनु दुःखी रहने लगे। समस्या का समाधान युवा देवव्रत ने ही किया। उन्होंने सत्ता स्वीकार न करने और आजीवन अविवाहित रहने का प्रण कर लिया। इस भीषण प्रतिज्ञा के कारण देवव्रत को भीष्म कहा जाने लगा।

दूसरी रानी सत्यवती ने भी शान्तनु के दो पुत्रों चित्रांगद और विचित्रवीर्य को जन्म दिया। गन्धर्वों के साथ तीन वर्ष तक चले युद्ध में बड़े पुत्र चित्रांगद का वध इसी नाम के गन्धर्व ने कर दिया। अतः शान्तनु के सबसे छोटे पुत्र विचित्रवीर्य राजा बने। शान्तनु के ये दोनों पुत्र अयोग्य थे। कोई राजकुमारी उनसे विवाह करने को भी तैयार नहीं थी। देवव्रत भीष्म ने काशी नरेश की दो पुत्रियों अम्बिका और अम्बालिका का सेना के बल पर अपहरण कर लिया और अपने छोटे भाईयों का विवाह कर दिया। इस तरह अपहरण करके जबरदस्ती विवाह कर लेना उस युग के क्षत्रियों में प्रचलित प्रथा थी। इसे राक्षस विवाह कहते थे। पर इस तरह विवाह अपहरण करने वाला ही करता था। लेकिन वे राजकुमार इतने निकम्मे और कायर थे कि स्वयं अपहरण भी नहीं कर सके। अम्बा और अम्बालिका ने इसी आधार पर देवव्रत भीष्म से कहा कि अपहरण तुमने ही किया है, अतः विवाह भी तम्हीं करो। लेकिन देवव्रत विवाह न करने का प्रण कर चुके थे।

इन अनैतिक विवाह से भी कोई लाभ नहीं हुआ और विचित्रवीर्य भी यक्ष्मा रोग से सन्तानहीन मर गये। अतिभोग विलास का यह स्वाभाविक परिणाम था। देवव्रत भीष्म ने नियोग व्यवस्था के तहत भी अम्बिका और अम्बालिका को पुत्र देना स्वीकार नहीं किया। तब रानी सत्यवती ने महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास से नियोग का अनुरोध किया। उन्होंने दोनो राजवधुओं से धृतराष्ट्र और पाण्डु तथा उनकी एक दासी से विदुर को जन्म दिया। इस प्रकार नियोग की प्रथा का सहारा लेकर कुरुवंश की रक्षा की गयी। महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास भी सत्यवती के ही पुत्र थे जो शान्तनु से विवाह के पहले ही उत्पन्न हुए थे। धृतराष्ट्र बड़े थे, किन्तु जन्मान्ध थे। उनका विवाह भी भीष्म ने सैनिक बल के सहारे गान्धार की राजकुमारी गान्धारी के साथ करा दिया था। पाण्डु छोटे थे किन्तु धृतराष्ट्र के अन्धे होने के कारण पाण्डु को राजा बनाया गया।

उल्लेखनीय है कि अपनी प्रतिज्ञा के कारण भीष्म सिंहासन पर कभी नहीं बैठे लेकिन राजा शान्तनु के बाद हस्तिनापुर साम्राज्य और राजपरिवार की सुरक्षा और व्यवस्था का वास्तविक दायित्व वे ही सम्भाले रहे। राजगद्दी पर सत्यवती के वंशज ही बैठते रहे।

विचित्रवीर्य के सन्तानहीन स्थिति में मर जाने पर भी भीष्म सिंहासन पर नहीं बैठे। उस दौरान प्रतीक सत्ता महारानी के पास रही और देवव्रत उनके आदेशानुसार शासन व्यवस्था का संचालन करते रहे। अतः पाण्डु को जन्म लेते ही राजा बना दिया गया था। उससे कम आयु में कोई भी शासक गद्दी पर नहीं बैठा होगा क्योंकि ऐसा सम्भव ही नहीं है।

राजा पाण्डु किसी ऋषि के शाप से सन्तान उत्पन्न करने योग्य नहीं रह गये थे। उनका विवाह वसुदेव की बहन कुन्ती के साथ हुआ था। कुन्ती भी विवाह से पूर्व एक पुत्र कर्ण को जन्म दे चुकी थी। यह अलग बात है कि वे कभी कर्ण को अपना पुत्र कहने का साहस नहीं जुटा सकीं। कुन्ती ने भी नियोग प्रथा का सहारा लेकर युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन को जन्म दिया। पाण्डु की एक और पत्नी थी माद्री। उन्होंने भी नियोग के सहारे ही नकुल और सहदेव को उत्पन्न किया। इस प्रकार पांच पाण्डव कहलाये। धृतराष्ट्र और गान्धारी के पुत्र दर्योधन, युयुत्सु और दुःशासन थे।

❖❖ ❖ ❖❖

द्वापर युग का अन्तिम चरण

द्वापर युग की अन्तिम शताब्दी अनेक विचार धाराओं के बीच निर्णयक संघर्ष का समय था। देवव्रत भीष्म, कृष्ण द्वैपायन व्यास, वसुसेन कर्ण, धर्मराज युधिष्ठिर, युग पुरुष महानायक योगिराज वासुदेव कृष्ण, आचार्य द्रोण आदि केवल अपने समय के प्रमुख व्यक्ति की नहीं, विभिन्न प्रवृत्तियों के प्रतिनिधि भी थे। तत्कालीन सामाजिक मान्यताओं का ज्वलन्त उदाहरण हैं वीर यौद्धा कर्ण। कर्ण को जन्म देने वाली माँ कुमारी कुन्ती थी। वे वसुदेव की बहन और कृष्ण की बुआ थीं। कुन्ती के साथ सूर्य के विवाह पूर्व सम्बन्धों का परिणाम कर्ण थे। उस सम्बन्ध को सामाजिक स्वीकृति नहीं मिल सकी थी, इसलिए देवव्रत भीष्म कभी कर्ण का सम्मान नहीं कर सके। भीष्म और कर्ण एक ही पक्ष में धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन के नेतृत्व में कार्य करते हुए भी कभी निकट नहीं आ सके। इसके विपरीत कृष्ण विरोधी पक्ष में होते हुए भी सदैव कर्ण का सम्मान करते रहे। इसी न्यायप्रियता और उदारता के कारण ही तो कृष्ण युगनायक बने।

सूर्य पुत्र कर्ण को जन्म देकर पृथा कुन्ती ने उसे लकड़ी के सन्दूक में रखकर नदी में प्रवाहित कर दिया। स्पष्टतः माँ के रूप में उनकी इतनी इच्छा तो थी ही कि यदि कोई इस शिशु को जीवित बचा ले तो अच्छ है, लेकिन दूसरे पुत्र युधिष्ठिर के देवव्रत भीष्म से प्रभावित होने के कारण वे कभी कर्ण को अपना पुत्र कहने का साहस नहीं जुटा सकीं। सम्मानित कुल में जन्म लेने के बावजूद कर्ण उपेक्षित और निन्दित रहे। यह अलग बात है कि पृथा कुन्ती के शेष तीनों पुत्र भी उनके पति की सन्तान न होकर अन्य लोगों से ही उत्पन्न हुए थे। लेकिन नियोग प्रथा को सामाजिक स्वीकृति मिल चुकी थी, अतः युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन कुलीन राजकुमार कहलाये और सहज प्रेम की परिणति कर्ण को सूतपुत्र कहकर अपमानित किया गया। कुन्ती इस बात को छिपाकर अपना सम्मान बचाये रही और कर्ण अपमान सहते रहे। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पृथा ही कुन्ती का बचपन का वास्तविक नाम था।

पृथा और वसुदेव के पिता शूरसेन के मित्र कुन्तिभोज सन्तानहीन

थे। अतः उन्होंने पृथा को गोद ले लिया था, इसलिए पृथा को कुन्ती भी कहते हैं। पृथा द्वारा त्यागे गये कर्ण को अतिरथ ने पुत्र की तरह पाल लिया। अतिरथ की पत्नी का नाम राधा था। इसलिए कर्ण को राधेय भी कहा जाता है। पृथा कुन्ती के पुत्र कर्ण राधा की गोद में पलकर बड़े हुए। कृष्ण भी माता-पिता से दूर किसी और की गोद में पले थे, अतः कर्ण का दुःख समझ सकते थे।

अतिरथ सम्भवतः सूत या रथचालक थे, इसलिए कर्ण को सूतपुत्र के रूप में अपमान सहना पड़ा, लेकिन विष्णु पुराण के अनुसार अतिरथ भी चन्द्रवंश की अंग शाखा में थे। यह सम्भव है कि वे राजा न हों। विष्णु पुराण के अनुसार चन्द्रवंश में प्रमुख राजा पुरूरवा, आयु, नहुष, ययाति आदि हुए। ययाति के पांच पुत्र यदु, तुर्वसु, द्रुह्य, अनु व पुरु थे। ययाति ने आज्ञाकारी होने के कारण सबसे छोटे पुत्र पुरु को उत्तराधिकारी बनाकर प्रतिष्ठान की केन्द्रीय सत्ता सौंपी और अन्य पुत्रों को क्षेत्रीय राजा बनाया। पुरुवंश सर्वाधिक प्रभावशाली रहा और भरत, सुदास् जैसे सम्राटों को जन्म दिया। शान्तनु, भीष्म, युधिष्ठिर आदि इसी वंश में हुए। यदुवंश भी अनेक शाखाओं में अपना प्रभावशाली अस्तित्व बनाये रहा, यद्यपि वह देश की राजनीति का केन्द्र नहीं बन सका। ययाति के चौथे पुत्र अनु के वंश में राजा बलि के पांच पुत्र अङ्ग, बङ्ग, कलिंग, सुह्य और पौण्ड्र थे। इन सभी ने अपने-अपने नाम पर जनपदों की स्थापना की। अङ्ग के वंश में कई पीढ़ियों के बाद चित्ररथ हुए। उन्हें रोमपाद भी कहा गया। चित्ररथ रोमपाद अङ्ग देश के राजा थे। उनका उल्लेख बाल्मीकि ने रामायण में भी किया है। कर्ण का पालने करने वाले अतिरथ इन्हीं चित्ररथ रोमपाद के वंश में हुए थे, ऐसा विष्णु पुराण में उल्लेख है। इस प्रकार अतिरथ भी उच्चकुलीन थे। यद्यपि वे स्वयं राज नहीं ते और रथचालक के रूप में अपनी अजीविका चलाते थे। जो भी हो, अतिरथ ने कर्ण का पालन-पोषण भलीभांति किया, उन्हें श्रेष्ठ आदर्शवादी संस्कार दिये और उच्च सैनिक शिक्षा भी दिलायी।

कर्ण महान् शूरवीर, अप्रतिम धनुर्धर, अतुलनीय दानशील मानव रत्न थे। कृष्ण, अर्जुन और भीष्म के अलावा कोई भी धनुर्धर उनका सामना करने का साहस नहीं कर सकता था। उन्होंने अनेक अवसरों पर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध की थी। भीष्म के बाद हस्तिनापुर की राजसत्ता की रक्षा करने वाले वे सबसे महान् शक्ति थे। धृतराष्ट्र के शासनकाल में सभी विजय अभियान कर्ण के बल पर ही सम्पन्न हो सके थे।

अपने युग के तथाकथित सूतपुत्र कर्ण का चरित्र सर्वाधिक निष्कलंक था। कुछ आलोचकों का विचार है कि कर्ण ने साथी गलत चुना। लेकिन यदि परिस्थितियों पर ध्यान दिया जाये तो उनके पास और कोई विकल्प नहीं था। भीष्म और युधिष्ठिर जैसे परम्परावादी उन्हें सूतपुत्र कहकर अपमानित करते थे। आचार्य द्रोण केवल कुलीन क्षत्रियों के राजकुमारों को शिक्षा देने वाले वेतन भोगी शिक्षक बनकर रह गये थे। अर्जुन की श्रेष्ठता को चुनौती न मिले, इसलिए वे एकलव्य का अंगूठा कटवा लेते हैं। अतः युद्ध विद्या में अर्जुन के प्रबल प्रतिद्वन्द्वी कर्ण उनसे क्या अपेक्षा कर सकते थे। द्रोण के विरोधी पाञ्चाल नरेश द्रुपद अपनी पुत्री कृष्णा द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ कर चुके थे। अतः कर्ण के लिए वहाँ भी कोई स्थान नहीं था। अतः अपने समय के श्रेष्ठ धनुर्धर अर्जुन के सामने लाचार उनके जन्मजात प्रतिद्वन्द्वी और हस्तिनापुर में कुरुवंश की सत्ता

के स्वाभाविक उत्तराधिकारी दुर्योधन ने जब उन्हें अपना मित्र बनाकर उनके गृहप्रदेश अङ्ग राज्य का राजा बना दिया, तब उन्होंने सच्चे मित्र की तरह आजीवन अपने उपकारी मित्र का साथ दिया।

यहाँ यह स्पष्ट कर देना जरूरी है कि दुर्योधन हस्तिनापुर साम्राज्य के स्वाभाविक उत्तराधिकारी क्यों थे? धृतराष्ट्र बड़े थे और पाण्डु छोटे। इसलिए धृतराष्ट्र के बाद उन्हें ही राजा बनना था। यदि देवव्रत भीष्म उस साम्राज्य का विभाजन नहीं करते और बाद में हुए युद्ध में वे मारे नहीं जाते तो हस्तिनापुर साम्राज्य का सम्राट तो उन्हें होना ही था।

हस्तिनापुर के कुरुवंश का स्वाभाविक उत्तराधिकारी सम्राट होने के कारण ही देवव्रत भीष्म दुर्योधन का साथ देते थे। लेकिन वैचारिक निकटता के कारण वे युधिष्ठिर को अधिक चाहते थे। भीष्म इस बात को समझते थे कि दुर्योधन की उत्तराधिकारी सम्राट होंगे, अतः उन्होंने हस्तिनापुर साम्राज्य का विभाजन करके पश्चिम क्षेत्र युधिष्ठिर को दे दिया। अपेक्षा यह की गयी होगी कि वह नया प्रान्त केन्द्रीय सत्ता के रूप में हस्तिनापुर को सम्मान देता रहेगा। लेकिन युधिष्ठिर स्वयम् सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा पाले हुए थे। उन्होंने इन्द्रप्रस्थ नगर बसाकर समान्तर साम्राज्य खड़ा करने का प्रयास करना आरम्भ कर दिया। कृष्ण के पिता वसुदेव युधिष्ठिर के मामा थे और युधिष्ठिर की माँ पृथा कुन्ती कृष्ण की बुआ थीं। इसके अलावा कृष्ण की बहन सुभद्रा से अर्जुन ने प्रेम विवाह कर लिया था। अतः अर्जुन कृष्ण की फुफेरे भाई के साथ साथ बहनोई भी बन गये थे। इस घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण युधिष्ठिर को कृष्ण का समर्थन भी प्राप्त था। पाञ्चाल नरेश द्रुपद की कन्या कृष्णा द्रौपदी पाञ्चाली भी अर्जुन सहति पांच पाण्डवों की पत्नी थीं। अतः पाञ्चाल का समर्थन भी युधिष्ठिर को मिला हुआ था। इन्द्रप्रस्थ, पाञ्चाल और द्वारिका से घिरा हुआ मत्स्य या विराट राज्य भी उनका समर्थक बन गया था। अतः पश्चिमोत्तर भारत का विशाल क्षेत्र युधिष्ठिर को सम्राट बनाने में लगा था। मन से देवव्रत भीष्म का आशीर्वाद तो उनके साथ था ही।

पूर्वी भारत के प्रान्तीय राजा परम्परागत रूप से हस्तिनापुर की केन्द्रीय सत्ता का समर्थन करते थे। काशी, कोशल, मगध, अङ्ग आदि प्रान्त दुर्योधन के समर्थ थे। कलिंग और प्राग्ज्योतिषपुर भी उसके साथ थे। इनमें अङ्ग नरेश कर्ण तो उनके व्यक्तिगत समर्पित मित्र थे ही। कर्ण अपना अपमान करने वालों को मजा चखाना चाहते थे। उसके लिए उन्होंने हस्तिनापुर साम्राज्य की शक्ति का उपयोग किया। अपनी शक्ति से युद्ध जीतने का उन्हें उचित विश्वास था और साम्राज्य की सत्ता पर दुर्योधन के नैतिक अधिकार पर भरोसा था।

❖❖ ❖ ❖❖

महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास

कृष्ण द्वैपायन व्यास की माता सत्यवती एक साधारण मछुआरे की पुत्री थी। उनका निवास कालपी के निकट यमुना नदी के तट पर था। उन्हें धीवर या कछारी भी कहा जाता है। एक दिन पराशर ऋषि यमुना तट पर आये। उन्हें नदी पार करनी थी। सत्यवती नाव चला रही थीं। दोनो की इच्छा हुई। उसी नाव में सहवास के फलस्वरूप सत्यवती गर्भवती हो गयी। और समय पर ऐसे महान् बालक को

जन्म दिया। माँ ने अपने उस पुत्र का नाम कृष्ण रख दिया। स्पष्ट है कि समाज ने विवाह पूर्व जन्मे सत्यवती के पुत्र को स्वीकार कर लिया और उनका पालन-पोषण सहज ढंग से सम्भव हो सका। उस समाज में हमारे समाज जैसी संकीर्ण धारणायें नहीं थीं, अन्यथा सत्यवती और उसके परिवार का जीवन कठिन हो जाता और हम कृष्ण द्वैपायन जैसे महान् व्यक्तित्व से वञ्चित रह जाते।

उन्होंने हिमालय के बदरीनाथ क्षेत्र में रहकर तपस्या और ज्ञान साधना की। इस योग्य युवा को गर्व से सत्यवती ने भी पुत्र कहा, पराशर ने भी। बाद में सत्यवती का विवाह राजा शान्तनु से हुआ। वे कर्ण की माता कुन्ती पृथा की तरह निर्बल मन की नहीं थी जो अपने पुत्र को अपना कहने का साहस न कर सकें। शान्तनु से विवाह के समय सत्यवती के पिता ने वचन लिया था कि शान्तनु के बाद उनका पुत्र ही राजा बनेगा। इसी प्रकरण में शान्तनु के बड़े पुत्र देवव्रत ने कभी राजा न बनने और विवाह न करने का संकल्प लिया और भीष्म कहलाये। इस प्रकार देवव्रत भीष्म और कृष्ण द्वैपायन व्यास समकालीन थे और लगभग समवयस्क भी।

शान्तनु के वचन देने के बाद भी सत्यवती ने कभी भी अपने पुत्र को ही राजा बनाने की जिद नहीं पकड़ी। उन्होंने भीष्म की योग्यता को सदैव वरीयता दी। सत्यवती ने भीष्म को राजा बनाने और विवाह कराने का प्रयास भी किया, लेकिन देवव्रत भीष्म ने उनकी बात नहीं मानी। चित्रांगद की मृत्यु होने और विचित्रवीर्य के सन्ताहीन मर जाने पर सत्यवती ने भीष्म से कहा कि उनकी पत्नियों से नियोग प्रथा के अनुसार सन्तान उत्पन्न करें लेकिन भीष्म ने यह भी स्वीकार नहीं किया। तब सत्यवती ने अपने पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास को आदेश देकर नियोग द्वारा सन्तान उत्पन्न करायी।

इस प्रकार धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर के वास्तविक जन्मदाता व्यास ही थे। जब तक बड़े होकर पाण्डु ने शासन नहीं संभाल लिया, तब तक रानी सत्यवती ने भीष्म के सहयोग से राजसत्ता चलायी। सत्यवती को महान् महिला शासक के रूप में रेखांकित किया जाना चाहिये।

कृष्ण द्वैपायन हिमालय से लौटकर हस्तिनापुर आये और वैदिक साहित्य के सम्पादन का कार्य किया। वे वेदान्त दर्शन के प्रवर्तक और सूत्र ग्रन्थों के भाष्यकार भी थे। इस प्रकार भारतीय धर्म संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में कृष्ण द्वैपायन व्यास का योगदान बहुत अधिक है उन्होंने वैदिक साहित्य के सम्पादन का महत्वपूर्ण कार्य हमारे समय से लगभग बावन शताब्दियों पूर्व सम्पन्न किया।

सभी पुराणों के साथ व्यास का नाम जुड़ा हुआ है। इसके पीछे भी कोई उपयुक्त कारण अवश्य होना चाहिये। जय नामक इतिहास ग्रन्थ कृष्ण द्वैपायन व्यास की महत्वपूर्ण रचना है। उन्होंने चार हजार चार सौ अथवा छह हजार श्लोकों में उसकी रचना की थी। बाद में अन्य विद्वानों ने उसका आकार दस हजार या चौबीस हजार श्लोकों का बनाकर भारत नाम रख दिया। यह बात प्रचलित हो गयी कि जो कुछ भारतवर्ष में है, वह सब कुछ भारत ग्रन्थ में है। बाद में उस ग्रन्थ का आकार एक लाख बीस हजार श्लोकों का हो गया। इसी प्रकार से सम्भव है कि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने प्राचीन इतिहास को समेट कर पुराण के रूप में सम्पादन किया हो जिसके आधार पर ही विभिन्न लोगों ने समय-समय पर अनेक पुराणों की रचनायें की

होंगी। शायद इसलिए उस सभी विनम्र लोगों ने पुराणों की रचना का श्रेय व्यास को ही दिया हो। स्वयम् को नहीं। इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में प्रचलित किसी पुराण के रचनाकार महर्षि कृष्ण द्वैपायन व्यास नहीं हैं, भले ही सभी पुराणों के मूल प्रेरणास्रोत वे ही हों।

द्वापर युग का अन्तिम चरण काफी राजनीतिक उथल-पुथल का समय था। कृष्ण द्वैपायन व्यास उस युग के अति महत्वपूर्ण व्यक्ति हैं। विद्वान्, सम्पादक, भाष्यकार, महान् दार्शनिक, महाकवि और महत्वपूर्ण इतिहासज्ञ होने के साथ ही वे अपने समय के इतिहास के प्रमुख पात्र भी थे। धृतराष्ट्र और पाण्डु के जन्मदाता होने के साथ ही वे हस्तिनापुर राजपरिवार के प्रेरणास्रोत और नैतिक परामर्शदाता भी थे। कठिन समय में अनेक बार सत्यवती तथा अन्य लोगों ने उनके परामर्श से शान्ति प्राप्त की। कुरुक्षेत्र के महायुद्ध के बाद उन्होंने उसका इतिहास लिखकर भावी पीढ़ियों के लिए सुरक्षित कर दिया। आश्चर्य होता है कि इतनी बहुमुखी प्रतिभा का धनी कोई व्यक्त हो सकता है।

❖❖ ❖ ❖❖

हस्तिनापुर राजपरिवार में कलह

जिस समय कृष्ण द्वैपायन व्यास वैदिक संस्कृति के आधारभूत ग्रन्थों का सम्पादन कर व्यवस्थित कर रहे थे, भारतवर्ष की केन्द्रीय सत्ता हस्तिनापुर के कुरुवंश में पारिवारिक कलह के लक्षण उभरने लगे। शान्तनु के बड़े पुत्र देवव्रत भीष्म की योग्यता, क्षमता, वीरता और सदिच्छा के बावजूद उस महान् वंश के पतन को रोका नहीं जा सका। भीष्म शासन न करने की अपनी प्रतिज्ञा पर पूरी तरह दृढ़ थे और संयोगवश कोई और योग्य शासक सिंहासन पर नहीं बैठ सका। भीष्म के दोनों छोटे सौतेले भाई निःसंतान मर गये और नियोग से उत्पन्न बड़े पुत्र धृतराष्ट्र ने अन्धे ही जन्म लिया। अतः छोटा होने के बावजूद पाण्डु को राजा बनाया गया। यहीं से पारिवारिक कलह का बीज पड़ गया जिससे लम्बे समय तक यह राजपरिवार और फलस्वरूप पूरा देश प्रभावित रहा।

परिस्थितिवश पाण्डु के संन्यास ले लेने और उस समय तक किसी उत्तराधिकारी के न होने के कारण अन्धे धृतराष्ट्र को ही सिंहासन पर बैठाकर भीष्म शासन का संचालन करने लगे। संयोगवश धृतराष्ट्र की पत्नी गन्धारी और पाण्डु की पत्नी पृथा (कुन्ती) एकसाथ गर्भवती हुईं। अब यह विचार किया जाने लगा कि जो पहले उत्पन्न होगा, वही उत्तराधिकारी बनेगा। यहीं से राजनीतिक षड्यन्त्र का दौर शुरू हो गया। पृथा (कुन्ती) और माद्री के पुत्रों पाँच पाण्डवों का जन्म व पालन वन में हुआ। पाण्डु के मरने पर उन दोनों पत्नियों और पाँचों पुत्रों को हस्तिनापुर राजभवन में भीष्म के संरक्षण में भेज दिया गया। भीष्म धृतराष्ट्र और पाण्डु के पुत्रों के लिए समुचित शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था कर दी। कुरुवंश के सम्राट धृतराष्ट्र थे, अतः उनके पुत्र ही कुरुकुल के उत्तराधिकारी कौरव कहे जाते थे। पाण्डु के पुत्र पाण्डव कहे जाने लगे। छात्र जीवन से ही दोनों पक्षों में सत्ता के उत्तराधिकार को लेकर षड्यन्त्र प्रारम्भ हो गये।

धृतराष्ट्र पाण्डु से बड़े थे और सत्तासीन सम्राट थे। अतः उनके बड़े पुत्र दुर्योधन को स्वाभाविक उत्तराधिकारी माना जाता था। दुर्योधन वीर, साहसी और कुशल योद्धा भी थे, लेकिन संयोगवश युधिष्ठिर का जन्म उनसे पहले हो गया था। पाण्डु के समर्थकों ने इसे प्रतीकात्मक रूप में ही सही, युधिष्ठिर के बड़े होने को मुद्दा बनाकर उन्हें उत्तराधिकारी बनाने का प्रयास शुरू कर दिया।

राजनीतिक जोड़-तोड़ की इन परिस्थितियों में धृतराष्ट्र और उनके पुत्र दुर्योधन को पाण्डवों का अस्तित्व ही घातक लगने लगा। जब पाण्डु के निधन पर उनके पुत्र हस्तिनापुर आये तब उनका भव्य औपचारिक स्वागत किया गया, लेकिन उनसे छुटकारा पाने के लिए प्रयास भी प्रारम्भ हो गये। स्थिति यह हो गयी कि दोनों पक्ष एक दूसरे को समाप्त करने की ताक में रहने लगे। युधिष्ठिर का स्वभाव एवम् विचार देवव्रत भीष्म से मेल खाता था। अतः उन्हें सत्ता के असली सूत्रधार पितामह महारथी भीष्म का समर्थन प्राप्त था। दोनों ही परम्पराओं की मर्यादा पर चलने वाले थे। इस तरह दोनों को कहीं न कहीं व्यक्तिगत प्रशंसा और सहानुभूति मिल जाती थी।

उस समय भारतवर्ष की वास्तविक सत्ता भीष्म के हाथों में केन्द्रित थी। व्यक्तिगत त्याग करने के कारण कुरु परिवार में उनका सम्मान भी था। वैसे भी वे दुर्योधन और युधिष्ठिर जैसे प्रतिद्वन्द्वियों के पितामह होने के कारण पूज्य थे। लेकिन कुरुवंश के बाहर भारतवर्ष के प्रान्तीय शासकों में भीष्म की छवि अच्छी नहीं थी, अपितु क्रूर, अत्याचारी एवं लडाकू की थी। उन्होंने अपने भाइयों के लिए काशी नरेश की पुत्रियों अम्बा और अम्बालिका का अपहरण किया था और इसी तरह अपने भतीजे धृतराष्ट्र के लिए गान्धारी को शक्ति के बल पर उठा लाये थे। गान्धार इस अपमान को कभी भुला नहीं पाया और भीष्म को नीचा दिखाने के उपाय सोचता रहा।

देवव्रत भीष्म की सम्पूर्ण शक्ति व्यक्तिगत त्याग और परम्परावादी नैतिकता थी। उनकी परिभाषा के अनुसार शान्तनु के वंश की रक्षा और उस कुल की परम्पराओं का पालन उनके लिए सबसे बड़ा धर्म था। चाहे उसके लिए कितना भी क्रूर कर्म क्यों न करना पड़े। लेकिन गान्धार राजकुमार शकुनि के लिए इस धर्म को पचा पाना बड़ा कठिन था कि उनकी बहन का अपहरण करके एक अन्धे व्यक्ति के साथ विवाह कर दिया जाये। गान्धारी को जैसे ही अपने पति धृतराष्ट्र के अन्धे होने का पता चला, उन्होंने भी अपनी आँखों पर स्थायी तौर पर पट्टी बाँध ली। पता नहीं यह उनका पतिव्रत धर्म और समर्पण था या प्रतिरोध व्यक्त करने का एक विवश नारी का अपना तरीका। लेकिन गान्धारी की आँखों पर बांधी हुई उस पट्टी ने शकुनि को कभी इस अन्याय की ओर से आंख फेरने नहीं दिया। जब उन्हें पता चला कि देवव्रत भीष्म उनके भांजे दुर्योधन का अधिकार छीनकर युधिष्ठिर को उत्तराधिकारी बनाना चाहते हैं, तब उन्होंने हस्तिनापुर के इस राजनीतिक खेल का सूत्र अपने हाथ में ले लिया।

इस तरह शकुनि ही सम्राट धृतराष्ट्र के मुख्य सलाहकार बन गये। भीष्म अपने ही जाल में फंस चुके थे। वे सत्ता का समर्थन करने के लिए विवश थे और धृतराष्ट्र शकुनि की सलाह पर चलने लगे थे। शकुनि ही धृतराष्ट्र और गान्धारी की आँखें बन चुके थे। दुर्योधन के भीतर चक्रवर्ती सम्राट बनने की महत्त्वाकांक्षा कूट-कूट कर भरी गयी। पाण्डवों को रास्ते का कांटा बताकर समाप्त करने के लिए उन्हें प्रेरित

किया जाने लगा। शकुनि के नेतृत्व में राजनीतिक षड्यन्त्रों का एक अन्तहीन दौर शुरू हो गया। पाण्डों में भीम सबसे अधिक शक्तिशाली थे, अतः वे सबसे बड़ा खतरा लगे थे। एक बार दुर्योधन ने उन्हें नदी में डुबोकर मारने का प्रयास किया लेकिन वे संयोगवश सुरक्षित बच निकले। पाण्डवों ने भी रणनीति के तहत इस मामले को तूल नहीं दिया।

एक अवसर पर शकुनि की सलाह पर पाण्डवों के लिए दुर्योधन ने हस्तिनापुर के निकट वारणावत में भव्य भवन बनाया। उसके निर्माण में लाक्षा आदि अति ज्वलनशील पदार्थों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया। महामन्त्री विदुर को इस षड्यन्त्र की भनक लग गयी। उन्होंने विश्वस्त लोगों द्वारा पाण्डवों को इसका संकेत भेज दिया। जब पाँच पाण्डव तथा माता कुन्ती उस भवन में थे, शकुनि की योजना के अनुसार उस भवन में आग लगा दी गयी। संयोगवश या योजनानुसार उस जले हुए भवन में एक महिला सहित छह लोगों के शव बुरी तरह जली अवस्था में निकले। हस्तिनापुर में अधिकृत तौर पर मान लिया गया कि दुर्घटनावश हुए अग्निकाण्ड में कुन्ती तथा पाँच पाण्डव भाई जलकर मर चुके हैं। इतिहास में वह दुर्घटना लाक्षागृह काण्ड के रूप में दर्ज हो गयी है।

कुन्ती और उनके पाँचों पुत्र लाक्षागृह में गुप्त सुरंग बनाकर निकल गये थे। उस सुरंग का बाहरी द्वार दूर वन में खुलता था। उन्होंने उचित समय की प्रतीक्षा करते हुए कुछ समय तक हस्तिनापुर से दूर ही रहने का निश्चय किया और छद्मवेश में जीवन-यापन करते हुए उचित समय की प्रतीक्षा करने लगे।

लाक्षागृह षडयन्त्र में पाण्डवों और कुन्ती के जीवित बच निकलने की जानकारी केवल विदुर को थी। राजपरिवार के छह लोगों के एक साथ जल मरने की सूचना से हस्तिनापुर में शोक छा गया। शकुनि और दुर्योधन की मण्डली अपनी 'निर्णायक सफलता' पर मन ही मन प्रसन्न थी, लेकिन इस दुर्घटना पर राजकीय शोक मनाया गया। देवव्रत भीष्म को गहरा आघात लगा। पाण्डु समर्थक लोगों को इस दुर्घटना के पीछे शकुनि की गहरी साजिश की पूरी आशंका थी। लेकिन जो हो चुका था, उसके सम्मुख सभी अपने को पूरी तरह विवश पा रहे थे।

❖❖ ❖ ❖❖

मथुरा में कंस तथा वसुदेव

जिस समय हस्तिनापुर की केन्द्रीय सत्ता कुरुवंश की आन्तरिक कलह से कमजोर पड़ रही थी, मगध के सम्राट जरासन्ध के मन में चक्रवर्ती सम्राट बनने की महत्त्वाकांक्षा लगी थी। उन्होंने विवाह सम्बन्धों के माध्यम से देवव्रत भीष्म के विरोधियों से सम्बन्ध मजबूत करने प्रारम्भ कर दिये। उन्होंने काशी नरेश काश्य और मथुरा नरेश कंस के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये। जरासन्ध की दो पुत्रियों अस्ति तथा प्राप्ति का विवाह कंस के साथ हुआ था। उन्होंने हस्तिनापुर के निकटवर्ती राज्य को अपने साथ लाने को प्राथमिकता दी जिससे घेरा मजबूत हो सके।

इसी योजना के तहत जरासन्ध के समर्थन से कंस ने अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बनाकर स्वयम् को मथुरा का राजा घोषित कर दिया। आन्तरिक कलह के कारण ही हस्तिनापुर का कुरवंश इस

विद्रोह को मूक दर्शक बनकर देखता रहा और कुछ न कर सका। अब मथुरा या व्रज प्रदेश मगध साम्राज्य के अन्तर्गत आ गया था और हस्तिनापुर का साम्राज्य पश्चिमी भारत तक सिमट गया था।

मगध राजवंश भी कुरुवंश की एक शाखा थी। बृहद्रथ पुत्र जरासंध को इस तरह भी सम्राट बनने की महत्वाकांक्षा में नैतिक बल मिलता था। मथुरा का राजपरिवार यदुवंशी था। इस प्रकार उस समय का भारत वर्ष पश्चिमी और पूर्वी दो प्रमुख साम्राज्यों में विभाजित हो गया था। उग्रसेन और देवव्रत भीष्म को लगभग समकालीन माना जाना चाहिए। जरासंध भी उसी समय हुए। युगाब्द पूर्व दूसरी शताब्दी का पूर्वार्ध अथवा तैंतीस शताब्दी ईस्वी पूर्व का समय अथवा हमारे समय से तिरपन शताब्दी पहले का काल था वह।

दुर्भाग्य से यदुवंश सदैव आपसी कलह का शिकार रहा, इसलिए कभी प्रभावशाली नहीं बन सका। अन्धक वंशी राजा आहुक के दो पुत्र हुए, उग्रसेन और देवक। उग्रसेन के नौ पुत्र कंस, न्यग्रोध, सुनाम, आनकाह्व, शंकु, सुभूमि, राष्ट्रपाल, युद्धतुष्टि और सुतुष्टिमान् थे। उग्रसेन की पुत्रियों के नाम कंसा, कंसवती, सुतनु एवं राष्ट्रपालिका बताये गये हैं।

देवक के चार पुत्र देववान्, उपदेव, सहदेव और देवरक्षित थे। उनकी सात पुत्रियाँ वृकदेवा, उपदेवा, देवरक्षिता, श्री देवा, शान्तिदेवा, सहदेवा और देवकी थीं। मथुरा नरेश कंस भाई-बहनों को बहुत प्यार करते थे। चचेरे भाई-बहनों से भी उनका काफी प्रेम था।

यदुवंश की अन्धक शाखा में ही शूरसेन हुए। वे भी मथुरा राज्य के प्रमुख पदाधिकारी थे। शूरसेन की पत्नी का नाम मारिषा था। शूरसेन के दस पुत्र थे जिसमें बड़े वसुदेव थे। शूरसेन के अन्य पुत्रों के नाम देवभाग, देवाश्रवा, अष्टक, ककुच्चक, वत्सधारक, सृंजय, श्याम, शमिक तथा गण्डूष थे। शौरसेन की पाँच पुत्रियाँ पृथा, श्रुतदेवा, श्रुतकीर्ति, श्रुतश्रवा और राजाधिदेवी थीं। शूरसेन के एक मित्र राजा कुन्तिभोज थे। उन्होंने पृथा को गोद ले लिया था। अतः पृथा को कुन्ती कहा गया। इस प्रकार पृथा कुन्ती वसुदेव की सगी बहन थी। कुन्तिभोज ने स्वयंवर का आयोजन किया तो पृथा कुन्ती ने कुरुराज पाण्डु को अपना पति चुना। इस प्रकार हस्तिनापुर के राज परिवार का विवाह सम्बन्ध कुन्तिभोज से हो गया। पृथा कुन्ती मूलतः यदुवंशी शूरसेन की पुत्रीथी, अतः यादव कुल से भी घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हो गये। इस विवाह सम्बन्ध ने भविष्य की राजनीति में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। शताब्दियों तक इसका प्रभाव बना रहा।

शूरसेन के पुत्र और पृथा कुन्ती के भाई वसुदेव का विवाह मथुरा नरेश कंस के चाचा की पुत्रियों के साथ हुआ था। शूरसेन की पाँच पुत्रियाँ भी थीं। वसुदेव की इन सभी बहनों का विवाह अच्छे परिवारों में हुआ था। पृथा वसुदेव से बड़ी थीं। शूरसेन की दूसरी पुत्री ऋतुदेवा का विवाह कारूश के राजा बुद्धधर्मा के साथ हुआ था। उनके पुत्र दन्तक थे जिन्हें महादैत्य कहा गया है। हो सकता है कि अत्यधिक बलशाली होने के कारण ही पुराणकारों ने उन्हें महादैत्य कह दिया हो और यह भी सम्भव है कि राजा बुद्धधर्मा दैत्य वंश के असुर नरेश हों। इस प्रकार कारूच राज्य भारतवर्ष से बाहर पश्चिम एशिया या मध्य एशिया में भी हो सकता है।

वसुदेव की तीसरी बहन का नाम श्रुतकीर्ति था। उनका विवाह केकय नरेश के साथ हुआ था। उनके पति राजा का नाम नहीं मिल

सका है। उनके पाँच पुत्र हुए, जिनमें एक नाम सन्तर्दन हमें ज्ञात है। चौथी राजाधिदेवी का विवाह अवन्ति नरेश के साथ हुआ था। उनके दो पुत्र विन्द और अनुविन्द थे। उनके पति अवन्ति नरेश का नाम भी हमें ज्ञात नहीं हो सका। सबसे छोटी श्रुतश्रवा का विवाह चेदिराज दमघोष के साथ हुआ थ। उनके पुत्र शिशुपाल थे। वे बहुत महत्त्वाकांक्षी, ईर्ष्यालु और अभिमानी थे। छोटे से सामन्त राज्य का राजकुमार होने के कारण उनको अपनी महत्वकांक्षा के अनुरूप प्रतिष्ठा कभी नहीं मिल सकी। इसलिए अन्य लोगों की उन्नति के प्रति उनमें ईर्ष्या भाव रहा।

वसुदेव की अनेक पत्नियाँ थीं। विष्णु पुराण के चतुर्थ अंश, अध्याय चौदह में कहा गया है कि कंस के चाचा देवक की सात पुत्रियाँ वृकदेवा, उपदेवा, देवरसिता, श्रीदेवा, सहदेवा और देवकी का विवाह वसुदेव के साथ ही हुआ था। इसके अलावा अध्याय पन्द्रह में वसुदेव की अन्य पत्नियों में पौरवी, रोहिणी, विशाखा, मदिरा, भद्रा के नाम भी बताये गये हैं। इस प्रकार हमें वसुदेव की बारह पत्नियों के नाम ज्ञात हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उस युग में बहुविवाह प्रथा प्रचलित थी और उसकी कोई अधिकतम सीमा निर्धारित नहीं थी। वसुदेव की पत्नी रोहिणी के पुत्रों में राम ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं। उनके अलावा सठ, सारण, दुर्मद, भद्राश्व, भद्रबाहु, दुर्दम, भूत आदि भी रोहिणी के पुत्र थे. मदिरा से वसुदेव के नन्द, उपनन्द और कृतक आदि पुत्र हुए। भद्रा ने उपनिधि, गद आदि अनेक पुत्रों को जन्म दिया। विशाखा के पुत्र कौशिक हुए। उनके वे एकमात्र पुत्र थे।

❖❖ ❖ ❖❖

देवकी-वसुदेव के छह पुत्रों की हत्या

किसी कारण से विरोध हो जाने पर कंस ने वसुदेव-देवकी पर पहरा लगा दिया था। वे कंस के महल में ही रहते थे। किम्वदन्ती है कि देवकी के छह पुत्रों को कंस ने जन्म देते ही मार डाला था, लेकिन पुराण हमें उन सभी देवकी पुत्रों के नाम बताते हैं, उनके नाम कीर्तिमान्, सुषेण, उदायु, भद्रसेन, ऋतुदास और भद्रदेव थे। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि देवकी के छह पुत्रों की हत्या जन्म लेते ही नहीं की गयी होगी। उन बच्चों को पाला गया है। बाद में भड़काये जाने पर कंस ने उन सभी छह बालकों की हत्या कर दी थी।

इस बात की पुष्टि इस तथ्य से भी होती है कि छह पुत्रों की हत्या के बाद सातवें और आठवें पुत्र को बचाने का सफल प्रयास किया गया। यह बात कैसे सम्भव लगती है कि कोई भी माता-पिता अपने आठ पुत्रों की हत्या कराना स्वीकार कर ले जिनका अभी जन्म ही नहीं हुआ है।

ऐसा लगता है कि कंस के विचारों में समय के साथ परिवर्तन आया भी होगा। देवकी के प्रति उनका प्रेम अपने भाञ्जे के प्रति लगाव उत्पन्न कर रहा होगा। लेकिन निश्चित रूप से सकारात्मक परिवर्तन कुछ लोगों को अच्छा नहीं लगा होगा। उन्होंने योजनाबद्ध

तरीके से कंस को भड़काया और देवकी के छह बालकों की निर्मम हत्या करा दी। इस जघन्य काण्ड पर भी इधर-उधर निन्दा के अलावा कोई विद्रोह कंस के विरुद्ध नहीं हो सका। इसका कारण मगध के सम्राट जरासन्ध का समर्थन था। मगध को अपने साम्राज्य की चिन्ता थी। मथुरा को साम्राज्य में बनाये रखने के लिए उन्हें ऐसी आन्तरिक बातों की उपेक्षा करते हुए अपने प्रान्तीय शासक का साथ देना ही था और कंस तो जरासंध की दो पुत्रियों के पति, प्रिय दामाद भी थे।

मथुरा नरेश कंस के हाथों देवकी-वसुदेव के छह पुत्रों की हत्या से सारा परिदृश्य ही बदल गया। अभी तक बात पारिवारिक सीमा के भीतर और आपसी सहमति की थी। वसुदेव ने पहरा सावधानीवश की गयी व्यवस्था मानकर स्वीकार कर लिया था। कंस की ओर से भी देवकी तथा वसुदेव को कारागार जैसी कोई कठोरता या कष्ट नहीं था। लेकिन छह पुत्रों की हत्या से दोनों पक्षों में स्पष्ट शत्रुता हो गयी। वसुदेव भी अपने भावी पुत्रों की रक्षा का उपाय सोचने के लिए बाध्य हो गये और कंस भी उनकी ओर से सशङ्कित रहने लगे। देवकी-वसुदेव पर पहरा कड़ा कर दिया गया। विश्वस्त गुप्तचर लगातार लगातार वसुदेव पर नजर रखने के लिए लगा दिए गये थे।

कुछ समय बाद देवकी ने सातवां गर्भ धारण किया। यह निश्चय कर लिया गया था कि अब किसी को कंस के हाथों नहीं पड़ने देना है। बहुप्रचारित तथ्य यह है कि देवकी के सातवें गर्भ की स्थिति में गर्भपात हो गया था। इस सन्दर्भ में यह भी कहा जाता है कि देवकी के सातवें गर्भ को वसुदेव की दूसरी पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया गया था। यह कहना कठिन है कि तैतीसवीं शताब्दी ई. पूर्व में भारत का चिकित्सा विज्ञान इतना उन्नत था या नहीं कि एक नारी के गर्भ को दूसरी नारी के गर्भ में स्थापित किया जा सके, लेकिन यह तो हो ही सकता है कि संयोगवश देवकी ने समय पूर्व सातवें पुत्र को जन्म दे दिया हो और गोपनीय ढंग से उसे रोहिणी के पास पहुँचा दिया गया हो। देवकी के गर्भपात का समाचार प्रचारित कर दिया गया होगा।

इतना तो तय है कि उस बालक का देवकी से सम्बन्ध है अवश्य, अन्यथा उसे सीधे-सीधे रोहिणी पुत्र कहने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। अतः निष्कर्ष यह निकलता है कि देवकी के सातवें पुत्र को ही रोहिणी का पुत्र बनाकर पाला गया। इस पर विवाद हो सकता है कि उसे जन्म से पूर्व रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया गया था अथवा जन्म देने के बाद उसे देवकी से लेकर रोहिणी की गोद में दे दिया गया था। देवकी और रोहिणी, दो माताओं के बीच खींचतान या कर्षण के कारण ही उस बालक को सङ्कर्षण कहा गया। यह उसका पहला अनौपचारिक नाम था। गोकुल में वसुदेव की पत्नी रोहिणी के आंचल की छाया में वह बालक पलने और बढ़ने लगा। प्राकृतिक वातावरण में उसका अच्छा विकास हो रहा था। देवकी के गर्भपात की खबर सुनकर कंस समझ नहीं पा रहे थे कि सत्य क्या है? उन्हें तो यही बताया गया था कि कंस के भय के कारण देवकी का गर्भपात हो गया है। कंस के पास इस बात को मान लेने और भविष्य की प्रतीक्षा के अलावा विकल्प भी तो की नहीं था। इस प्रकार अपने शुभचिन्तकों की सहायता से वसुदेव अपने सातवें पुत्र को बचाने में सफल रहे। इससे उनका साहस और उत्साह बढ़ा। यह तय हुआ कि आठवें पुत्र को किसी भी स्थिति में बचाया ही जायेगा। कुछ समय बाद देवकी ने आठवां गर्भ

धारण किया। कंस ने विश्वस्त पहरेदार नियुक्त किये, गुप्तचर लगाये और अपना पूरा ध्यान देवकी-वसुदेव की ओर लगा दिया।

भाद्रपद कृष्णपक्ष अष्टमी तिथि, मध्यरात्रि का समय, देवकी ने अपने आठवें पुत्र को जन्म दिया, मानो एक नया इतिहास जन्मा हो। सारी योजनाएँ पहले से तैयार थीं। प्रसूति कार्य में लगे लोग आवश्यक वस्तुओं के लिए आ-जा रहे थे। वर्षा का वेग लगातार बढ़ाता जा रहा था। इसी बीच वसुदेव नवजात बालक को सूप या टोकरी में छिपाये हुए निकल गये। वह बुरा मौसम वसुदेव के मार्ग की बाधा बना और सहायक भी। मथुरा जन शून्य थी। द्वार के पहरेदार भी वर्षा से बचने के लिए प्रायः कहीं दुबके पड़े थे। यह किसे पता था कि इस तूफान के बीच एक तूफानी इतिहास रचा जा रहा है। वसुदेव ने उस बालक को नन्द-यशोदा के पास छोड़ा और सुरक्षित देवकी के पास लौट आये। वसुदेव की सफलता को सुनकर देवकी का चिन्ताग्रस्त चेहरा खिल गया। गोकुल से वसुदेव नवजात कन्या को लेकर लौटे थे, अतः इस बार गर्भपात की कहानी गढ़ने की आवश्यकता नहीं थी।

कंस को देवकी के आठवीं सन्तान होने की सूचना मिली। वे भागकर वसुदेव-देवकी के पास पहुँचे। वहाँ उन्हें पता चला कि कन्या ने जन्म लिया है। उन्हें विश्वास ही नहीं हुआ। क्रोध से पागल कंस ने देवकी से छीनकर उस कन्या की हत्या कर दी। कंस ने वसुदेव और देवकी को मुक्त कर दिया और कहा कि मैंने वसुदेव और देवकी के छह पुत्रों की व्यर्थ ही हत्या की। कंस ने वसुदेव को धैर्य बंधाया और कहा कि अब यही माना जा सकता है कि उन बालकों का ऐसा ही भाग्य था। कंस ने वसुदेव को पहले की तरह सम्मानित सभासद का सम्मान दिया। ऊपर से शान्ति दिखायी पड़ने लगी।

वसुदेव मथुरा आये और नंद से मिले, उन्हें पुत्र जन्म पर बधाई दी और कहा कि रोहिणी से जन्मे मेरे पुत्र का भी ध्यान रखना। रोहिणी भी गोकुल में रहती थीं। वसुदेव ने नन्द से तुरत ही मथुरा छोड़कर वापस चले जाने के लिए कहा। नन्द राज्य का कर देने आये थे और उसी दिन वापस लौट गये। देवकी का आठवां पुत्र अथवा नन्द का वह बालक अभी छोटा था कि उसकी हत्या का एक प्रयास किया गया। एक दिन आधी रात के समय किसी तरह पूतना नाम की विषकन्या गुप्तचर ने उस बालक को उठा लिया और विष लगे स्तनों से दूध पिलाना चाहा। लेकिन उससे पहले ही नींद से जगे बालक ने हाथ से स्तनों को नोंच लिया। नाखून लग जाने से वह तेज जहर रक्त में फैल गया और पूतना स्वयम् ही अपने विष से मारी गयी।

एक दिन वसुदेव के भेजने पर गर्गाचार्य गोकुल गये और उन्होंने दोनों बालकों का नामकरण किया। रोहिणी पुत्र बड़ा था, उसका नाम राम रखा गया। यशोदा पुत्र का नाम कृष्ण रखा गया। कृष्ण आगे चलकर राष्ट्रनायक, योगेश्वर, पूर्ण पुरुष के रूप में भारतवर्ष के इतिहास में प्रतिष्ठित हुए। महाभारत और पुराणों में दोनों के नाम राम और कृष्ण ही लिखे हैं। बाद में अति प्रसिद्ध दशरथ पुत्र राम से विभेद दर्शाने के लिए बलराम कहा जाने लगा। वैसे नाम तो जमदग्नि के पुत्र का भी राम था जो बाद में परशुराम कहे जाने लगे। अवतार गणना में भी दोनों का नाम राम कहा गया है। कृष्ण के बचपन की कुछ घटनायें मध्यकाल में अतिरञ्जित बनाकर प्रचारित कर दी गयी हैं। विष्णु पुराण के अनुसार एक दिन कृष्ण को शकट अर्थात् छकड़ा या बैलगाड़ी के नीचे सुला दिया गया। जगने पर वे

रोने लगे। वह शकट लुढ़क गया, लेकिन उसके बीच में बालक सुरक्षित बच गया। यशोदा आदि ने यही कहा जो स्थिति में हम कहते हैं कि बालक चमत्कार से ही बच पाया है। नन्द ने बालक को उठाकर छाती से चिपटा लिया और शकट का पूजन दही, अक्षत, पुष्प आदि से किया। पता नहीं किसने और कब उस शकट को शकटासुर का नाम दे दिया और इस घटना को शकटासुर का वध बताया।

प्राकृतिक ग्रामीण वातावरण में राम और कृष्ण पलने बढ़ने लगे। गोपालन उनका मुख्य व्यवसाय था। एक दिन चञ्चल बालक को यशोदा ने ऊखल में बांधा और भीतर जाकर कार्य करने लगी। नटखट कृष्ण उसी ऊखल पर अपनी शक्ति दिखाने लगे। वे ऊखल को घसीटते हुए चलने लगे। इस खेल में ऊखल पास-पास उगे अर्जुन के दो पेड़ों के बीच फंस गया। खुद तो वह किसी तरह निकल गये पर ऊखल उसी में फँसा रहा। अब बालक क्या करें, वह भी तो उसी से बँधा था। खींचतान में पेड़ टूट गया और कृष्ण फिर बाल-बाल बचे।

❖❖ ❖ ❖❖

कृष्ण का जन्म तथा बचपन

कृष्ण अभी बालक ही थे जब नन्द आदि ने गोकुल छोड़कर अन्यत्र बसने का मन बना लिया। अपने पशुओं के साथ शकटों पर सामान लादा और चल दिये। वृन्दावन के निकट शकटों को अर्द्ध चन्द्राकार खड़ा कर घेरा बनाया और डेरा डाल दिया। किशोरावस्था की ओर बढ़ते हुए कृष्ण एक दिन कदम्ब की डाल से यमुना में कूद गये। वहाँ कालिय नाग से मुठभेड़ हो गयी। कालिय के साथ बहुमूल्य आभूषण धारण किये हुए उनकी पत्नियां भी थी। अतः कालिय को कृष्ण का दुस्साहस और भी असहनीय लगा। उन्होंने कृष्ण पर हमला कर दिया तो कृष्ण ने मार-मार कर अधमरा कर दिया। उनके क्षमा मांगने पर ही कृष्ण ने छोड़ा वे परिवार सहित कहीं और चले गये। कालिय को नागवंशी क्षत्रिय ही माना जा सकता है क्योंकि सर्प की पत्नियां न मानव से बात कर सकती हैं और न आभूषण पहन सकती हैं।

कालिय दमन के कुछ समय बाद राम ने खेल के दौरान प्रलम्ब नामक एक दुष्ट का वध किया। दोनों बालक बहुत साहसी और बलवान् थे। घोड़े और गधे जैसे पशुओं से शारीरिक बल से मुकाबला करना तो उनकी आवश्यकता ही थी। वन के निकट निवास जो बन गया था।

किशोरवय कृष्ण ने उन दिनों प्रचलित इन्द्र-पूजा पर रोक लगवा दी। कृष्ण ने कहा कि हम न कृषक हैं और न व्यापारी। हम वनचर पशु पालक हैं। अतः उस प्रकृति की पूजा कर सकते हैं जो हमारा और पशुओं का पालन करें। लोगों को तर्क समज में आ गया और इन्द्र पूजा नहीं हुई। वर्षा के देवता इन्द्र का कोप समझें या कृष्ण की अग्नि-परीक्षा, लगातार एक सप्ताह तक भारी वर्षा हुई। कृष्ण का जन्म ही ऐसे तूफानी मौसम में हुआ था। उन्होंने साहसपूर्वक स्थिति का सामना किया। अपनी चिन्ता न कर लोगों की सहायता में लगे रहें।

इस प्रकार परम्परावादी पूजा- पाठ पर रोक लगाकर कृष्ण ने अपना सार्वजनिक जीवन प्रारम्भ किया। कृष्ण के लिए प्रकृति महत्वपूर्ण थी, पूजा पाठ के कर्मकाण्ड नहीं। वे बचपन से कर्मयोगी

थे। महत्वपूर्ण कर्तव्य थे, धर्म-परम्परा की लकीर पीटना नहीं।

कृष्ण का बचपन अभावों में ही बीता। इन्द्रपूजा का विरोध करते हुए उन्होंने स्वयम् कहा कि हम न किवाड़ लगाते हैं और न घर या खेत वाले हैं। गृहविहीन और भूमिहीन पशु पालकों के समाज में पाले गये थे कृष्ण। अपने पशुओं को लेकर चरागाहों की तलाश में इधर से उधर भटकते रहते थे गोप लोग। उस समय पर्याप्त वन होने तथा पशु पालक होने से भोजन तो पौष्टिक मिल जाता था, लेकिन घर और कपड़े जुटाना आसान नहीं था। कृष्ण का विचार था कि इन्द्र की पूजा का कर्मकाण्ड करने से कोई लाभ नहीं है। हमें तो वन और पर्वत की ही पूजा करनी चाहिये जो हमें और हमारे पशुओँ को पोषण देते हैं। धार्मिक कर्मकाण्ड में शक्ति और संसाधन व्यय करने से अछ्छा है कि उसे अपने जीवन स्तर को उठाने में व्यय किया जाये। अपने परिवार से दूर अभावों में पलने वाले कृष्ण का तो क्रान्तिकारी और जनवादी विचारक बनना ही स्वाभाविक था। वे भाग्य के सामने समर्पण करने वाले निर्बल व्यक्ति थे ही नहीं।

जब कृष्ण के कार्यों से अभिभूत लोगों ने उनकी प्रशंशा की तो उन्होंने कहा कि मैं तुम्हारे बीच का ही साधारण मानव हूँ। यह अवश्य विचारणीय है कि जिस कृष्ण ने स्वयम् को साधारण मानव कहा औऱ इन्द्र की पूजा का विरोध किया, आज हम उसी कृष्ण की पूजा करने लगे, उसे पत्थर का बनाकर मन्दिर में बन्द कर दिया। यदि हम कृष्ण की बातें सुनें तो वे आज भी हर स्थिति में हमें रास्ता दिखा सकते हैं औऱ आज की ज्वलन्त समस्याओं का उपाय बता सकते हैं।

❖❖ ❖ ❖❖

कंश वध

जिस समय कृष्ण अपने क्रान्तिकारी विचारों के साथ गोपो को संड्गठित कर रहें थे, कंश के सामनें उनका भेद खुल गया। जब कंश को पता चला कि राम र कृष्ण देवकी के सातवें और आठवे पुत्र ह। तो उनके पैरों के नीचे धरती खिसक गई। वे अपने क्रोध को वसुदेव से भी नहीं छुपा सकें। लेकिन अब कोई बढा कदम उठाने से अब कोई लाभ नहीं होने वाला था। कंश ने मन्त्रियों से विचार विमर्श कर एक योजना तैयार की। मथुरा की वार्षिक खेल प्रतियोगता में कृष्ण और राम को बुलाने का निश्चय हुआ। कूट योजना थी कि खेल प्रतियोगिता के दौरान ही कृष्ण को मार डाला जाएगा और एक दुर्घटना बताकर मामला खत्म कर दिया जाएगा। श्वफल्क के पुत्र अक्रूर को बलराम और कृष्ण को बुलाने के लिए गोकुल भेजा गया। निर्णायक युद्ध के लिए कंश और वसुदेव ने अपनी अपनी तैयारियाँ शुरु कर दीं।

अक्रूर मथुरा से वृन्दावन गये और सभी को कंश का संदेश सुनाया। राजा के आदेश का पालन तो होना ही था। एक रात रुककर अगले दिन अक्रूर राम और कृष्ण को अपने रथ में बैठाकर मथुरा के लिए चल दिए और सायम् मथुरा पहुँच गये। मथुरा पहुँचकर अक्रूर ने राम और कृष्ण को रथ से उतार दिया और अकेले कंश के पास चले गये। दोनो भाई पैदल आगे बढे कृष्ण ने भी निर्णय करने का मन बना लिया था। जब भेद खुल गया तब कंस चैन से जीने तो देगा ही नहीं, अतः क्यों न एक बार में आरपार का निर्णय कर लिया

जाए।

दोनो भाइयों के पास मथुरा जैसी राजधानी में घूमने के लिए ढंग के कपडे नहीं थे। अतः पहला हमला कंश के धोबी के यहाँ किया गया ।

धोबी की हत्या करके कृष्ण ने कंश को सीधी चुनौती दी और उनके ही अच्छे कपडे ले के चल दिए। अब राम और कृष्ण के पास राजाओं के जैसे वस्त्र थे। अतः कंश के माली ने उन्हें राजकुमार ही समझा। और सम्मानपूर्वक पुष्प हार अर्पित किए। आगे बढने के लिए उन्हें कंश के लिए अनुलेपन तैयार करने वाली युवती अनेकवक्रा कुब्जा मिली। उससे मांगकर कृष्ण ने अनुलेपन लिया और उल्लापन विधान के ज्ञाता होने के कारण उसका शारिरिक कष्ट भी दूर कर दिया।

रात में दोनो भाइयों ने एक भयंकर काण्ड कर डाला। उस खेल प्रतियोगिता के लिए एक विशेष धनुष तैयार किया था। दोनो भाई वहां पहुच गयें। राजसी वेद देखकर कर्मचारियों ने धनुश दिखा दिया। कृष्ण ने प्रतिञ्चा चढाने का प्रयास करते हुए उसे तोड डाला। कंश को इसकी सूचना मिली तो कंश ने रात में आपात बैठक की। तय हुआ कि जब कल प्रातः दोनो भाई खेल के मैदान में प्रवेश करेगे तब हाथी को भडका दिया जायेगा। यदि वे दोनो बच गये तो मल्लयुद्ध में ही उनको मार डालने का प्रयास किया जाएगा।

मथुरा के वार्षिक खेलकूद का उद्घाटन दिवस। प्रातः से ही क्रीडा क्षेत्र खचाखच भर गया था। पुरुष और नारियाँ, बच्चे, किशोर और बढे बूढे लोग महान खेलकूद आयोजन को देखने के लिए एकत्र थे।

जिस समय कृष्ण उस भव्य और विशाल क्रीडक्षेत्र में पहुचें, वहाँ पर कंश उपने विशिष्ट स्थान पर आकर बैठ चुके थे। उनके मन्त्री और अन्य प्रमुख अधिकारी भी उसी दीर्घा में बैठे हुए थे। वसुदेव, नन्द, अक्रूर, अनेक विशिष्ट लोग एक अन्य विशिष्ट दीर्घा में थे। देवकी तथा नगर की अन्य महिलाएं भी मौजूद थीं। मुख्य द्वार प्रशिक्षित हाथी कुवलीयापीड दर्शको का स्वागत कर रहा था। लेकिन इसमें कंश की कुटिल चाल छिपी थी। वहां पर राम और कृष्ण के पहुचते ही महावत नें हाथी को भडका दिया। लेकिन वे दोनो भाई ऐसी स्थतियों में खेलते हुए ही बडे हुए थे। कृष्ण और राम ने हाथी की सूँड को पकडकर ऐंठ दिया और उसका एक एक दांत उखाड लिया। इस प्रकार हाथी तो मारा ही गया, हाथी के लम्बे दातो को हथियार बनाकर महावत शिर भी फोडा।

मल्लयुद्ध उस समय का सबसे प्रमुख खेल था। उस समय के नियमों के अनुसार मल्लयुद्ध अक प्रकार का बिना हथियारों का युद्ध ही था। निर्णय तभी होता था जब एक पक्ष हार मान ले या मारा जाए। उसमें कृष्ण का मुकाबला चारूण के साथ तथा राम का मुकाबला मुष्टिक के साथ था। वे दोनो ही कंश के प्रमुख सेनाधिकारी थे। दोनों ही मल्लयुद्ध में मारे गये और कृष्ण तथा राम विजयी रहें।

कंश की योजना थी कि इस खेल में राम और कृष्ण को मार डाला जायेगा लेकिन हुआ बिल्कुल विपरीत। इस पर कंश अपना संतुलन खो बैठे। उन्होने राम तथा कृष्ण को अनुचित ढंग से सेनाधिकारी मल्लों की हत्या का दोषी माना और दोनो को बन्दी बनाने का आदेश दे दिया। इस पर वसुदेव के समर्थकों ने योजनाबद्ध ढंग से घेराबन्दी कर ली और आदेश का विरोध किया। इस अव्यवस्था के बीच कृष्ण ने अप्रत्याशित ढंग से कृष्ण को ही आसन

से खीच लिया जिससे सभी लोग सकते में आ गये। कंश के भाई सुमाली ने आक्रमण करने का प्रयास किया, लेकिन राम ने कुछ कर पाने से पहले ही उनकी हत्या कर दी। इस बीच कृष्ण भी कंश को प्राणो से मुक्त कर चुके थे। कंश के मरते ही चारो तरफ हाहाकार और अफरा तफरी मच गई। वसुदेव के लोगो ने घेरा मजबूत कर लिया और भीड की भगदड के बीच सारी सुरक्षा ध्वस्त हो गई। इस तरह अप्रत्याशित ढंग से खेल के मैदान में इतना बढा खेल हो गया। और मथुरा की क्रान्ति सफल हुई।

मथुरा की सफल क्रान्ति के बाद वसुदेव और कृष्ण का महत्व बढा। अब तक गोकुल और वृन्दावन में अभावों के बीच पलते हुए कृष्ण और राम को समुचित शिक्षा भी नहीं मिल पाई थी। अब वे मथुरा के राज्य के सर्वोच्च प्रतिष्ठित लोगो में से एक थे। अतः दोनो भाई अवन्तिकापुर में सन्दीपनी आश्रम में अध्ययन के लिए गये। वहाँ भी उन्हें केवल 64 दिनो तक ही अध्ययन का अवसर मिल सका। सन्दीपनि ऋषि के पुत्रों का अपहरण प्रभाष क्षेत्र पश्चिमी समुद्र के जल दस्युयों ने कर लिया था। कृष्ण ने गुरू को दक्षिणा में उनके पुत्रों को वापस लाकर देने का वचन दिया।

कृष्ण और राम नें पश्चिमा समुद्र् (अरब सागर या सिन्धु सागर) में खोज प्रारम्भ की। इसी क्रम में उन्होनें जलदस्यु पञ्तजन्य को मार कर उनका पाञ्चजन्य शंख प्राप्त किया। इसी खोज में वे पश्चिमी समुद्रतट पर स्थित यमलोक में पहुचें। वहां का राजा यम कहलाता था और विवस्वान् का ही वंशज माना जाता था। विवस्वान् के पुत्र मनु के वंशज ही भारत में इक्ष्वाकुवंशीय या सूर्यवंशीय कहलाते थे। यमलोक का शासन बहुत कठोर था। हम जानते है कि पहले लंकानरेश दशग्रीव रावण ने उस देश पर विजयी पाई थी। और कठोर यातना भोग रहे लाखो लोगो को मुक्त करा दिया था। कृष्ण ने अपने गुरु के पुत्रो को वहां से निकाला और चले आये। लौटकर उन्होने सन्दीपनि को उनके पुत्र सौपें और मथुरा लौट आये। हो सकता हो राम और कृष्ण अधिक अध्ययन के इच्छुक हो। लेकिन मथुरा पर मगध नरेश जरासिन्धु का दबाब बढ रहा था। अतः उन्हे स्थिति को देखते हुये अपना अध्ययन छोडकर बीच में ही वापस आना पडा हो।

जैनियों के पुराणो में कुछ अधिक सटीक जानकारी है। किसी कारण से कंश को उनके पिता उग्रसेन ने निकाल दिया था। वसुदेव ने सूरसेन य़ा सौरीपुर में कंश को आश्रय दिया। वसुदेव और मगध सम्राट में मित्रता थी। जब हस्तिनापुर का राजपरिवार आपसी संघर्ष में कमजोर पड रहा था, मगध सम्राट जरासिन्धु ने चक्रवर्ती सम्राट बनने के लिए शक्ति को बढाना प्रारम्भ किया। वसुदेव नें राजा सिंगस्थ को जीतकर उसे भी मगध के अधीन कर दिया। जरासिन्धु ने वसुदेव के कहने पर कंश को सहायता दी। और वे पिता को बन्दी बनाकर राजा बन गये। वसुदेव के उपकारों से दबे कंश उनके साथ अपनी बहन का विवाह कर चुके थे। वसुदेव से विरोध होने पर कंश ने देवकी और वसुदेव को अपने पास अपनी सुरक्षा में रख लिया। वसुदेव और उनकी पत्नी देवकी कंश के किले में एक महल में रहने लगे। कंश ने कृष्ण जन्म के बाद ही उनको वहां से जाने की अनुनति दी।

कृष्ण जन्म के विषय में जैन पुराण एक महत्वपूर्ण सूचना देते हैं। उसके बाद जब वसुदेव कृष्ण को लेकर जा रहें थे। तो गोकुल के

नन्द मृत बालिका को लेकर यमुना में प्रवाहित करने आए बुए थे। वहां वसुदेव ने जीवित बालक नन्द को सौंपा और मृत कन्या लेकर वापस चले गए। यह प्रचारित कर दिया गया कि देवकी ने मृत कन्या को जन्म दिया है।

❖❖ ❖ ❖❖

मथुरा पर 19 आक्रमण तथा द्वारिका की स्थापना

मथुरा की सफल क्रान्ति के बाद उग्रसेन राजा बन गए। उनके लिए कृष्ण ने भव्य सभा मण्डप त्रिविष्टि से आयात किया। लेकिन जरासिन्ध ने शान्ति से उन्हें पहने नहीं दिया। उनकी पुत्रियाँ और कंश की पत्नियाँ जब बिधवा होकर मगध पहुचीं तो जरासिनध के लिए इस स्थिति को सहन कर पाना कठिन था। उन्होने भारी सेना के साथ मथुरा पर आक्रमण कर दिया। कृष्ण ने पहली बार सेनापति के रूप में मथुरा की सेना को नेतृत्व किया और जरासिन्धु को वापस लौटाने के लिए विवश कर दिया। जरासिन्ध ने एक के बाद लगातार 18 आक्रमण किये लेकिन हर बार कृष्ण विजयी रहे।

मगध के साथ युद्धों से त्रस्त मथुरा को ईरान की ओर से भी आक्रमण का सामना करना पडा। तत्कालीन भारत की पश्चिमी सीमा पर यवन क्षत्रियों का शासन था। वे यवन भारतीय क्षत्रीय थे।और नाटकों में पर्दों का प्रयोग शुरु किया था। इसलिए संस्कृत नाटकों में पर्दे को यवनिका कहा जाता है। उन यवनों में कालयवन के नेतृत्व में मथुरा पर आक्रमण किया। जरासन्ध और कालायवन के बीच फंसकर मथुरा की स्थिति असहनीय हो गई थी। कृष्ण ने त्रिविष्टप की सहायता से पश्चिम समुद्र या सिन्धु सागर के तट पर नये दुर्ग द्वारिका का निर्माण कराया और मथुरा के प्रमुख लोगों को उधर भेज दिया।

सभी लोगो को सुरक्षित द्वारिका भेजने के बाद कृष्ण भी कालायवन को चकमा देकर भाग निकले। कृष्ण को खोजने के प्रयास में वीर राजा मुचकुन्द के क्रोध का शिकारा होकर कालायवन भी मारा गया। इस प्रकार परिस्थिति को देखते हुए कृष्ण ने रण छोडकर कहलाना स्वीकार किया और सदा के लिए मथुरा छोडकर द्वारिका बस गये। जैनपुराण जरासन्ध को ही कृष्ण का मुख्य विरोधी प्रतिनायक मानते थे। विष्णु पुराण के अनुसार कालायवन के मारे जाने के बाद सेना भाग खडी हुई और काफी युद्ध सामग्री कृष्ण को मिली। द्वारिका में बसने के बाद शान्ति स्थापित हो गई। वह दुर्ग अजेय था।

अभी कुछ वर्षों में समुद्र के भीतर पुरातत्व विभाग ने खुदाई की है। वहाँ समुद्र में डूबी हुई द्वारिका पता चलता है। एक किले के कुछ अवशेष मिले भी, पर अभी यह निश्चय नहीं हो सका है कि वे अवशेष कृष्ण के किले के हैं या अन्य किसी के किले के। द्वारिका के राजा उग्रसेन ही थे। उग्रसेन के बाद वसुदेव को राजा बनाया गया। शान्ति स्थापना के बाद राम अपने गांव का हालचाल लेने गोकुल वृन्दावन की यात्रा पर गये। अब वे गांव के गोप नहीं द्वारिका प्रमुख सेनानायक थे ब्रज में उनका स्वागत सत्कार हुआ। राम ने वहां दो

मास तक प्रवास किया और शराब पीना सीखा। यह लत उसके बाद उनसे जीवन भर नही छूटी। दो महीने के बाद वे द्वारिका लौट गये। वहां राम का विवाह राजा रेवत की पुत्री रेवती से हुआ और दो पुत्र निशठ और उल्मुक हुए।

कृष्म का विवाह विदर्भ देश की राजकुमारी रुक्मिणी से हुआ था। उस समय विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर थी उसके राजा भीष्मक थे। भीष्मक के पुत्र रुक्मी चेदि नरेश शिशुपाल के मित्र थे। उन्होने अपनी बहन रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ करना तय कर दिया। शिशुपाल के विवाह में जरासंध भी आये थे। कृष्ण भी यादव सेना के साथ पहुंचे थे। कृष्ण और रुक्मिणि एक दूसरे से प्यार करते थे। लेकिन राजाओं के विवाह भी राजनीतिक आधार ही होते थे। जरासन्ध, शिशुपाल और रुक्मी के त्रिगुट ने कृष्ण का प्रस्ताव ध्वस्त कर दिया और रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल के साथ तय़ हो गया।

विवाह के एक दिन पूर्व रुक्मिणी का अपहरण करके कृष्ण द्वारिका की ओर भाग निकले। उस विवाह में आए जरासन्ध, शिशुपाल पौण्ड्रक, दन्तवक्र, विदूरथ आदि राजाओं ने रुक्मिणी की खोज शुरु की लेकिन कृष्ण तो रुक्मिणी को लेकर काफी आगे निकल गये थे। राम के नेतृत्व में यादव सेना ने विरोधियों को रोक लिया। रुक्मी ने कृष्ण का पीछा किया और काफी दूर जाकर उन्हें घेर लिया। कृष्ण रुक्मी को पपाजित कर अपनी प्रेयसी रुक्मिणी के साथ सकुशल द्वारिका पहुँच गए। बलराम भी सेना के साथ द्वारिता पहुँचे। वहाँ श्रीकृष्ण और रुक्मिणी का विवाह सम्पन्न हुआ।

रुक्मिणी के पहले पुत्र प्रद्युम्न थे। जन्म के छठवें दिन ही शम्बर ने उनका अपहरण कर लिया शम्बर की एक पत्नी मायावती कम आयु थी। बढे होने पर प्रद्युम्न से उनका प्रेम हो गया। उनकी सहायता से प्रद्युम्न ने शम्बर को मारने में उन्होने सफलता प्राप्त की और अपनी प्रेमिका मायावती के साथ द्वारिका आ पहुँचे। प्रद्युम्न को उनके अपहरण आदि की जानकारी मायावती ने ही दी थी। प्रद्युम्न का दूसरा विवाह अपने मामा रुक्मी की पुत्री के साथ स्वयम्वर में हुआ। इतना स्पष्ट है कि उस समय ममेरे फुफेरे भाई बहनों के बीच विवाह सामान्य बात थी।

रुक्मिणी के अन्य पुत्रों के नाम चारुदेंष्ण, सुदेष्ण, सुषेण, चारुगुप्त, चारुविन्द और सुचारु थे। उनकी एक पुत्री चारुमती थी। कृष्ण की अन्य सात पत्नियाँ कालिन्दी, मित्राविन्दा, सत्या, सत्यभामा, जम्बावती, भद्रा और रोहिणी थी। कृष्ण के जीवन में मुख्य रूप से पत्नी के रूप में रुक्मिणी की ही भूमिका ही रही है। उस समय़ की सामाजिक परिस्थितियों में से एक अधिक विवाह होना सामान्य बात थी। अतः कृष्ण की आठ पत्नियों का होना सहज स्वीकार्य का स्वाभाविक लगता है। कृष्ण अनेक गुणों के कारण हमारे महानायक हैं। उनको महान कहने के लिए एक पत्नी व्रत सिद्ध करने के लिये प्रयास करना आवश्यक नहीं है।

❖❖ ❖❖

इन्द्रप्रस्थ की स्थापना

लाक्षाग्रब अग्निकाण्ड से बच निकलने के बाद माता कुण्डी के सहित पाण्डव उत्तराखण्ड के सघन वनों की ओर चले गए थे। वहां पर भीम ने हिडिम्ब को मारकर उनकी बहन हिडिम्बा से विवाह

किया जिससे महाबली पुत्र घटोत्कच उत्पन्न हुए। इसी बीच दरिद्र ब्राह्मण के वेश में एक चक्रा नामक नगरी में भीमम ने आतंक बन गए। वकासुर नामक राक्षस को मार गिराया। था। ब्राह्मण वेशधारी पाण्डवों ने इस बीच चित्ररथ गन्धर्व से मित्रता की। यक्ष और गन्धर्व मित्रता उत्तराखण्ड की तराई में बसने वाली सुसंस्कृति जातियाँ थी।

उसी बीच पाञ्चाल नरेश द्रुपद ने अपनी पुत्री कृष्णा (द्रौपदी) के स्वयम्वर का आयोजन किया। इसमें कृष्ण भी आए थे और पाण्डव भी ब्राह्मण वेश में पहुँच गये थे। अर्जुन ने घूमती हुई मछली की आँख को वाण से भेद कर द्रौपदी का वरण किया। वहाँ द्रौपदी ने कर्ण को सूतपुत्र कहकर लक्ष्य भेदने से रोक दिया था। कर्ण को अपमान का घूँट पीना पडा। उन्होंने कहा कि किसी कुल में जन्म तो भाग्य पर निर्भर है, पर पौरुष मेरे अधीन है।

भटकते हुए इस पाण्डवो के इस स्वयम्बर में पाञ्चाल राज्य का आश्रय और द्वारिका राज्य का समर्धन मिला। उस समय तक कृष्ण धर्म, दर्शन और राजनीति में प्रतिष्ठता प्राप्त कर चुके थे। पाण्डव माता कुन्ती के सहित द्रुपद के यहाँ सम्मान पूर्वक रहने लगे। हस्तिनापुर को जब यह ज्ञात हुआ कि पाण्डव जीवित है तब धृतराष्ट्र ने उन्हें बुलवा लिया और हस्तिनापुर में उत्सव मनाया गया। लेकिन आपसी विरोध के कारण राज्य को बाँटना पडा। पश्चिमी कुरु साम्राज्य पाण्डवों को मिला। यमुना के किनारे इन्द्रप्रस्थ नांम से नयी राजधानी स्थापित की गई। द्वारिका और पाञ्चाल के सहयोग से नया इन्द्रप्रस्थ राज्य विकसित होने लगा।

इन्द्रप्रस्थ की स्थापना में कृष्ण का पूरा सहयोग रहा। द्वारिका के बाद वह दूसरा प्रमुख नगर कृष्ण की योजना के अनुसार स्थापित हुआ। इन्द्रप्रस्थ ही वर्तमान नयी दिल्ली की प्राचीनतम नगर है। दिल्ली में एख पुराना किला भी उपेक्षित सा है। उसी स्थान पर पाण्डवों का इन्द्रप्रस्थ माना जाता है। कुछ लोग पाण्डवों का इन्द्रप्रस्थ वर्तमान दिल्ली के यमुना पार क्षेत्र से मानते हैं। जब तक पुरात्तव की खुदाई से कोई प्रमाण न मिले, इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। 51 शताब्दियों मे न जाने कितनी बार तो यमुना नदी में कटाव व धारा परिवर्तन हुआ होगा।

युधिष्ठर ने नई राजधानी इन्द्रप्रस्थ में भी लम्बें समय तक शासन किया क्योंकि उस अवधि में अर्जुन ने 12 वर्षों तक प्रवास लेकर भारत भ्रमण किया और तीन विवाह किए।

इसके बाद सम्राट बनने के लिए युधिष्ठर ने राजसूय यज्ञ किया। इसी क्रम में कृष्ण के साथ मगध जाकर भीम ने सम्राट जरासन्ध का वध किया और इससे मगध पर पाण्डवों का अधिकार हो गया। और उससे अधीन सभी राज्य इन्द्रप्रस्थ साम्राज्य में सम्मिलित हो गये। कृष्ण ने इस प्रकार जरासन्ध से अपना बदला चुकाया। राजसूय यज्ञ में कृष्ण को मुख्य़ प्रतिष्ठा मिली। पाण्डव उनके कृतज्ञ थे। शिशुपाल इस बात को सहन नहीं कर सके। कृष्ण उनकी होने वाली पत्नी को भगा लाए थे। बहुत विवाद बढने पर कृष्ण ने उनका वध कर दिया। उसके बाद राजसूय .ज्ञ सम्पन्न हो गया। तथा युधिष्ठर सम्राट मान लिए गये।

अब हस्तिनापुर छोटा सा राज्य रहा और युधिष्ठर भारत सम्राट हो गये। हस्तिनापुर के राजा धृतराष्ट्र तो नाम मात्र के थे वास्तविक शासन उनके बढे पुत्र दुर्योधन ही थे। युधिष्ठर का बैभव और अपना अपमान वे सह नहीं सके। राजसूय़ यज्ञ से लौटकर उन्होने धृतराष्ट्र

को भडकाने के लिए यह भी कह दिया। कि द्रौपदी ने उन्हें अन्धे का पुत्र कहा था। यद्यपि यह बात असत्य थी। भीम ने उनकी हँसी उडाई थी। उनके मामा शकुनि अब गान्धार के राजा बन चुके थे। वे बढे कूटनीतिज्ञ थे और अजेय जुआरी भी। वे हस्तिनापुर के सलाहकार बन गये। पाण्डवों के सलाहकार कृष्ण भी चतुर कूटनीतिज्ञ थे और योगेश्वर भी। इसके बाद की सारी राजनीति इन्हीं दो के कूटनीतिज्ञों का खेल बनकर रह गई थी। मुख्य बात यह हैं कि कृष्ण योगेश्वर थे और शकुनि जुआरी और शराबी। यद्यपि उन दिनों क्षत्रिय समाज में शराब और जुआ बुरा नही माना जाता था। लेकिन केवल सामाजिक मान्यता मिल जाने से कोई बुराई अच्छे फल तो नही देने लगती। इसके लिए कृष्ण बडे भाई राम का विरोध भी करते थे।

कुछ समय के बाद हस्तिनापुर से द्यूत या जुआ का निमन्त्रँण भेजा गया। क्षत्रियों में युद्ध और द्यूत को समान प्रतिष्ठता प्राप्त थी। दोनो का निमन्त्रण ठुकराया नही जा सकता था। उस ऐतिहासिक द्यूत में पाण्डव अपना सब कुछ हार गए। द्रौपदी को भरी सभा में अपमानित किया गया। कर्ण ने उन्हे पांच पतियों की पत्नी वेश्या कह कर स्वयम् को अपमान का बदला चुकाया। अन्तिम दांव हारने पर पाण्डवों और द्रौपदी को 12 वर्ष का बनवास और एक वर्ष का अज्ञातवास भोगना पडा। उसी समय भीम ने दुर्योधन की जड्घा के खून से द्रौपदी के केश सीचने और द्रौपदी ने तब तक केश खुले रखने की प्रतिज्ञा की।

भारी कटुता के साथ पाण्डवों का वनवास शुरु हुआ। पाण्डवों ने वनवास के प्रथम 6 वर्ष उत्तराखण्ड के वनो में बिताये। प्रारम्भ में ही कृष्ण आकर सुभद्रा और अभिमन्यु को द्वारिका लो गये। तेरह वर्ष तक अभिमन्यु अपने मामा के यहाँ रहें और युद्ध कला सीखी। वनवास के एक वर्ष बाद ही अर्जुन कैलाश पर्वत पर शिव से और उससे भी सबसे आगे त्रिविष्टप या तिब्बत में इन्द्र से संहारक अस्त्र शस्त्र प्राप्त कर ने चले गए। 5 वर्ष तक उस क्षेत्र में रहने के दौरान उन्होनें अनेक संहारक अस्त्र शस्त्रों का प्रशिक्षण प्राप्त किया। गुरु दक्षिणा में अर्जुन ने निवात कवच दैत्यों को पराजित किया। वह पश्चिमी समुद्र का शक्तिशाली द्वीप देश था। लंका नरेश दशग्रीव भी उन्हें पराजित नहीं कर सके थे और मैत्री सन्धि कर ली थी।

उसके बाद अर्जुन ने हिरण्यगर्भ नामक शक्तिशाली राज्य को नष्ट किया वब मध्य एशिया का कोई पर्वतीय राज्य प्रतीत होता है। इन दोनो सफल अभियानों में अर्जुन ने नए नए हथियारो का व्यावहारिक परीक्षण भी कर लिया। कैलास और त्रिविष्टप जैसे उन्नत राज्यों से सैनिक एंव मैत्री सन्धि करके अर्जुन अपने भाइयों के वापस लौट आए। अब तक वनवास के 6 वर्ष पूर्ण हो चुके थे। 4 वर्ष और हिमालय में बिताकर पाण्डव वापस मैदानी क्षेत्र की ओर लौट आए।

वनवास के अन्तिम चरणों में दो घटनांए हुई । अक बार संकट में पडे हुए हस्तिनापुर के राजकुमारों को पाण्डवो ने बचाया। युधिष्ठर की नीति थी कि आपस में लडते समय हम सौ और पाँच हैं। लेकिन बाहरी शत्रु के सामने एक सौ पाँच है। अक बार सिन्धु नरेश जयद्रध ने द्रौपदी को हरण करने का प्रयास किया था। लेकिन पराजित हुए। 12 वर्ष के वनवास के बाद एक वर्ष अज्ञातवास पाण्डवों ने मत्स्यदेश के राजा विराट के यहां नौकरी बिताते हुए बिताया। अन्तिम दिनों में राजा के शाले और सेनापति कीचक की बुरी नजर द्रौपदी पर पडी तो गुप्त रूप से भीम ने उनका वध कर दिया। कीचक बहुत ही

शक्तिशाली सेनापति थे।उनके कारण मत्स्य देश समृद्ध और अजेय बन गया था। इस सूचना से शकुनि को सन्देह हो गया था। कि इस प्रकार कीचक का वध भीम ही कर सकते हैं ।

विराट से पराजित त्रिगर्त नरेश शुशर्मा ने आक्रमण का प्रस्ताव रखा। यदि पाण्डव वहाँ हुए तो सामने आ जाएगे और यदि नहीं हुए तो कीचक के अभाव में विजय मिलना सम्भव है। इस योजना से साथ मत्स्य देश पर त्रिगर्त और कौरव सेना ने आक्रमण कर दिया। मत्स्य की राजधानी विराटनगर वर्तमान पश्चिमी बुन्देलखण्ड अथवा पूर्वी राजस्थान के क्षेत्र में ही कहीं स्थित थी। राजा विराट त्रिगर्त सेना के साथ मुकाबला कर रहे थे। कि दूसरी ओर से कुरु सेना ने आक्रमण कर दिया। इस स्थिति में ही पाण्डवों ने छदम् देश में मोर्चा संभाला और विजयी भी हुए। लेकिन युद्ध को दौरान अर्जुन पहचान लिए गये थे। जबकि वे नारीवेश में थे।इस प्रकार पाण्डवों के पहचाने जाने से कुरु राजकुमार और शकुनि बहुत प्रसन्न हुए लेकिन भीष्म, कृपाचार्य, विदुर आदि से गणना कर घोषणा कर दी कि पाण्डवों के अज्ञातवास और वनवास की तेरह वर्ष की अवधि पूरी हो चुकी है। पर दुर्योधन ने उस बात को नही माना।

विराटनगर में अभिमन्यु का विवाह वहाँ की राजकुमारी उत्तरा के साथ कर दिया। कृष्ण द्वारिका से सुभद्रा और अभिमन्यु को लेकर आ गये थे। विवाह में ही पाण्डवों को दहेज में आधा मत्स्य राज्य भी मिल गया। इसके बाद पाण्डवों का केन्द्र मत्स्य देश बन गया। द्वारिका और पाञ्चाल राज्यों का समर्धन उनको पहले से ही प्राप्त था इस प्रकार पश्चिमी भारत पाण्डवों के प्रभाव क्षेत्र में आ गया था।

❖❖ ❖❖

कुरुक्षेत्र में महाभारत युद्ध

विराट नगर में अभिमन्यु के साथ उत्तरा के विवाह के बाद पाण्डवों समर्थकों की सभा हुई। उसमें आयोजक मत्स्य नरेश विराट पाञ्चाल नरेश द्रुपद, शिशुपाल के पुत्र चेदिनरेश धृष्टकेतु, द्वारिका के सेनापति सात्यिकी तथा पाण्डव, श्रीकृष्ण व राम भी उपस्थित थे। सात्यिकी तथा सहदेव जैसे गरम दल के लोग सीधे युद्ध चाहते थे। जबकि युधिष्ठर और कृष्ण जैसें गम्भीर लोग शान्ति के प्रयास में थे। सर्वसम्मति से तय हुआ कि युद्ध की तैयारी रखते हुए, शान्ति के प्रयास किए जायें। शान्ति वार्ता से राज्य मिल जाए तो ठीक है, अन्यथा युद्ध तो होना ही है।

पाण्डवों के पक्ष में पाण्ड्य, द्वारिता, मत्स्य, पाञ्चाल, चेदि, मगध राज्यों की एक एक अक्षैहणिक सेना एकत्र हो गई। भीम पुत्र घटोत्कच भी अपनी सेना के साथ सातवें नायक बनकर सम्मिलित हो गए। पाण्डवों के पक्ष में यही सात राज्यों की सात अक्षैहिणीं सेनाए थी।

कुरुओं के समर्थन में सिन्धुराज जयद्रध त्रिगर्त नरेश शुकर्मा, यादव सेनापतु कृतवर्मा, पूर्वोत्तर भारत के भगदत्त, अंगनरेश कर्ण आदि की सेनांए थी। कुरु पक्ष में कुल ग्यारह अक्षैहिणी सेना एकत्र हो गई।

उस समय सेना के कुल चार अंग होते थे। अतः चतुरंगुणी सेना कही जाती थी। एक अक्षैहिणिक सेना में 21,870 रथी, इतने ही हाथी 65,610 अश्व तथा एक लाख नौ हजार तीन सौ पचास पैदल सैनिक

होते थे। रथ सेना, गुजसेना और अश्व सेना की सम्मिलित संख्या के बराबर पदाति सेना होती थी। इस प्रकार एक अक्षौहिणी सेना में कुल दो लाख अठारह हजार सात सौ सैनिक होते थे। इस तरह पाण्डव पक्ष में सात और कुरुपक्ष में ग्यारह अक्षौहिणी सेना में सैनिकों की संख्या 39,34,440 थी। कहा जा सकता है कि तत्कालीन भारत वर्ष या वर्तमान दक्षिण एशिया के लगभग चालीस लाख सैनिक दोनो पक्षों की ओर से लडने के लिए तैयार थे।

महायुद्ध की भीषण तैयारी के बाद पाञ्चाल नरेश यज्ञसेन द्रुपद के पुरोहित को दूत बनाकर पाण्डवों ने हस्तिनापुर भेजा। उन्होने पाण्डवों की ओर से उनका राज्य लौटाने की मांग रखी। जो अस्वीकृत हो गई। दुर्योधन और कर्ण का तर्क था कि अज्ञातवास के समय अर्जुन को पहचान लिया गया था। और पाण्डव प्रकट भई हो गये थे। दूत वापस लौट गया। उसके बाद धृतराष्ट्र ने सञ्चय को दूत बनाकर युधिष्ठर के पास भेजा। सञ्चय के शान्ति प्रस्ताव पर युधिष्ठर केवल पाँच गाव लेकर शान्ति के लिए तैयार हो गये। युधिष्ठर ने अविस्थल, वृकस्थल, माकन्दी और वारणावच नामक चार ग्राम और पाँचवा धृतराष्ट्र की इच्छानुसार देने के लिए कहा। ये सभी ग्राम राजधानी हस्तिनापुर के निकट थे। अतः दुर्योधन को न माननना था और न ही माने।

इसके बाद श्री कृष्ण शान्ति प्रयास में लगे रहे। अन्तिम प्रयास के रूप में वह स्वयम् हस्तिनापुर गये। लेकिन उन्हें भी दो टूक उत्तर मिला । सूच्याग्रम नैव दास्यमि बिना युद्धेन केशव। कुन्ती ने भी कृष्ण के द्वारा अपने पुत्रो को सन्देश भेजा। कि यदर्थे क्षत्रिया सूते तस्य कालोअमागतः । अर्थात् जिस उद्देश्य से क्षत्रिय नारी पुत्रो को जन्म देती है, वह समय आ गया है। कृष्ण ने कर्ण को कुन्ती का पुत्र बताकर उन्हे पाण्डव पक्ष में करने का प्रयास किया, पर वे नहीं माने। कुन्ती स्वय़म् कर्ण के पास गयी। लेकिन कर्ण ने कहा कि आपके चुप रहने के कारण ही मुझे सूतपुत्र कहलावाने का अपमान सहना पडा है। अब तो मैं उनका ही साथ दूँगा। जिन्होनें मुझे समाज में सम्मान दिलाया है। फिर भी कर्ण ने वचन दे दिया कि अर्जुन के अतिरिक्त अन्य किसी पाण्डव का वध नहीं करूँगा।

पाण्डू की दूसरी पत्नी माद्री के भाई मद्र नरेश शल्य य़ुधिष्ठर के पास जा रहे थे। रास्ते में दुर्योधन ने उनका स्वागत सम्मान करके अपनी ओर मिला लिया। लेकिन शल्य ने युधिष्ठर को वचन दे दिया। कि अर्जुन कर्ण युद्ध के समय कर्ण को हतोत्साहित करते रहेंगें।

कृष्ण का शान्ति प्रयास विफल हो जाने के बाद युद्ध अनिवार्य था। सेना उपप्लव्य नगर के पास पूरी तरह सन्नद्ध स्थिति में उपस्थित थी। उपप्लव्य मत्स्य राज्य का सीमावर्ती नगलर था जो राजा विराट ने अभिमन्यु तथा उत्तरा का विवाह करते समय दहेज में दे दिया था। अज्ञातवास के बाद पाण्डवों की गतिविधियों का केन्द्र वही बना हुआ था। कृष्ण हस्तिनापुर से सन्धि प्रस्ताव में असफल होकर उपप्लव्य नगर लौटे तो सेना को प्रयाण का आदेश दे दिय़ा गया।

हस्तिनापुर से कृष्ण के वापस हो जाने के 6 दिन बाद ही सेना कुरुक्षेत्र पहुँच गई। हस्तिनापुर में भी इस स्थिति के लिए पहले से ही पूरी तैय़ारी थी। भीष्म के नेतृत्व में कुरुसेना भी पाण्डुसेना के सामने जा डटी। पाण्डु सेना के महासेनापति पाञ्चाल युवराज धृष्टधुम्न बनाए गये। इसके अलावा एक एक अक्षौहिणी सेना का सेनापति भीम,

सहदेव, सात्यकि, द्रुपद तथा यादव महारथी चेकतान को बनाया गया। पाण्डव सेना के सेनापतियों में प्रधान सेनापति के अलावा द्रुपद व शिखण्डी दो पाञ्चाल व भीम चेकितान थे। इससे प्रतीत होता है कि उस सेना में पाञ्चालों को ही प्रधानता थी। उस युद्ध को इसीलिए कुरु पाञ्चाल युद्ध भी कहा जाता है।

देवव्रत भीष्म ने दस दिन तक कुरुसेना का नेतृत्व किया। वे दसवें दिन पाञ्चाल राजकुमार शिखण्डी और अर्जुन के बाणों से घायल होकर गिर पडे। उनके घायल होते ही युद्ध रोक दिया गया। वे दोनो पक्षो के पूज्य थे। उन्नीस दिनों तक युद्ध विराम रहा। लेकिन भीष्म पुनः युद्ध में जाने योग्य स्वस्थ्य न हो सके। तब कर्ण की सलाह पर द्गोणाचार्य को सेनापति बनाया गया। द्रोण के नेतृत्व के तीसरे दिन अर्जुन के पुत्र वीर अभिमन्यु मारे गये। उसके अगले दिन अर्जुन ने जयद्रध का वध किया।

अर्जुन ने अभिमन्यु वध के प्रतिशोध में जयद्रध वध की प्रतिज्ञा की और भारी सुरक्षा व्यवस्था को ध्वस्त करते हुए सूर्यास्त से पूर्व वीरता पूर्वक जयद्रध का वध किया। यह कहानी बाद में कल्पित हुयी कि चिता में प्रवेश के समय पास आ जाने पर अर्जुन ने जयद्रध को मारा। जयद्रथ के वध के अगले दिन सेनापति द्रोण मारे गये। उसके बाद मद्रनरेश शल्य सेनापति बनाए गये और पहले ही दिन मारे गये।

इस प्रकार कुरुक्षेत्र में हुआ भारत का तीसरा महाग्रहयुद्ध कुल अट्ठारह दिनों तक चला । भीष्म के घायल होने के उन्नीस दिनो के युद्धविराम को मिलाकर युद्ध प्रारम्भ होने से अन्त होने तक सैतीस दिन होते हैं अन्त में सेनापति शल्य के मरते ही कुरुसेना भाग खडी हुई। दुर्योधन भी भागकर एक सरोवर में छिप गये। पाण्डवों ने उन्हे खोज निकाला और भीम ने गदा प्रहार से उनकी जांघ तोडकर प्रतिज्ञा पूरी की।

मरणासन्न दुर्योधन को खोजते हुए उनके तीन महारथी वीर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा, कृपाचार्य और कृतवर्मा उनके पास पहुँचे। दुर्योधन ने वहीं गुरुपुत्र अश्वत्थामा को सेनापति नियुक्त किया। उन्होने पाण्डवों के शिविर में घुसकर सोते हुए धृष्टधुम्न, शिखण्डी, द्रोपदी के पाँचो पुत्रों तथा अनेक अन्य लोगो की हत्या कर दी । अश्वत्थामा ने दुर्योधन को जाकर इस बात की सफलता की सूचना दी। तो सुखपूर्वक उन्होने अपने प्राण त्याग दिए। उसके बाद कृपाचार्य हस्तिनापुर , कृतवर्मा द्वारिका तथा अश्वत्थामा व्यास के आश्रम में चले गये। पाण्डवों ने वहाँ पर अश्वत्थामा को खोज निकाला। और घायल कर छोड दिया।

❖❖ ❖❖

युधिष्ठिर का शासन काल

कुरुक्षेत्र का महाविनाश कारी युद्ध समाप्त होने के बाद युधिष्ठिर भारत के चक्रवर्ती सम्राट बन गये। उन्होने अपने मन्त्रीपरिषद् में विदुर को ही प्रधान मन्त्री बनाये रखा। वे धृतराष्ट्र के भी प्रधान मन्त्री थे। वयोवृद्ध सञ्जय को विधि मन्त्रालय मिला। धौम्यमुनि धार्मिक मामलों के मन्त्री बने। वे संकट काल में पाण्डवों के पुरोहित बन गये थे। युवराज का सबसे प्रमुख पद भीम को मिला। इसके अलावा सभी प्रमुख पदों पर पाण्डव रहे। प्रतिरक्षा मन्त्री अर्जुन बने और नकुल को भी सेना की व्यवस्था का प्रभार मिला। सहदेव सम्राट

युधिष्ठिर के साथ विना विशेष दायित्व के मन्त्री बने।

उत्तरायण हो गया था भीष्म के स्वस्थ्य होने के कोई आसार नहीं थे। एक दिन कृष्ण, युधिष्ठिर आदि प्रमुख लोगो की उपस्थिति में भीष्म ने प्राण त्याग दिए। परम्परागत रूप से भींष्म के निधन की तिथि माघ शुक्ल अष्टमी मानी जाती है। भीष्म की मृत्यु के बाद धीरे धीरे शासन प्रसासन व्यवस्था बनने का प्रयास किया गया। कुछ महीनों में स्थिति सामान्य हुई तो अश्वमेथ यज्ञ करने का विचार हुआ। चक्रवर्ती सम्राट के लिए यह आवश्यक कर्तव्य माना जाता था। लेकिन य़ुद्ध में खजाना खाली हो चुका था। महर्षि व्यास ने हिमालय में गढे राजा मरूत्व के खजाने का पता बताया। कृष्ण को हस्तिनापुर में छोडकर युधिष्ठिर स्वयम् अपने भाइयों के साथ गय़े। और अपार धन लेकर लौटे। इसी बीच अभिमन्यु की पत्नी उत्तरा ने परीक्षित को जन्म दिया। परीक्षित के पिता की पीढी में भी कोई जीवित नहीं था। अपनी पीढी का तो वह एक मात्र बालक था ही। उसके जन्म की प्रसन्नता के साथ अश्वमेध महा यज्ञ सम्पन्न हुआ। अश्वमेध की विजय यात्रा में अर्जुन को एक मात्र युद्ध मणिपुर में करना पडा, वह भी अपने पुत्र वभ्रुवाहन से। वे चित्रांदगदा से उत्पन्न हुए थे जो मणिपुर की राजकुमारी थी। अर्जुन की एक और पत्नी नागकन्या उलूपी भी वहीं पर मिली।

युधिष्ठिर के शासन काल के बीस वर्ष बाद धृतराष्ट्र, गन्धारी, कुन्ती और विदुर ने वानप्रस्थ ले लिया था। वन में एक दिन आग में जलकर धृतराष्ट्र, गन्धारी और कुन्ती की मृत्यु हो गई। विदुर ने प्राणायाम के द्वार योगमुद्रा में प्राण त्यागे। उसके तीन वर्ष बाद व्यास ने चार हजार चार सौ श्लोकों में जय नामक इतिहास ग्रन्थ की रचना की। उनके शिष्यों ने उसे बढाकर दस हजार श्लोकों का भारत ग्रन्थ बाद में बनाया। उसके लगभग चार हजार वर्ष के बाद वह चार हजार वर्ष के बाद बढकर एक लाख से अधिक श्लोकों का वर्तमान महाभारत ग्रन्थ तैयार हो सका।

युधिष्ठिर के शासन काल में द्वारिका में ग्रह युद्ध हुआ। वहाँ यादवों के दो प्रमुख गुटों के बीच संघर्ष में अधिकांश प्रमुख लोग मारे गये। यादवों में वृष्णि और भोज दो प्रमुख गुट थे। उनके बीच प्रतिद्वन्दिता पुरानी थी। यह विवाद मथुरा से ही चला आ रहा था।

द्वारिका के विवाद को शान्त करने भारत के प्रतिरक्षा मन्त्री अर्जुन गय़े। लेकिन उन्हें वहाँ पर प्रमुख यादव नेताओं का दाह संस्कार करने का दायित्व निभाना पडा। उसी समय बाग में बैठे हुए कृष्ण भी एक बाण लगने से मारे गये। शोकाकुल अर्जुन ने राजपरिवार की स्त्रियों और राजकीय सम्पत्ति को एकत्र कर राजधानी की ओर प्रयाण किया। उन्होने यदुकुल के बचे खुचे लोगों को कुरुक्षेत्र में बसाया। इन्द्रप्रस्थ सहित यमुना के पश्चिम का बडा क्षेत्र उन लोगों के प्रशासन में दे दिया गया।

इसी मार्ग में अहीर लोगो द्वारा अर्जुन को लूटे जाने का उल्लेख मिलता है। लेकिन इस घटना का क्षेत्र बरेली के पास अहिक्षत्र माना जाता है। द्वारिका के कुरुक्षेत्र य़ा हस्तिनापुर के मार्ग में अहिक्षेत्र कैसे आ गया। यह समझ में नहीं आता है हो सकता है। कि अहिक्षेत्र के विद्रोह की सूचना मिलने पर अर्जुन मार्ग बदलकर उधर चले गये हो या यह घटना कहीं अन्यत्र हुई। अथवा उस घटना का समय कोई और हो सकता है।

युधिष्ठिर ने युधिष्ठिर शक नामक नया सम्वत्सर प्रारम्भ किया

था। उसका आरम्भ इन्द्रप्रस्थ नगर की स्थापना के समय़ किया गया था युदाब्ध या कलि सम्वत् महाभारत युद्ध से आरम्भ होता है। वह विश्व का प्राचीनतम प्रमाणिक सम्वत्सर है। युधिष्ठिर सम्वत् की प्रारम्भ तिथि 3138 इस्वी पूर्व है। कुछ ही कम प्राचीन मैक्सिको के मय सम्वत् क् प्रारम्भ होने का वर्ष 3113 ई.पू. है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मैक्सिको के मय सम्वत् का आरम्भ भारत के युधिष्ठिर सम्वत् 25 में हुआ था।

इसमें दो बातें महत्वपूर्ण लगती हैं। युधिष्ठिर की राजधानी इन्द्रप्रस्थ नगर और इनके राजसूय यज्ञ के सभाभवन का वास्तुकार भी कोई मय ही था। युधिष्ठिर सम्वत् 25 में मैक्सिकों में भी एक मय सम्वत् का आरम्भ होता है। अतः यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है। कि युधिष्ठिर के सहयोग से मय ने मैक्सिको में राज्य स्थापित किया हो। और मय सम्वत् का आरम्भ हुआ होगा।

महाभारत में उल्लेख है कि महाभारत युद्ध के समय कलियुग प्रारम्भ हो गया था। अतः युद्धा कलि सम्वत् के प्रथम वर्ष में हुआ था। यह भी मान्यता है कि युगाब्ध या कलि सम्वत् का आरम्भ युधिष्ठिर सम्वत् 36 में हुआ था। युधिष्ठिर का शासन काल 36 या 62 वर्ष माना जाता है। एक मत के अनुसार कृष्ण का निधन होने पर युधिष्ठिर ने परिक्षित का राज्यभिषेक कर दिया था और हिमालय की यात्रा पर निकल गये थे। दूसरे मत के अनुसार कृष्ण की मृत्यु के बाद भी युधिष्ठिर राज्य करते रहे थे।

महाभारत युद्ध की तिथि 3102 ई0 पूर्व मानी जाती है। इसके पक्ष में युधिष्ठिर सम्वत् और युगाब्ध भी सबसे बडे परिमाण हैं। बाद की राजाओं की वंशावलियाँ भी उसकी पुष्टि करती हैं। लेकिन पुणे के विद्वान डॉ0 पी0 वी0 वार्तिक ने दावा किया है। कि महाभारत युद्ध 16 अक्टूबर 5562 ईस्वी पूर्व प्रारम्भ हुआ था। उस दिन सूर्यग्रहण भी था। अतः तिथि अमावस्या होनी चाहिये। परम्परागत रूप से भी युद्ध का आरम्भ कार्तिक अमावस्या से माना जाता है। जो अक्टूबर में पडना सम्भव है डा0 कार्तिक का आकलन ज्योतिषी गणना पर आधारित है लेकिन उनका आकलन जिन ज्योतिषीय उल्लेखों पर आधारित है, सम्भव है वे बाद के कवियों की कल्पनाँए हो। ऐतिहासिक तिथिक्रम उनका समर्थन नहीं करता है।

❖❖ ❖❖

कृष्णकाल का ऐतिहासिक महत्व

भारतीय इतिहास के कृष्ण काल कई कारणों से बहुत अधिक महत्वपूर्ण है। सबसे बडी बात है कि स्पष्ट रूप से निश्चित तिथिक्रम हमें उसी काल में प्राप्त होता है। प्राचीन इतिहास का काल निर्धारण कृष्ण को आधार मानकर काफी स्पष्ट और विश्वसनीय़ रूप से किया जा सकता है।

इस प्रकार तिथि निर्धारण करने के लिए हमारे पास ठोस आधार हैं। कुरुक्षेत्र का प्रशिद्ध महाभारत युद्ध होने के बाद युधिष्ठिर भारत के चक्रवर्ती सम्राट बने। कृष्ण की मृत्यु के बाद पाण्डव हिमालय में चले गये जहाँ उनकी मृत्यु हो गई। युधिष्ठिर की मृत्यु पर लौकिक युग नामक सम्वत् प्रारम्भ होन का भी उल्लेख किया गया है। प्रशिद्ध

इतिहासकार डा0 व्हूलर इन तीन सम्वतों का उल्लेख करते हैं। लौकिक युग के अधिक प्रमाणिक सन्दर्भ हमारे पास तो उपल्बध नहीं है।, लेकिन युधिष्ठिर शक तथा युगाब्ध का व्यापक प्रयोग होता रहा है। विक्रमादित्य ने शको को पराजित करने के बाद युगाब्ध 3045 में नया विक्रम सम्वत् प्रारम्भ किया। और युधिष्ठिर सम्वत् का प्रयोग बन्द हो गया। युगाब्ध का प्रयोग अभी तक किया जा रहा है।

कृष्ण का ही एक मात्र ऐसा दुर्लभ व्यक्तित्व है जो जन्म से पूर्व ही भारतीय राजनीति को प्रभावित करने लगा था। देवकी वसुदेव के विवाह के बाद ही राजनीतिक समीकरण बदलने लगे थे। घनिष्ठतम् मित्र कंश और वसुदेव परम शत्रु बन गये और कूटनीतिक चालें चली जाने लगी। कृष्ण के जीवन के प्रथम दशक में वृन्दावन ग्राम की स्थापना हुई। द्वतीय दशक का अन्त होते होते मथुरा नरेश कंश मार दिए गये। पाचवें दशक में द्वारिका महानगर की स्थापना हो चुकी थी। सम्भवतः छठवें दशक में ही एक और महान् नगर इन्द्रप्रस्थ की स्थापना की गई जो आज भी दिल्ली के नाम से भारत की राजधानी है।

वह समय भारत में राजनीतिक उथल पुथल का था। हस्तिनापुर के कुरुवंश को केन्द्रीय सत्ता का सम्मान प्राप्त था। लेकिन आन्तरिक कारणों से लगातार निर्बल होती जा रही केन्द्रीय शक्ति के कारण प्रान्तीय शासकों में महत्वाकांक्षायें पनपनें लगीं थी। इसी उथल पुथल के बीच कृष्ण का जन्म हुआ। अत्यन्त विपरीत परिस्थितियों के वाबजूद कृष्ण अपनी योग्यता क्षमता के बल पर धीरे -धीरे भारतीय राजनीति के केन्द्र में आते गये और घटनाचक्र का धुरी बन गये। कृष्ण कभी शासक नहीं बनें लेकिन एक शताब्दी से अधिक समय तक राष्ट्रीय राजनीति के सञ्चालक रहें । उन्होने अजेय युद्ध कौशल और नेतृत्व क्षमता के साथ ही शसक्त चिन्तन से भी राष्ट्र को व्यापक रूप से प्रभावित किया। वंशीवादक कलाकार, महान योद्धा, राजनीतिक सूत्रधार, श्रेष्ठ विचारक और योगेश्वर के रूप में महानायक कृष्ण का व्यक्तित्व अतुलनीय है।

मथुरा की क्रान्ति मे कंश वध के बाद कृष्ण ने कंस के पिता उग्रसेन को ही राजा बनाया। इससे कंश के समर्थक भी विरोध नहीं कर सके। द्वारिका में उग्रसेन के बाद कृष्ण के पिता वसुदेव राजा बने। कृष्ण कभी स्वयं शासक नहीं बने। सत्ता से दूर रहकर वे सबके आदरणीय बने ऑऔर व्यक्तित्व का बहुमुखी विकास कर सके।

महाभारत युद्ध में युधिष्ठिर की विजय में कृष्ण की कुशल रणनीति का बहुत योगदान रहा। कई दृष्टियों से हस्तिनापुर की सेना अधिक शक्तिशाली थी। उसकी सैन्य संख्या युधिष्ठिर पक्ष की तुलना में डेढ गुनी से अधिक थी। उसके सेनापति अधिक अनुभवी और प्रतिष्ठित महायोद्धा थे लेकिन यही शक्ति कुरुपक्ष की सबसे बडी निर्बलता बनकर सामने आयी। कुरुसेना अपने ही भार से पिसकर दब गई। कृष्ण ने युद्ध को पुरातन और नवीन युग के बीच का संघर्ष बना दिया। वह पुरानी पीढी और नई पीढी का संघर्ष बन गया।

कुरुसेना का नेतृत्व देवव्रत भीम कर रहे थे। वे पुराने मूल्यों व पुरानी पीढी के प्रतिनिधि थे। वे राम युग की मर्यादाओं की पुनर्स्थापना के प्रयासरत थे। दिये गये वचन और दी गई प्रतिज्ञा ही उनका धर्म था, भले ही परिणाम कुछ भी हो। भीष्म वयोवृद्धि भी थे, युद्ध नायकों, महानायको के पितामह थे। अतः सभी के लिए सम्मानीय भी थे। प्रतिज्ञा से बन्धी राजनिष्ठा और अपने पौत्रों के

प्रतिमोह के बीच भीष्म सदैव किङ्कर्तव्यविमूढ रहे और स्पष्ट निर्णय कभी नहीं कर सके। युधिष्ठिर का मर्यादा प्रेम भीष्म की सदा कमजोरी बना रहा। वे अर्जुन के प्रति वात्सल्य से भी उबर नहीं पाये। लेकिन प्रतिज्ञा से बन्धी राजनिष्ठा के कारण युधिष्ठिर और अर्जुन के विरुद्ध लडते भी रहे। कर्ण ने भी भीष्म के नेतृत्व में युद्ध करना अस्वीकार कर दिया। इस प्रकार कुरु सेना आन्तरिक विवाद और गरिमा के भार से बोझिल रही।

भीष्म के घायल होने पर द्रोण सेनपति बने। वे युधिष्ठिर आदि के गुरु थे। गरिमा और दुविधा से वे भी पीडित रहे। भीष्म और द्रोण चाहे जितने रणकुशल सेनापति रहे हों, पर जितनी गतिशीलता युवासेनापतियों में हो सकती थी, उसका मुकाबला ये अतिवृद्धि सेना नायक नहीं कर सकते थे। बहुत बाद में अपेक्षाकृत युवाकर्ण को नेतृत्व मिला। लेकिन तब तक काफी क्षति हो चुकी थी। और कर्ण भी पाण्डवों के मामा शल्य के हतोत्साहन के शिकार रहे। सच तो ये है कि कुरुपक्ष में पुरानी पीढी ने सूतपुत्र मानकर कर्ण को कभी आदर की दृष्टि से देखा ही नहीं। यह भी पराजय का मुख्य कारण बना।

दूसरी ओर युधिष्ठिर पक्ष में कृष्ण ने सदैव शक्ति को वरीयता दी। वयोवृद्धि पुरानी पीढी का सम्मान किया गया, पर गरिमा को या किसी अहम् बोझ नहीं बनने दिया गया। उनके पक्ष के यज्ञ सेन द्रुपद अपने पुत्र के अधीन युद्ध करन में कोई आपत्ति नहीं हुई। दूसरी बात यह है कि महासेनापति पाण्डव नहीं था। जिसे भीष्म या द्रोण के प्रति कोई संकोच होता। द्रुपद परिवार उनके विरुद्ध अधिक घातक युद्ध कर सकता था। कृष्ण की आयु अधिक थी। अतः उन्होनें सेनापति तो होना दूर , हथियार तक नहीं उठाया। वे कुशल महारथी अर्जुन का रथ चलाते रहे।

यदि कुरुसेना पहले दिन ही कर्ण को महासेनापति बनाती और भीष्म तथा द्रोण जैसे लोग पूरे मन से उनके नेतृत्व में युद्ध करते तो युधिष्ठिर के लिए कठिनाइयां बढ सकती थी। कर्ण द्रुपद के शत्रु और अर्जुन के प्रबल प्रतुद्वन्दी थे। यद्यपि उसकी आयु भी युधिष्ठिर से काफी अधिक थी, पर पुरानी पीढी की तुलना में कर्ण बहुत गतिशील और तेजस्वी योद्धा थे। पुराना विरोध भाव उन्हें और भी दुर्धर्ष बना रहा था। लेकिन वास्तव में कर्ण को अपने पक्ष के लोगो के द्वारा ही मारा गया, अर्जुन तो केवन निमित्ति बने थे। महारथी योद्धा हार गये, कुशल रणनीति विज. रही।

वास्तव में यह कृष्ण की महानता थी कि वे न ही राजा बने और न ही महाभारत में सेनापति। उनका जीवन संघर्षों में बीता था। और उन्होने परस्पर संघर्ष में उलझे और कमजोर हो रहे भारत का दर्द महसूस किया था अतः उन्होनें भारत के निर्णायक संघर्ष में भारतवर्ष की एकता का स्वप्न देखा और युधिष्ठिर को चक्रवर्ती सम्राट बनाकर उस स्वप्न को साकार भी कर दिखाया। टूटे बिखरे भारत का एकीकरण कृष्ण युग की चरम उपलब्धि है। उपनिषदों के चिन्तन को पूर्णतः भी उसी युग में प्राप्त हुई। महाभारत के महाविनाश के बाद शताब्दियों के बाद शान्ति कल्याण हो सकी जिसमें कला संस्कृति और ज्ञान विज्ञान का विकास सम्भव हो सका।

❖❖ ❖❖

कृष्ण का जीवन दर्शन

योगेश्वर कृष्ण भारतीय इतिहास के महानतम् नायक हैं। इतना महान व्यक्ति उनसे पूर्व न कोई हुआ, न उनके बाद आज तक। कलाकार, राजनीतिज, समाजसेवी और दार्शनिक चिन्तक के रूप में कृष्ण आदर्श महानतम् थे। कृष्ण का जीवन दर्शन उनके जीवन दर्शन से ही समझा जा सकता है। उनका सम्पूर्ण जीवन सामाजिक विकास, क्षमता, प्रगति शीलता, रूढि विरोध, तथा संस्कृति के उन्नयन में ही व्यतीत हुआ।

किशोरावस्था में कदम रखते हुए बालक कृष्ण नें वृन्दावन वासियों को धार्मिक आडम्बर, कर्मकाण्ड और रुढियों से मुक्त कराया। निर्धनता और पिछडे पन से त्रस्त कृष्ण ने इन्द्र पूजा का विरोध करते हुए कहा कि हमारे पास न घर है, न दरवाजे, न खेत न कोई सम्पत्ति। हमें किसी पूजा पाठ की क्या आवश्यकता है। कृष्ण का मानना था कि धार्मिक कर्मकाण्ड धनी लोगो के लिए मनोरंजन और धन प्रदर्शन के साधन हैं। उन्होनें कहा कि पशुपालक बेघर गोपो के लिए गोवर्धन पर्वत ही देवता है। जिसकी वनस्पति से मनुष्य और पशुओं का पेट भरता है अर्थात् निर्धन का धर्म भोजन है, धार्मिक कर्मकाण्ड नहीं।

राजा कंश के बुलाने पर वार्षिक खेल कूद में भाग लेने के लिए कृष्ण और बलराम मथुरा गये। नगर के वैभव को देखकर उन्हें बडी आत्मग्लानि हुई। राजकीय अधिकारियों का जीवन वैभव पूर्ण था और कृष्ण जैसे नागरिकों के पास ढंग के कपडे भी नहीं थे। कृष्ण ने कंश के धोबी पर ढावा बोला और उसके वस्त्र लूट लिए। रात में खेल कूद का समारोह प्रतिष्ठित धनुष तोड डाला और कंश को सीधी चुनौती दे डाली। जब कंश ने उन्हें मारने का षड्यन्त्र रचा तहब कृष्ण ने कुशल रणनीति से कंश को मार गिराया। जब शासक प्रजा की उपेक्षा कर अपना ही धन वैभव बढाने लगे तब लूट और विद्रोही प्रशंसनीय़ हो जाते हैं। यह कृष्ण के जीवन का दूसरा प्रमुख सूत्र् हमें मथुरा क्रान्ति से मिलता है। उस क्रान्ति के बाद कृष्ण ने स्वयम् सत्ता नहीं सम्भाली, कंश के पिता को राजा बना दिया। व्यक्तिगत महत्वाकांक्षा मुख्य लक्ष्य में बाधक बन सकती है, यह कृष्ण ने तीसरा सूत्र बताया। मगध के अट्ठारह आक्रमण के बाद जब कालयवन से भी संघर्ष करन पडा तब कृष्ण ने रण छोड कहलाना स्वीकार किया, युद्ध में होने वाले सर्वनाश को बचाया। स्वाभिमान भी अति की विनाश का कारण है, यह कृष्ण का चौथा प्रमुख जीवन उपदेश कहा जाना चाहिए।

मथुरा छोडकर कृष्ण ने द्वारिका नगर बसाया। उन्होनें सभी राज्यों से मित्रता की नीति अपनायी। त्रिविष्टप के शक्तिशाली इन्द्र तथा अपने निकटवर्ती राज्यों मत्स्य, पाञ्चाल आदि से मैत्री सम्बन्ध बनाया और जहाँ आवश्यकता पडी युद्ध भी किया। प्रेम और शक्ति के सन्तुलित उपयोंग से कृष्ण पूरे भारत में आदरणीय बन गये और द्वारिका प्रमुख राज्य माना जाने लगा। यही सफल विदेशी नीति कहलाई।

इस सबके पीछे कृष्ण का विराट स्वाध्याय और योगमय जीवन था। अध्ययन तो जैसे उनका व्यसन ही था। औपचारिक शिक्षा तो केवल 64 दिन ही उज्जयिनी में सान्दीपनी गुरु के पास प्राप्त की

थी, लेकिन निरन्तर स्वाध्याय ने उन्हें प्रमुख विद्वान का सम्मान दिलाया। कृष्ण ने स्पष्ट किया कि कर्मों में कुशलता ही योग है, समता को ही योग कहते हैं, उचित रूप से भोजन, निन्द्रा, दैनिक कार्य करना ही दुखों को दूर करने वाला योग है। समुचित आचार के साथ प्राणायाम और ध्यान से ही ऐसा सम्भव है।

इसीलिए किसी ने कृष्ण को रोते विलखते नहीं देखा। योगी स्वाध्यायी कृष्ण जीवन भऱ मुस्कारते रहे, सबको हँसना सिखाते रहे। समस्याएं और कठिनाइयाँ कृष्ण के जीवन में भी आयीं, लेकिन योगोश्वर कृष्ण अविचलित रहे। योगी के जीवन में कष्ट और समस्याये तो हो सकती हैं, परन्तु दुःख और चिन्ता नहीं।

कृष्ण स्वयम् अपना परिचय देते हैं - वेदानाम समोवेदोअहम् अर्थात् मैं वेदों में सामवेद हूँ और गायत्री छन्दसामहम् अर्थात् मैं वेद मन्त्रों में गायत्री मन्त्र हूँ। कृष्ण तो नियमित स्वाध्यायी है, महायोगी हैँ। लेकिन सामान्य लोग क्या करें। जिनके पास इतना धन और समय नहीं है, वे निर्धन लोग कैसे काम चलाएं। वैदिक साहित्य विशाल है। तो सामवेद ही पढ लें तो वह कृष्ण की सांस्कृतिक चेतना से जुडा रहेगा। कम से कम आडम्बर पूर्ण धार्मिक कर्मकाण्डो में फंसे रहकर धार्मिक रहने का अंहकार पालने वालों से अच्छा ही रहेगा। । स्वाध्याय और योग का कृष्ण दर्शन ही हमें वास्तविक धर्म से परिचित करा सकता है।

कृष्ण समस्याओं का व्यावहारिक समाधान खोजने पर विश्वास रखते हैं । वे समाधान माँगने के लिए कभी किसी रुढिवादी पुरोहित के पास नही जाते। इसलिए कृष्ण पर सामाजिक अन्याय का कोई आरोप नहीं है।। उन्होने कभी न किसी सीता या लक्ष्मण को घर से निकाला और न किसी शम्बूक की हत्या की। कृष्ण ने बल, बुद्धि और रणनीतिक कौशल से सफलताएं प्राप्त कीं। उचित लगा तो सच्चे सैनिक की तरह रण छोड गये। कृष्ण का जीवन आडम्बर रहित ईमानदार जीवन है। यही कृष्ण की सबसे बडी विशेषता है।

आज हमारे पास कृष्ण का लिखा कोई ग्रन्ध उपलब्ध नहीं है। उनका जीवन ही श्रेष्ठ महाकाव्य है। महाभारत और विष्णु पुराण आदि में उनका जीवन और दर्शन सुरक्षित है। गीता को महाभारत का अंश माना जाता है। यद्यपि वर्तमान समय में उपलब्ध गीता को कृष्ण कालीन पुस्तर मानना कठिन है, फिर भी उसमे कृष्ण के विचार बहुत कुछ सुरक्षित हैं। बाद में महाभारत और गीता में कविकल्पना और चमत्कार, जुडते गये, पर मूल भाव बहुत कुछ यथावत् हैं। निष्काम कर्मयोग कृष्ण के पूरे जीवन में मिलता है। उनका मानना रहा है कि तात्कालिक लाभ हानि का विचार करके कार्य किया गया तो व्यक्तिवाद पनपेगा और समाज व्यवस्था ध्वस्त हो जायेगी। अतः जीवन का एक लक्ष्य, एक दिशा तय करो और उस उद्देश्य को प्रयास करते समय परिणाम की चिन्ता मत करो। यदि इस प्रयास में प्राण भी चले गये तो भी अच्छे उद्देश्य के लिये बलिदान का यश और सन्तोष तो मिलेगा ही।

योगेश्वर कृष्ण जानते हैं कि अहिंसा भई योग का प्रमुख तत्व है। लेकिन उसे किसी सैनिक की कायरता का आवरण नहीं बनने दिया जा सकता है। निजी स्वार्थ के लिए किसी को कष्ट पहुचाना हिंसा है, अनुचित है, अपराध है। किन्तु समाज के लिए युद्ध करना कर्तव्य है, हिंसा भाव नहीं। कृष्ण दर्शन करम सिखाता है, पलायन नहीं। वह समानता सिखाता है, भेदभाव नहीं। इनका योग कर्मयोग है। कृष्ण

की स्पष्ट घोषणा है कि - योगः कर्मसु कौशलम्, समत्वम् योग उच्चते। जिस योग साधना से कर्तव्य कर्मों में कुशलता नहीं प्राप्त होगी और समता का भाव नही आता, वह योग नहीं है। वह तो साक्षात भोग और ढोंग हैं। समाज में वर्ण है कृष्ण भी मानते हैं - परन्तु उनका कहना कि हैं तो, पर गुण कर्म विभागतः। वर्ण गुण कर्मों का विभाग है, ऊँच नींच और भेदभाव के लिए नहीं। कर्म और समता भाव से रहित कोई व्यक्ति धार्मिक हो सकता है। कृष्ण कहते है - कभी नहीं।

कृष्ण ने भारतवर्ष की एकता के लिए सफल प्रयास किया। युधिष्ठर के नेतृत्व में उन्होने राजनीतिक रूप से राष्ट्रीय एकता स्थापित की, लेकिन राजनीतिक स्थाई नहीं होती। साम्राज्य कमजोर पडेगा तो अनेक राज्य बन जाएँगें। ऐसा कृष्ण से पहले भी होता रहा था और उनके बाद भी होता रहा। स्थाई और वास्तविक एकता के लिए तो कुछ और भी आवश्यकता थी। कृष्ण के समय में भी भारत में परस्पर लडने वाले अनेक राज्य थे। लेकिन उनके बीच एकता के कतुछ सूत्र भी थे। पूरे राष्ट्र का एक साझा प्रेरणादायक इतिहास था और पूरे राष्ट्र में सम्मानित प्राचीन साहित्य वेद था। उसके विद्वान पूरे राष्ट्र में आदर पाते थे। राष्ट्र नायक ने उसी सूत्र को पकडा। उन्होनें स्वयम् को सामवेद कहा। उन्होनें प्राचीन इतिहास के संकलन पर बल दिया। उसी समय से पुराणों की रचना प्रारम्भ हुई। बाद में लिखे जाने वाले पुराण साम्प्रदायिक खण्डन मण्डल ममें फंस गये और आडम्बरवादी हो गये। लेकिन प्राचीन पुराणों में इतिहास के संकल्पन की प्रवत्ति स्पष्टतः प्रमुख है। पुराणों में कृष्ण को ही सर्वाधिक महत्व दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि पुराणों की रचना के पीछे कृष्ण की प्रेरणा अवश्य थी और कृष्ण के अनुयायियों ने ही पुराणों की रचना की थी। प्राचीन इतिहास, भूगोल, दर्शन, सामाजिक व्यवस्था आदि जितना व्यवस्थित ढंग से पुराणों में उपलब्ध है, उतना भारत में अन्यत्र कहीं नहीं। इस प्रकार पुराणों में साहित्य और इतिहास का परिचय संकलित कर लिया गया है। अनेक साम्प्रदायिकों क्षेपको के बावजूद पुराण भारतीय संस्कृति के आधार ग्रन्थ बन गये।

इस प्रकार कृष्ण का सबसे बडा जीवन मूल्य है समता भाव। उनका दर्शन है कर्मयोग। भारतीय संस्कृति के मूल तत्व हैं वेद तथा इतिहास। कृष्ण के समय भाषा सामान्य नहीं थी। संस्कृति पूरे राष्ट्र की प्रतिष्ठित भाषा थी। कृष्ण के चिन्तन का सार है समता भाव के साथ कर्तव्य कर्म का निर्वाह और प्राचीन भाषा तथा साहित्य, इतिहास का स्वाध्याय तथा संरक्षण। इसे हमें चाहे तो सांस्कृतिक विकासवाद कह सकते हैं। मूल सिद्धान्त है मूल रूप से जुडे रहकर सभी के विकास का प्रयास करना। वैदिक साहित्य, संस्कृत, भाषा, प्राचीन इतिहास और योग के साथ समता भाव ही कृष्ण दर्शन है।

कृष्ण काल में समा काफी खुला हुआ था। सत्यवती और कुन्ती जैसी महिलाएं विवाह पूर्व गर्भ धारण कर सकती थीं, सन्तान को जन्म भी दे सकती थीं। पुरुषों के समान महिलाओं को भी वहु विवाह का अधिकार था। द्रौपदी अपवाद नहीं थी। अज्ञातवात के समय सैरन्द्री के रूप में भी उन्होने बता रखा था कि उनके पाँच गन्धर्व पति हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय एक नारी के पाँच पति होना भी सहज स्वीकार्य था, निन्दनीय नहीं। ऋषि पुरोहित उस समय भी थे जो समाज का मार्गदर्शन करते थे लेकिन उनमें जडता नही थी

और नियम कठोर नहीं थे। बन्धन ढीले पड जाने से समाज में गतिशीलता आई और अपेक्षाकृत अधिक प्रगतिशील और मुक्त समाज विकसित हुआ।इसी मुक्त वातावरण में उपनिषदों का स्वतन्त्र चिन्तन विकसित हुआ।

लेकिन उन्मुक्त समाज में कुछ बुराइँया पनपने लगीं। कृष्ण कालीन समाज में जुआँ और समाज को सामाजिक स्वीकृति ही नहीं, प्रतिष्ठता भी प्राप्त थी। शासत वर्ग के लिए युद्ध और द्युत समान रूप से सम्मानीय थे। वीर पुरुष तथा द्युत का निमन्त्रण ठुकराना अपमानजनक मानते थे। इस एक बुराई ने समाज का बहुत अहित किया था। कृष्ण के पौत्र के विवाह में कृष्ण के शाले रूक्मी और बडे भाई राम के बीच द्यूत हुआ। उस जुएं में हार जीत को लेकर हुए विवाद में राम ने रुक्मी की हत्या कर दी। उस समय कृष्ण की स्थिति बडी दयनीय हो गई थी एक तरफ उनके भाई थे और दूसरी तरफ उनकी पत्नी के रुक्मणी का भाई। कृष्ण न बडे को नाराज कर सकते थे और न पत्नी का क्रोध झेल सकते थे।

उस समय शराब का प्रचलन भी बहुत था। कृष्ण के बडे भाई राम को भी शराब की लत थी लेकिन कृष्ण जुआँ और शराब को पसन्द नहीं करते थे। वे राम की इस आदत का स्पष्ट विरोध करते थे। द्वारिका का सबसे बडा हीरा था स्यामन्तक मणि। कुछ लोगो का मानना है कि उसी को बाद में कोहिनूर नाम दे दिया गया। राम स्यमन्तक मणि को अपने पास रखना चाहते थे। कृष्ण ने उनके समक्ष शराब छोडने की शर्त रख दी। राम ने उस मणि के स्थान पर शराब को वरीयता दी। मणि अक्रूर के पास रही।

जुआं और शराब के अलावा कुलीनता का आग्रह कृष्णकालीन समाज की तीसरी प्रमुख समस्या थी। प्रशिद्ध महाभारत युद्ध का प्रमुख और प्रत्यक्ष कारण द्यूत क्रीडा बनी। शराब के कारण द्वारिका का ग्रहयुद्ध हुआ। जिसमें यदुकुल का व्यापक विनाश हुआ। कुलीनता के आग्रह ने भी स्थान स्थान पर अनेक समस्यायें खडी की। उच्च कुल न होने कारण एकलव्य को द्रोणाचार्य के गुरुकुल में प्रवेश नहीं मिल सका और प्रतिहिंसा और स्वार्थ में अन्धें द्रोण ने उनका अँगूठा कटवा लिया।

राजा बनने पर यज्ञसेन द्रुपद नें द्रोण को मित्रता को योग्य नहीं माना और यजक कहकर अममानित किया। उस अपमान का बदला लेने का द्रोण ने हस्तिनापुर का राज्याश्रय लिया और द्रुपद को परास्त किया। राजवंश की कुलीनता ने निर्धन विद्वान ब्राह्मण का अपमान किया और संघर्ष की भूमिका तैयार की। भीष्म आदि कुलीन राजपुरुष महारथी कर्ण को जीवन भर सूतपुत्र कहकर अपमानित करते रहे, उनके गुणों को कभी महत्व नहीं दिया।

इसी कुलीनवाद के शिकार स्वयम् कृष्ण भी हुए। सारी योग्यता क्षमता के बावजूद कृष्ण कृष्ण के प्रेमी उन्हें गोप या ग्वाला कहते रहे। कृष्ण की आलोचना करने का और कोई आधार किसी के पास था ही नहीं। अर्थात् उन्हें गोप कहकर ही सम्पूर्ण व्यक्ति को नीचा दिखाना चाहते थे।

कृष्ण की इन सब कुरीतियों के विरूद्ध चिन्तन और आचरण का प्रमाण प्रस्तुत करते रहे। उन्होनें जुआं शराब और कुलीनवाद की स्पष्ट आलोचना की। अपने बडे भाई राम को भी कृष्ण ने जुआं और शराब की लत के लिए क्षमा नहीं किया। उन्होनें सबसे प्रिय अर्जुन से

भी अधिक सम्मान कथित सूतपुत्र कर्ण को दिया। उन्होने कर्ण को युधिष्ठिर पक्ष में लाने के लिए अग्रज होने के कारण उन्हें ही सम्राट बनाने के प्रस्ताव भी रखा। अज्ञात कुल गोत्र की और एक विलासी राजा की कैद में पडी 16000 कन्याओं को अपना संरक्षण देकर समाज में प्रतिष्ठा दिलायी। इस प्रकार जुआं, शराब और जातिवाद या कुलीनता के विरुद्ध अभियान कृष्ण को महान समाज सुधारक भी प्रमाणित करता है।

❖❖ ❖ ❖❖

विद्या - प्रेमी सम्राट परीक्षित्

चक्रवर्ती युधिष्ठिर के बाद परीक्षित् भारत के सम्राट बने। वे अर्जुन के पौत्र और अभिमन्यु के पुत्र थे। अभिमन्यु कृष्ण के भांजे थे, अतः परीक्षित कृष्ण के वंश से सम्बन्धित थे। उन्होने कृष्ण की ही नीतियों का अनुसरण किया और कृष्ण के ही प्रतिरूप माने जाने लगे।

प्रशिद्ध महाभारत युद्ध के समय परीक्षित अपनी माँ उत्तरा के गर्भ में थे।अतः परीक्षित का जन्म वर्ष निश्चित ही है। युधिष्ठिर का शासन काल 36 वर्ष या 62 वर्ष माना जाता है। यह भी सम्भावना प्रतीत होती है कि युधिष्ठिर का शासनकाल 62 वर्ष मानने वालों ने महाभारत से पूर्व इन्द्रप्रस्थ में उनका शासन काल भी सम्मलित कर लिया होगा।

चक्रवर्ती सम्राट परीक्षित को उत्तराधिकारी को विशाल साम्राज्य मिला था। पश्चिम में द्वारिका से पूर्व में मणिपुर तक तथा उत्तर में गान्धार(अफगानिस्तान) से दक्षिण में महासागर तक उनका साम्राज्य विस्तृत था। यह सम्पूर्ण क्षेत्र युद्ध के बाद युधिष्ठिर के साम्राज्य में सम्मिलित हो गया था। परीक्षित ने योग्यता और कुशलता पूर्वक उस विशाल साम्राज्य पर शासन किया। उन्होनें ज्ञान विज्ञान और धर्म दर्शन का विकास करने का भी प्रयास किया।

मोटे तौर पर सम्राट परीक्षित के शासन काल में देश में शान्ति रही। किसी विद्रोह या युद्ध की सूचना हमकों नहीं मिलती है। लेकिन नाग कुल से पुरानी शत्रुता चली आ रही थी। महाभारत युद्ध से पूर्व खाण्डव वन जलाकर इन्द्रप्रस्थ नगरी की स्थापना के समय अनेक नाग लोग उस वन की आग में जलकर मर गये थे। कुछ ही नाग उनमें से जीवित निकल सके थे। अतः नागों ने पाण्डव कुल से सदा ही शत्रुता मानी।

परीक्षित की मृत्यु नागों के द्वारा ही हुई।इस सम्बन्ध में प्रचलित कथाओं में कविकल्पना के साथ धार्मिक अलौकिकता का भी समावेश हो गया है। अतः घटना क्रम को पूर्णतः स्पष्ट रूप से समझ पाना कठिन है। फिर भी ऐसा लगता है कि शिकार खेलते समय किसी दिन वन में अकेला पड जाने पर उन्हें नागों ने घेर लिया और उन्हें जीवित जलाने का प्रयास किया। परीक्षित् तो वहाँ से किसी तरह निकल आए, लेकिन बच नहीं सके और घटना के सातवें दिन उनकी मृत्यु हो गयी। एक मत राजमहल में ही परीक्षित की हत्या की ओर संकेत करता है। लेकिन इसकी सम्भावना कम प्रतीत होती है। परीक्षित के उत्तराधिकारी उनके पुत्र जनमेजय ने जिस प्रकार से पिता की हत्या का बदला लेने के लिए नागों को खोज खोज कर जीवित जलाने के लिए नागयज्ञ की अग्नि प्रज्वलित की, उससे भी

यही ध्वनि निकलती है कि सम्राट परीक्षित को नागों ने जीवित जलाने का प्रयास किया था। जो नगर से दूर वन में ही सम्भव हो सकता है। जनमेजय का नागयज्ञ हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार जयशंकर प्रसाद का प्रमुख नाटक भी है। यह सत्य है कि नाटक इतिहास नहीं होता है, लेकिन यह भी सत्य है कि प्रसाद के नाटक इतिहास के गम्भीर अनुशीलन का ही परिणाम है।

सम्राट परीक्षित का शासन काल 60 वर्ष रहा। इस प्रकार परीक्षित की हत्या 66 वर्ष की आयु में हुई। राज्यभिषेक के समय वे 26 वर्ष के थे। इस प्रकार परीक्षित को अपेक्षाकृति कम आयु में सत्ता मिल गई और उन्होंने दो पीढियों की अवधि में स्वयम् शासन किया। यदि उनके पिता अभिमन्यु महाभारत में मारे नहीं जाते तो युधिष्ठिर के बाद वे सम्राट बनते तथा उनके बाद परीक्षित को शासन मिल पाता। उस स्थिति में परीक्षित का शासनकाल साठ वर्ष से बहुत कम होता।

प्राचीन इतिहास में परीक्षित को महान सम्राट माना जाता है। उन्हें किसी युद्ध या विद्रोह का सामना नहीं करना पडा, अतः उनकी सैनिक कुशलता की परीक्षा नहीं हो सकी। लेकिन इससे यह भी तो स्पष्ट होता है कि उनकी सैन्य शक्ति इतनी सबल और शासन नीति इतनी सफल थी कि उन्हें किसी तरह का सैनिक भय उत्पन्न नहीं हुआ। शकुनि के गान्धार ने विद्रोह का साहस नहीं किया और किसी पडोसी देश ने भी आक्रमण नहीं किया। सम्राट परीक्षित निश्चिन्तता पूर्वक विशाल भारत वर्ष का शासन करते रहे। उनके साम्राज्य को वर्तमान परिस्थिति में भारत के स्थान पर दक्षिण एशिया कहना अधिक उपयुक्त होगा। वे वर्तमान अफगानिस्तान सहित सम्पूर्ण दक्षिण एशिया के सम्राट बने थे। शान्ति व्यवस्था बनाये रखना उनकी प्रमुख उपलब्धि थी।

परीक्षित का महत्व विद्याप्रेमी सम्राट के रूप में अधिक है। युधिष्ठिर के शासन काल में कृष्ण द्वैपायन व्यास ने जय नामक इतिहास ग्रन्थ की रचना की थी। परीक्षित के शासन काल में उसका विस्तार कर भारत नाम दिया गया। मूल पुराण की भी रचना परीक्षित के शासन काल में की गई। पुराण संहिता जय और भारत की अगली कडी थी। पुराण किसी व्यक्ति विशेष की रचना न होकर सामूहिक प्रयास था। देश भर के अनेक विद्वानों ने उसके लिए सामग्री का संकलन किया था।

पुराण को प्राचीनतम विश्वकोष मान जाना चाहिये। पुराण के पांच लक्षण सर्ग, प्रतिसर्ग, मन्वन्तर, वंश और वंशानुचरित हैं। इस प्रकार पुराण भारतीय धर्म, दर्शन और इतिहास का प्रमुख संकलन है। वर्तमान विष्णु पुराण उस मूल पुराण का निकटतम रूप माना जाता है। आधुनिक विद्वान इतिहास की दृष्टि से उसे ही सर्वाधिक प्रमाणिक मानते हैं। उसमें साम्प्रदायिक खण्डन मण्डन भी नहीं है और वैसा धार्मिक आडम्बर भी नहीं है। जिसके कारण पुराणों को सामाजिक समरसता के लिए अभिशाप और हेय माना जाता है।

विष्णु पुराण में कृष्ण का विस्तृत जीवन चरित्र है और काफी विश्वसनीय और ऐतिहासिक है। कृष्ण की तथाकथित रासलीला और अन्यकल्पित आरोपकारी कथायें भी उसमें नहीं है। समकालीन इतिहास को जोडते रहने की परम्परा बनाये रखने के लिए पुराणों की शृङ्खला आरम्भ हुई, लेकिन बाद के पुराण ऐतिहासिक कम और

साम्प्रदायिक अधिक प्रतीत होते हैं। अनेक पुराणों में निर्धारित पांच लक्षण भी नही मिलते हैं।

पूरे राष्ट्र में ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन और विद्वानों के विशाल सम्मेलन में संकलन सम्पादन की योजना परीक्षित की प्रमुख देन है। विभिन्न स्रोतों से कृष्ण से पूर्व का इतिहास भी संकलित किया गया और परवर्ती इतिहास जोडते रहने की परम्परा भी डाली गयी। नैमीसारण्य में चौरासी हजार ऋषियों का सम्मेलन और पुराण संकलन की बात बहुत ही प्रशिद्ध है। इस प्रकार के आयोजनों और यौजनाओं के बावजूद यह कहना स्वयम् को धोखा देना ही कहा जा सकता है कि भारत का प्राचीन इतिहास उपलब्ध नहीं है। हमें केवल सम्राट परीक्षित जैसे इतिहास प्रेमी की परम्परा को आगे बढाने की जरूरत है।

❖❖ ❖ ❖❖

सम्राट जनमेजय और नागयज्ञ

सम्राट परीक्षित की हत्या के पश्चात उनके पुत्र जनमेजय सत्तासीन हुए। उनके तीन भाई श्रुतसेन, उग्रसेन और भीमसेन थे। अत्यन्त दुःखद और तनावपूर्ण वातावरण में जनमेजय का राज्यभिषेक हुआ था। समझा जा सकता है कि चारों भाइयों ने अपने पिता चक्रवर्ती सम्राट परीक्षित की चिता पर ही नाग लोगो को जीवित जला डालने का क्रूर प्रण किया।वह अभियान इतिहास के रक्तरञ्जित प्रष्ठों पर जनमेजय का नागयज्ञ के नाम से अंकित है और अभी तक लोगो के रोंगटे खडे कर देता है।

हम जानते हैं कि नागयज्ञ की प्रष्ठभूमि महाभारत युद्ध से पूर्व इन्द्रप्रस्थ नगर की स्थापना से जुडी हुई है। खाण्डव वन में रह रहे नाग कुल के लोग वन जलाने के समय बडी संख्या में जीवित जल गये थे। उसका बदला नागों ने अर्जुन से पौत्र परीक्षित को जीवित जलाकर ले लिया। उसी हत्याकाण्ड का प्रतिशोध में सम्राट जनमेजय ने अश्वमेध के नाम पर नागयज्ञ आयजित किया जिसके बाद शताब्दियों के लिए अश्वमेध यज्ञ की परम्परा ही समाप्त हो गई।

यदि परम्परा और अश्वमेध यज्ञ की मूल भावना की दृष्टि से देखा जाए तो जनमेजय को उत्तराधिकार में चक्रवर्ती साम्राज्य मिला था। अतः यदि उन्हें अश्वमेध करना भी था तो उसे निर्विघ्न रूप से केवल औपचारिकता पूरी करते हुए सम्पन्न हो जाना चाहिये था, लेकिन उनका तो उद्देश्य ही नागकुल का समूल नाश करना था। यज्ञवेदी में दिन रात भयानक अग्नि धधक रही थी और नाग लोगों को पकड कर उसमें जीवित जलाया जा रहा था। वह वीभत्स नागयज्ञ कई दिनों तक चलता रहा और सैकडो नाग लोग उसमें जीवित जला दिए गये।

कृष्ण और व्यास के अनुयायियों को वह वीभत्स क्रूरता उचित नहीं लगी। उन ऋषियों ने हस्तक्षेप किया और सम्राट से नागयज्ञ रोकने के लिए कहा। उनके प्रयासों से नागयज्ञ समाप्त हुआ और शान्ति स्थापित हुई। नागयज्ञ का परिणाम दूरगामी रहा। नागों की शक्ति सदैव के लिए समाप्त हो गई। विद्रोह की भावना रखने वाले

अन्य लोगों का साहस भी चुक गया। इतने बर्बर और क्रूर दमनचक्र के बाद विद्रोह करने का विचार भी कोई नहीं बना सका।

इससे स्थापित हुई शान्ति का उपयोग ज्ञान विज्ञान और धर्म दर्शन के विकास में किया जा सका। उपनिषदों के रूप में प्रखर अध्यात्म दर्शन और पुराणों के रूप में अन्य लौकिक विद्याओं इतिहास - भूगोल और सामाजिक जानकारियों का संकलन सम्पादन चलता रहा। इसी के साथ सूत्रशैली में व्यवस्थित दर्शन ग्रन्थों का भी प्रणयन हुआ। उनमें वैशेषिक के नाम से कणाद का परमाणु दर्शन और अष्टांग योग के रूप में पतञ्जलि का परामनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व विकास का उत्कृष्ट साधन भी है। इसका यह आशय नही कि यह समस्त साहित्य जनमेजय के शासन काल की ही उपलब्धि है। निश्चित रूप से यह उपलब्धि कई शताब्दियों तक कायम रही शान्ति और स्थिरता की देन है। क्रूर नागयज्ञ के लिए जाने वाले जनमेजय परम विद्वान, सदाचारी, धार्मिक प्रजावत्सल सम्राट के रूप में भी प्रशिद्ध हैं।

सम्राट जनमेजय के शासन काल के विषय में हमारे पास निश्चित जानकारी नहीं है। एक उल्लेख के अनुसार उनका शासन काल 48 वर्ष तक बताया गया है, जो असम्भव न होते हुए भी परिस्थितियों को देखते हुए अधिक तो प्रतीत होता ही है। परम्परा के अनुसार विष्णु पुराण की रचना सम्राट परीक्षित के शासन काल में हुई थी और उस समय जनमेजय का जन्म नहीं हुआ था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है कि जनमेजय का जन्म परीक्षित की प्रौढ़ावस्था में हुआ होगा। उस युग में कम से कम समाज के उच्च वर्ग की सामान्य आयु सौ वर्ष से अधिक ही प्रतीत होती है। भीष्म, कृष्ण, व्यास, परासर आदि प्रमुख लोग सौ वर्ष से काफी अधिक जीवित रहे। अतः जनमेजय का 48 वर्ष का शासनकाल सम्भव भी हो सकता है।

हम सम्राट जनमेजय के राज्यारोहण का वर्ष निश्चित रूप से ज्ञात कर सकते हैं। महाभारत युद्ध के पश्चात 36 वर्ष तक युधिष्ठिर ने और उनके बाद 60 वर्ष तक परीक्षित ने शासन किया। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में एक प्राचीन ग्रन्थ के हवाले से जनमेजय का शासनकाल 48 वर्ष ले सात मास 23 दिन लिखा है। उसी प्राचीन पुस्तक के हवाले से हरिश्चन्द्र चन्द्रिका और मोहन चन्द्रिका में विक्रम सम्वत 1939 अर्थात् ईस्वी सन् 1882 में प्रकाशित ऐतिहासिक जानकारी से ही सत्यार्थ प्रकाश मे उसे संकलित किया गया है। किसी अन्य स्रोत से कोई अधिक विश्वसनीय जानकारी मिलने तक इसे ही सत्य मानना उचित होगा। यदि कंश वध के बाद कृष्ण ने शासन प्रारम्भ कर दिया होता तो उनका शासन काल सौ वर्ष से अधिक का ही रहता। आधुनिक ऐतिहासिक काल में भी अनेक राजाओं का शासन काल 90 वर्ष के लगभग रहा है।

❖❖ ❖ ❖❖

कौशाम्बी, कोशल और मगध

सम्राट जनमेजय के बाद उनके पुत्र सतानीक सिंहासन पर बैठे। पुराण उनकी प्रशंसा करने में भी उदार रहें हैं। शतानीक के काल मे भी पुराण रचना की परम्परा जारी रही। उन्हें शस्त्र और शास्त्र दोनो

में पारंगत बताया गया है। उन्होनें याज्ञवल्क्य ऋषि से वेदों और उपनिषदों का ज्ञान प्राप्त किया तथा सैनिक ऋषि को अध्यात्मिक गुरु बनाकर आत्मज्ञान प्राप्त किया। उनके समय में उपनिषदों का दर्शन काफी विकसित हो चुका था। और कर्मकाण्ड के स्थान पर अध्यात्म दर्शन को धर्म का मूल तत्व माना जाता था। पुराणों के इतिहास और उपनिषदों के माध्यम से दर्शन को महत्व मिलने लगा तथा अश्वमेध जैसे विराट यज्ञों की परम्परा समाप्त हो गई।

शतानीक के उत्तराधिकारी पुत्र अश्वमेध दत्त थे। यह भी सम्मव है कि शतानीक के पुत्र का जन्म जनमेजय के अश्वमेध या नागयज्ञ के समय हुआ हो। उसके बाद मौर्य काल तक किसी सम्राट ने अश्वमेध यज्ञ नहीं किया। मौर्यों के बाद पुष्यमित्र शुङंग ने ही अश्वमेध यज्ञ किया था। अश्वमेधदत्त के उत्तराधिकारी अधिसीमकृष्ण हुए। उसके बाद निचक्नु भारत के सम्राट बने।

विष्णु पुराण के अनुसार निचक्नु के शासनकाल में ही गंगा नदी की भीषण बाढ़ से हस्तिनापुर नगर नष्ट हो गया। सम्भवतः गंगा नदी धारा बदल कर नगर में बहने लगी थी। अतः उन्होनें कौशम्बी में राजधानी बनाई। कौशम्बी प्रयाग के निकट प्राचीन नगर था। सत्ययुग के अन्तिम चरण में, अर्थात् सूर्यवंशी सम्राट हरिश्चन्द से लगभग एक शताब्दी पूर्व, चन्द्रवंश में प्रशिद्ध राजा कुशाम्ब हुए थे। उन्होनें ही कौशम्बी नगर की स्थापना की थी। अतः चन्द्रवंशी सम्राट निचक्नु ने हस्तिनापुर नष्ट होने पर कौशम्बी को नयी राजधानी बना लिया। उसके बाद गौतम बुद्ध के समय तक प्रमुख राज्य के रूप में कौशम्बी की प्रतिष्ठा बनी रही। पुरात्ववेत्ताओं को कोसम नामक स्थान पर प्राचीन राजधानी कौशाम्बी के अवशेष खुदाई में मिलें हैं।

सम्राट जनमेजय के बाद शतानीक, अश्वमेधदत्त और अधिसीमकृष्ण ने शासन किया।इन तीन राजाओं के बाद निक्चनु सिंहासन पर बैठे। तीन राजाओं का शासन काल एक शताब्दी से पर्याप्त अधिक था। अतः चौथी पीढी में हुए निक्चनु के शासनकाल में हस्तिनापुर नष्ट होने और कौशाम्बी में नई राजधानी बनाये जाने की घटना का समय 29वीं शताब्दी ईस्वी पूर्व माना जा सकता है।

सम्राट युधिष्ठिर के बाद हस्तिनापुर और कौशाम्बी राजधानियों में पाण्डु वंश के तीस राजाओं के शासन का उल्लेख मिलता है। इनमें निक्चनु छठवें राजा थे जिन्होंने कौशाम्बी को राजधानी बनाया। इस वंश में चौहदवीं पीढ़ी में राजा नृचक्षु हुए। उन्हें भी कौशाम्बी को राजधानी बनाने का श्रेय दिया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि नामों के मिलते जुलते होने के कारण यह भ्रम हुआ है।

सम्राट उदयन कौशाम्बी के बुद्धकालीन शासक थे। वे पाण्डु वंश में युधिष्ठिर के बाद 25वीं पीढी में हुए थे। गौतम बुद्ध से सम्बन्ध होने के कारण उनके विषय में पर्याप्त ऐतिहासिक जानकारी उपलब्ध है। वे कुशल शासक और वीर सेनापति थे। तब तक पाण्डु वंश के पास भारत की चक्रवर्ती सत्ता नहीं रह गई थी। और अनेक राज्य स्वतन्त्र हो चुके थे। सम्राट उदयन ने अवन्ति पर विजय प्राप्त की और उसका नाम उदयनपुरी रख दिया। बाद में उसी का अपभ्रंश होकर उसका नाम उज्जैन हो गया। यह मान्यता इतिहासकारों के बीच सामान्यतः स्वीकृत है।

कृष्णोत्तरकालीन इतिहास में पाण्डु वंश के अतिरिक्त कोशल और मगध को काफी महत्व दिया गया है। कोशल का सूर्यवंश सबसे प्राचीन और सबसे लम्बे समय तक अस्तित्व बनाये रखने वाला

राजवंश था। गौतम बुद्ध भी कोशल के सूर्य वंश में हुए थे। सूर्यवंश में राम के के कारण रघुवंश को जो सम्मान मिला, वही महत्व गौतम बुद्ध के कारण शाक्यवंश को मिला।

महाभारत के युद्ध में सूर्यवंश के कोशल नरेश वृहद्बल ने कुरु पक्ष में युद्ध किया था और अभिमन्यु के द्वारा मारे गये थे। उनके बाद उनके पुत्र वृहत्क्षण कोशल नरेश हुए। निश्चित रूप से वे युधिष्ठिर के अधीन प्रान्तीय शासक थे। उनके बाद 25वीं पीढ़ी में राजा शाक्य़ हुए जिनके नाम पर शाक्यवंश प्रशिद्ध हुआ। इसी वंश में राजा शुद्धोधन के पुत्र सिद्धार्थ हुए जो सन्यासी होकर गौतम बुद्ध के नाम से विश्व विख्यात हैं।

इस प्रकार से सूर्यवंश में वैवस्वत मनु से सिद्धार्थ बुद्ध तक सवा सौ से अधिक पीढियों का क्रमबद्ध वर्णन हमारे पास उपलब्ध है। बुद्ध के समकालीन श्रावस्ती नरेश प्रसेनचित् सूर्यवंशी कौशलक और महात्मा बुद्ध के समवयस्क भी थे। प्रसेनजित के बाद हुए श्रावस्ती के शासकों क्षुद्रक, कुण्डक, सुरथ, सुमित्र को भी सूर्यवंशी कोशल नरेश कहा गया है। सभी पुराण इस तथ्य पर एकमत है कि सुमित्र के बाद सूर्यवंश समाप्त हो गया था।

मगध को मिलने के कारण उसका परिवर्ती काल में बना वर्चस्व है। महात्मा बुद्ध के बाद मगध ही राजनीति का केन्द्र बन गया। अतः मगध का इतिहास संकलित करने को अधिक महत्व मिला। जिस प्रकाप सत्ययुग और त्रेता में सूर्यवंश प्रमुख रहा और द्वापर तथा कलियुग में कुरुवंश में महत्व प्राप्त किया, उसी प्रकार बुद्ध के 2500 वर्ष बाद गुप्तवंश के समय तक मगध ही भारतीय राजनीति के केन्द्र में रहा। इसलिए मगध का इतिहास अधिक व्यवस्थित और क्रमबद्ध उपलब्ध है।

कृष्णकालीन मगध नरेश जरासन्ध थे। उनके बाद उनके वंश ने मगध पर एक हजार वर्ष तक शासन किया। उनके वंश में इस अवधि में लगभग दो दर्जन राजा हुए। स्वाभाविक रूप से वे हस्तिनापुर और कौशाम्बी के सम्राटों के अधीन प्रान्तीय शासक रहे होगें। कौशाम्बी की सत्ता कमजोर पडने पर मगध ने स्वतन्त्र अस्तित्व बनाया। जरासन्ध वंश के बाद मगध में कई राजवंशों ने शासन किया और विद्रोहों, क्रान्तियोंऔर सत्ता परिवर्तन के बाद मगध की शक्ति लगाकर बढती ही गई।

जरासन्ध वंश के अन्तिम राजा रिपुञ्जय थे। उनके महामन्त्री सुनिक ने उनकी हत्या कर दी और अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बना दिया। इस प्रकार प्रद्योत का राज्यारोहण महाभारत युद्ध के एक सहस्र वर्ष पश्चात माना जाना चाहिये। मगध और भारत के इतिहास में प्रद्योत के राज्यारोहण का बहुत महत्व है। उसके बाद मगध के राजाओं का शासनकाल स्पष्ट रूप से सुरक्षित है। अतः प्रद्योत के समय से एक एक वर्ष का निश्चित उल्लेख करते हुए सभी राज्यवंशो का इतिहास प्रस्तुत किया जा सकता है। अतः यह भी कहा जा सकता है कि पुराणों के माध्यम से प्राचीन इतिहास संकलन का जो कार्य कृष्णकाल में प्रारम्भ हुआ था, वह प्रद्योत के काल से ही तिथिक्रमपूर्वक क्रमबद्ध ढंग से लिखा जाने लगा। उनके समय से ही भारतीय राजनीति में मगध का उत्कर्ष प्रारम्भ हुआ जो तेजी से उन्नति करते हुए साम्राज्य बन गया। ऐतिहासिक सन्दर्भ में कौशाम्बी

का वर्चस्व तोडने का श्रेय मगध नरेश प्रद्योत को ही दिया जाना चाहिए।

❖❖ ❖ ❖❖

गौतम बुद्ध

मगध में प्रद्योत वंश में कुल पाँच राजा हुए। उन्हें पञ्च प्रद्योत के नाम से जाना जाता है। लेकिन इस वंश की कुल सात पीढियों का उल्लेख मिलता है हम जानते हैं कि बृहद्रथ वंश के अन्तिम राजा रिपुञ्जय का वध उनके मन्त्री सुनिक ने किया था। उन्होनें अपने पुत्र प्रद्योत को राजा बना दिया। प्रद्योत के उत्तराधिकारी बलाक हुए। बलाक के बाद विशाखयूप और उनके बाद जनक नामक राजा हुए। जनक के उत्तराधिकारी नन्दिवर्धन हुए। इस प्रकार प्रद्योत से नन्दिवर्द्धन तक पञ्च प्रद्योत मगध नरेश हुए। नन्दिवर्द्धन के पुत्र महानन्दी थे। सम्भवतः उन्हें शासन का अवसर नहीं मिल सका। प्रद्योत वंश का शासनकाल 138 वर्ष माना गया है। प्रद्योत का राज्यारोहण कलिसम्वत् 1000 के लगभग हुआ। इस प्रकार प्रद्योत वंश का शासन कलि सम्वत् 1138 तक रहा।

उसके बाद मगध शिशुनाग वंश का अधिकार हो गया। शिशुनाग को प्रद्योत वंश के अन्तिम राजा महानन्दी का पुत्र भी कहा गया है। इस वंश में दस राजाओं ने राज्य किया। उनका शासन काला तीन सौ बाँसठ वर्ष बताया गया है। शिशुनाग के उत्तराधिकारी पुत्र काकवर्ण थे। उन्हें कालाशोक भी कहा गया है। काकवर्ण के पुत्र क्षेमधर्मा और उनके पुत्र क्षितीजा थे। उनके उत्तराधिकारी पुत्र विम्बसार हुए जो गौतम बुद्ध के समकालीन थे। उनके बाद अजातुशत्रु हुए। अजातुशत्रु के शासन काल के आठवें वर्ष में अस्सी वर्ष की आयु में गौतम बुद्ध का निर्वाण हुआ।

अजातु शत्रु के पुत्र अर्भक और और उनके पुत्र उदयन हुए। उदयन के पुत्र नन्दिवर्द्धन और उनके पुत्र महानन्दी हुए। वे शिशुनाग वंश के अन्तिम राजा थे। उनके बाद महापद्म नन्द ने बौद्ध विहारों के सहयोग से मगध पर अधिकार कर लिया। महापद्म का राज्यारोहण कलि सम्वत् 1500 में हुआ। महाभारत के बाद महापद्म नन्द से पूर्व मगध में बृहद्रथ वंश के 22 प्रद्योत वंश के 5 और शिशनाग वंश के 10 मिलाकर कुल 37 राजा हुए। इन सैतींस राजाओं ने कुल मिलाकर 1500 वर्ष तक शासन किया। इस प्रकार इनके काल निर्णय में किसी प्रकार के सन्देह या विवाद की सम्भावना नहीं है।

इस स्पष्ट सुनिश्चित तिथि क्रम के अनुसार गौतम बुद्ध का समय स्पष्ट करने का प्रयास करेंगें। यह बात सर्वमान्य है कि महात्मा बुद्ध मगध नरेश बिम्बसार और कौशाम्बी नरेश उदयन के समकालीन तथा कौशल नरेश प्रसेनजित् के समवयस्क भी थे। प्रसेनजित् और बुद्ध कौशल राजवंश की ही विभिन्न शाखाओं में हुए और दोनों का जन्म वर्ष एक ही था।

बुद्ध के समकालीन मगध नरेश विम्बसार से पूर्व शिशुनाग वंश में चार राजाओं का शासन काल समाप्त हो चुका था। यह भी स्पष्ट है कि विम्बसार और प्रसेनजित जैसे समकालीन लोगों का जन्म विम्बसार के पिता या पितामह के शासन काल में हुआ था। अजातुशत्रु के राज्यारोहण के समय बुद्ध की आयु 72 वर्ष थी। उस समय विम्बसार का पचपन साल का शासन समाप्त हुआ। इस प्रकार

बुद्ध की आयु विम्बसार के राज्यारोहण के समय 17 वर्ष थी। अतः बुद्ध के जन्म के समय मगध नरेश विम्बसार के पिता क्षितिजा या क्षेमजीत थे। वे शिशुनाग वंश के चौथे राजा थे।

इस प्रकार बुद्ध निर्वाण के पूर्व मगध में शिशुनाग वंश के पांच राजाओं का शासन काल समाप्त हो चुका था। और छठे राजा अजातुशत्रु के शासन के आठ वर्ष हो चुके थे शिशुनाग के वंश के कुल दस राजाओं का शासनकाल 362 वर्ष था। अतः पाँच राजाओं का समय भी अनुमानित 181 वर्ष लगभग होना चाहिए। उसमें 72 वर्ष पूर्व बुद्ध का जन्म हुआ और आठ वर्ष बाद निर्वाण हो गया। इस गणना के अनुसार महात्मा गौतम बुद्ध ईस्वी पूर्व उन्नीसवीं शताब्दी में थे।

गौतम बुद्ध का जन्म वर्ष कलि सम्वत् 1215 माना जाता है। यह वर्ष ईस्वी पूर्व 1878 होता है। बुद्ध की आयु 80 वर्ष थी। अतः उनका निर्वाण ईस्वी पूर्व 1807 या कलि सम्वत् 1295 में हुआ। इस गणना के अनुसार अजातुशत्रु का राज्याभिषेक बुद्ध निर्वाण के आठ वर्ष पूर्व कलि सम्वत1278 में हुआ होगा। उसके 55 वर्ष पूर्व विम्बसार के राज्याभिषेक 1232 कलि सम्वत् में हुआ।

विश्व के बहुत बडे भाग पर बुद्ध का प्रभाव पडा है। चीन एंव जापान सहित सम्पूर्ण पूर्वी एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया पर अब भी बौद्ध धर्म का बहुत अधिक प्रभाव है। अतः बुद्ध के विषय में हर देश की अपनी मान्यता और किम्वदन्तियाँ प्रचलित हैं। इसी कारण से बुद्ध के समय पर आधुनिक इतिहासकारों में विवाद खडा हो गया है। चीन में बुद्ध का निर्वाण 1221 ईस्वी पूर्व और श्रीलंका में 686 ई. पू. माना जाता है। इन दोनों वर्णनों के बीच 535 वर्ष का अन्तर है। बुद्ध का निर्वाण विलियम जोन्स के अनुसार 1028 ई. पू. डा. फ्लीट के अनुसार 1631 ई. पू. तथा फाह्वान के अनुसार 1015 ई. पू. होना चाहिए। ए. वी. त्यागराज एक शिलालेख के अनुसार 17वीं शताब्दी ई. पू. मानते हैं। इस प्रकार आधुनिक इतिहासकारों के अनुमानों में एक हजार वर्ष के लगभग अन्तर है।

इन अनुमानों का कारण यह है कि गौतम बुद्ध को प्राचीन इतिहास की परम्परा से काटकर स्वतन्त्र रूप से अनुमान लगाने का प्रयास किया गया है। लोगों ने अपनी मान्यता के अनुसार बुद्धकाल का अनुमान कर पूरे भारतीय इतिहास का अलग अलग तिथि निर्धारण करने का प्रयास किया गया है यूनानी के सम्राट सिकन्दर का समकालीन मगध सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य को मान लेने की धारणा से इन अटकलों को और बल मिला। यूनान के इतिहासकारों ने सिकन्दर के समकालीन तीन भारतीय सम्राटों का नाम जेण्ड्रमस, सेण्ड्रोकोटस और सिण्ड्रोकिप्टस बताएं हैं। आधुनिक यूरोपीय इतिहासकारों ने भारतीय पुराणों और बौद्ध ग्रन्थों को वंशावलियों को देखकर अनुमान लगाया कि उपर्युक्त तीनों नाम भारतीय सम्राटों क्रमशः धननन्द, चन्द्रगुप्त मौर्य और बिन्दुसार के लिए लिखे गयें हैँ। यद्यपि इस अनुवाद का प्रमाण तो, दूर अब तक कोई आधार भी नहीं बताया गया है। इसी एक महाभूल के कारण गौतम बुद्ध का काल निर्णय तथा उसके आधार पर पूरे इतिहास का काल निर्णय अटकलों का शिकार हो गया है।

यह भी विचित्र विडम्बना है कि हमें बताया जा रहा है कि कृष्ण पांच हजार वर्ष पूर्व हुए और बुद्ध ढाई हजार वर्ष पूर्व। अब कोई भी यह सोचने के लिए तैयार नहीं हैं। कि कृष्ण से बुद्ध तक कुल पचीस

तीस राजाओं का शासन काल ढाई हजार वर्ष कैसे हो सकता है। स्वयम् सिद्धार्थ गौतम बुद्ध और उनके समकालीन कौशाम्बी नरेश उदयन अपने वंश में महाभारत के बाद 25वीं पीढी में हुए थे इस अवधि में मगध लगभग तीस पीढियाँ हुई थी। इस प्रकार एक पीढी का औसत शासनकाल सौ वर्ष निकलता है। जो पूरी तरह असम्भव है। सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय इतिहास में एक शताब्दी में तीन राजाओँ का औसत शासनकाल मिलता है।

हम यह भी जानतें हैं कि महाभारत युद्ध और सम्राट विक्रमादित्य के जन्म के बीच तीन हजार वर्षों में सौ से अधिक राजा हो गये। इस प्रकार बुद्ध से विक्रमादित्य तक सत्तर से भी अधिक राजाओं ने मगध पर शासन किया। अब यह कैसे माना जा सकता है कि 2500 वर्षों में कुल तीस राजा हुए और बाद के 500 वर्षों में 70 राजा हो गये। चन्द्रगुप्त मौर्य को सिकन्दर का समकालीन मानने पर तो उसके बाद केवल तीन सौ वर्षों में विक्रमादित्य तक साठ से अधिक राजाओं को मानना पडेगा। 2500 वर्षों में 30 और तीन सौ वर्षों में साठ पीढियों का स्वीकार नहीं किया जा सकता है।

❖❖ ❖ ❖❖

बुद्धकालीन भारत

बुद्धकालीन भारतवर्ष में अनेक गणतन्त्र, राजतन्त्र तथा साम्राज्य थे। उस समय चार प्रमुख साम्राज्यों, 16 महाजनपदों और दस गणराज्यों का उल्लेख इतिहास में मिलता है। प्राचीन प्रमुख राज्य महाजनपद के रूप में जाने जाते थे। उन्हीं सोलह महाजनपदों में चार मगध, कोशल, वत्स और अवन्ती को प्रमुख साम्राज्य के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त थी। सूर्यवंश की शाखाओं का शासन प्राचीन राज्य कोशल में चल रहा था। और गौतम बुद्ध के समय तक कोशल राज्य में सवा सौ से अधिक पीढियां राज्य कर चुकी थी। इतनी लम्बी राज्यवंशावली विश्व के किसी राज्य में अविच्छिन रूप से उपलब्ध नहीं है। इसलिए कोशल वंश को प्राचीन भारतीय इतिहास का मेरूदण्ड या आधार स्तम्भ माना जा सकता है।

इस दृष्टि से कोशल के बाद मगध राज्य का महत्व है। महाभारत पूर्वकाल से गुप्तकाल तक मगध का राजवंश भी क्रमबद्ध रूप से हो जाता है। यद्यपि मगध में इस अवधि में अनेक राजवंशों ने शासन किया, फिर भी डेढ सौ से अधिक राजाओं की क्रमबद्ध सूची हमारे पास उपलब्ध है। हम जानते हैं कि हस्तिनापुर के प्रशिद्ध पाण्डव वंश के ही एक राजा नृचक्नु ने कौशाम्बी को राजधानी बनाया था। इस प्रकार हस्तिनापुर के बाद कौशाम्बी भारत की प्रतिष्ठित राजधानी मानी गई है। इसी प्रकार महाभारत युद्ध के बाद महाभारत युद्ध के बाद उभरने वाला एक और प्रमुख राज्य अवन्ति बहुत ही शक्तिशाली और मगध का प्रमुख प्रतिद्वन्द्वी साम्राज्य था।

इनन चार प्रमुख साम्रज्यों कोशल, मगध, वत्स और अवन्ति के बाद सोलह जनपदों में पांचवा प्रमुख जनपद अंग था। यह मगध की पूर्वी सीमा पर स्थित था। अंग राज्य की राजधानी चम्पा थी जो चम्पा नामक नदी के तट पर स्थित थी। चम्पा नदी मगध और अंग राज्यों की सीमा बनाती है। आधुनिक भागलपुर जिले के आसपास का क्षेत्र अंग राज्य या महाजनपद में माना जाता है। हम जानते हैं कि महाभारत काल में कर्ण को अंग का ही राजा बनाया गया था।

महाभारत से पूर्व काल की अंग राज्य की वंशावली उपलब्ध होती है, लेकिन बाद में कर्ण के पुत्र के बाद समाप्त हो जाती है।

काशी भी प्राचीन भारत का प्रतिष्ठित जनपद हो रहा है। इस राज्य की राजधानी वाराणसी थी। शक्तिशाली राज्य काशी का संघर्ष कोशल के साथ भी चलता रहा है।

वज्जि महाजनपद के अन्तर्गत विदेह और निकटवर्ती वैशाली राज्य के क्षेत्र सम्मिलित थे। वैशाली, मिथिला और कुण्डग्राम इसके प्रमुख नगर थे। हम जानते हैं कि मिथिला अति प्राचीन काल से निमि के वंशज जनक राजाओं की राजधानी रही है। प्राचीन काल में इसे विदेह या मिथिला राज्य कहा जाता था। जनक वंशी राजा भी सूर्यवंश की ही एक शाखा निमिवंश में हुए थे। कोशल की तरह मिथिला अति प्राचीन राज्य हैं

मल्ल भी इसी तरह का एक संघ था। कुशीनगर एक पावा इसके प्रमुख नगर थे वर्तमान कसया के आसपास का क्षेत्र इसमें सम्मिलित था।

चेदि भी भारत का प्राचीन राज्य है। महाभारत काल में इस राज्य का उल्लेख मिलता है। उस समय चेदि राज शिशुपाल कृष्ण की एक बुआ के ही पुत्र थे और कृष्ण के हाथों ही मारे गये थे। आधुनिक बुन्देलखण्ड ही प्राचीन चेदि राज्य था। बुद्ध काल में उसकी राजधानी शक्तिमती नगर में थी।

कुरु जनपद का प्राचीन भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। कोशल के रघुवंश की शक्ति समाप्त होने के बाद भारत की केन्द्रीय सत्ता लम्बे समय तक कुरुवंश के पास ही रही। इसकी प्राचीन राजधानी हस्तिनापुर थी। हस्तिनापुर के गंगा की बाढ में नष्ट हो जाने पर पाण्डु वंशियों ने कौशाम्बी को प्रमुख राजधानी बना लिया और युधिष्ठिर की राजधानी के रूप में बसाया गया नगर इन्द्रप्रस्थ प्रान्तीय राजधानी हो गया। बाद में कौशाम्बी वत्स की राजधानी कही जाने लगी और इन्द्रप्रस्थ को कुरु राजधानी का सम्मान मिला। बुद्धकाल तक इन्द्रप्रस्थ में कुरुवंश के ही शासक राज्य कर रहे थे।

पाञ्चाल भी भारत का प्राचीन प्रमुख राज्य रहा है। शक्तिशाली रघुवंश का वर्चस्व तोडकर चक्रवर्ती भारत सम्राट बनने का श्रेय पाञ्चाल नरेश सुदास को ही प्राप्त है। कुरु और पाञ्चाल मूलतः एक ही वंश पुरुवंश की ही शाखांए हैं। सूर्यवंश की शक्ति कम होने के बाद कोशल का महत्व घट गया और कुरु तथा पाञ्चाल राज्य ही भारत के शक्ति केन्द्र बने।

पाञ्चाल प्रदेश मुख्यतः उत्तर पाञ्चाल और दक्षिण पाञ्चाल में विभाजित है। उत्तर पाञ्चाल में मुख्यतः आधुनिक रूहेलखण्ड का क्षेत्र आता है। उसकी राजधानी अहिच्छत्र था। यह नगर वर्तमान बरेली जनपद की आंवला तहसील के अन्तर्गत रामनगर के निकट स्थित था। दक्षिण पाञ्चाल की राजधानी काम्पिल्य थी जो फर्रूखाबाद जिले में स्थित है। प्रसिद्ध कान्यकुब्ज या कन्नौज तथा ब्रह्मावर्त (बिठूर) आदि क्षेत्र इसी के अन्तर्गत आते थे। इसकी पूर्वी सीमा पर वत्स या कौशाम्बी राज्य था।

मत्स्य जनपद कुरु राज्य के दक्षिण तथा यमुना नदी के पश्चिम में स्थित था। वर्तमान भरतपुर, धौलपुर, जयपुर, अलवर आदि क्षेत्र मत्स्य जनपद के भू भाग थे। इसकी राजधानी विराट नगर थी। इसी विराट नगर में पाण्डव भाइयों ने एक वर्ष का अज्ञातवास बिताया था।

शूरसेन जनपद की राजधानी मथुरा थी। इस प्राचीन राज्य में यदुवंश की शाखाओं अन्धक वृष्णियों का शासन काफी समय तक रहा। बुद्धकालीन शूरसेन शासक अवन्ति पुत्र का उल्लेख मिलता है।

अश्मक राज्य दक्षिण भारत में गोदावरी नदी के किनारे पर स्थित था। इस जनपद की राजधानी का नाम पौदन्य था जो बाद में पोतन हो गया। बाद में शक्तिशाली अवन्ति के साम्राज्य में अश्मक भी सम्मलित हो गया।

गान्धार प्रदेश के अन्तर्गत पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त (अब पाकिस्तान) पेशावर, तक्षशिला आदि क्षेत्र आते थे। इस राज्य की राजधानी तक्षशिला थी। बुद्ध के समकालीन गान्धार नरेश पुष्कर सारिन थे। महाभारत काल में भी गान्धार की प्रमुख भूमिका रही थी गान्धार नरेश शकुनि ही हस्तिनापुर की सारी राजनीति के सूत्रधार थे। बुद्ध पूर्व काल में एक प्रमुख गान्धार शासक नग्नजित भी हुए।

कम्बोज महाजनपद गान्धार के उत्तर पश्चिमी क्षेत्र में स्थित था। मोटे तौर पर कहा जा सकता है। कि आधुनिक अफगानिस्तान देश का अधिकांश भाग कम्बोज प्रदेश में अन्तर्गत आता था। उसकी राजधानी राजपुर थी महाभारत में भी कम्बोज राज्य की भूमिका रही थी।

गौतम बुद्ध के समय का भारत राजनीतिक रूप से इन सोलह जनपदों में विभाजित था। इनमें अधिकांश में राजतन्त्र था। लेकिन वज्ज, मल्ल शूरसेन आदि में गणतन्त्र शासन प्रणाली चलती थी। अनुमान किया जा सकता है कि गंगा की बाढ में हस्तिनापुर नगर नष्ट हो जाने पर कौशाम्बी को नई राजधानी बनाने तक पाण्डव वंश की शक्ति कम होने लगी और काशी, कोशल, मगध, अवन्ति आदि का उदय शक्तिशाली राज्यों के रूप में हुआ। इस प्रतिद्वन्दिता का लाभ उठाकर अनेक राज्य स्वतन्त्र हो गये होगें। इस प्रकार भारत की राजनीतिक एकता को आघात लगा औप परस्पर लडने वाले अनेक साम्राज्य खडे हो गये।

❖❖ ❖ ❖❖

महान् विजेता सम्राट उदयन

महात्मा बुद्ध के समकालीन भारत सम्राट उदयन थे। बौद्ध ग्रन्थों में भी उन्हें एक युद्धप्रिय और शक्तिशाली राजा बताया गया है। उनकी राजधानी कौशाम्बी थी। अतः उदयन को कौशाम्बी नरेश और वत्स नरेश भी कहा जाता है। उदयन सम्राट परीक्षित की की पचीसवीं पीढी में हुए थे। वे शतानीक द्वतीय के पुत्र थे।

संस्कृत साहित्य में सम्राट उदयन धीरोदात्त नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं। महाकवि भास के दो नाटकों स्वप्नवासदत्ता और प्रतिज्ञायौगन्धरायण के नायक उदयन ही हैं। हर्ष के दो नाटक प्रियदर्शनी तथा रत्नावली भी उदयन पर ही हैं। भास के अनुसार उदयन की मां विदेह की राजकुमारी थीं। वृहत्कथामञ्जरी तथा कथासरित्सागर में भी उदयन के विषय में महत्वपूर्ण जानकारियाँ मिलती हैं।

सम्राट उदयन ने अनेक विवाह किये थे। समकालीन सभी प्रमुख राजवंशों की कन्याओं से उन्होनें विवाह किया था। अवन्तिनरेश महानरेश की पुत्री वासवदत्ता के साथ उदयन ने विवाह उनका अपहरण करके किया था। मगध के तत्कालीन शासक दर्शक की पुत्री

पद्मावती से भी उन्होनें विवाह किया था। अंग के राजा दृढवर्मन की पुत्री से भी उनका विवाह हुआ था। उनकी एक और पत्नी मागन्दीय का भी उल्लेख मिलता है।

हम निश्यचपूर्वक यह कह पाने की स्थिति में नहीं हैं कि सम्राट परीक्षित से सम्राट उदयन तक पचीस पीढियों और लगभग बारह शताब्दियों तक भारत की चक्रवर्ती सत्ता उसी वंश के पास बनी रही, परन्तु उदयन को महान सम्राट माना गया है। इतना निश्चित है कि उदयन अपने समय में भारत के सबसे शक्तिशाली सम्राट थे तथा भारत का बहुत बडा भूभाग उनके साम्राज्य में सम्मिलित था। उदयन के मन में भरतवंश के प्राचीन गौरव के अनुकूल चक्रवर्ती सत्ता स्थापित करने की महत्वाकांक्षा भी थी। उनके विजय अभियान का तथ्यात्मक और प्रमाणिक उल्लेख कथा सरित्सागर और प्रियदर्शिका में मिलता है। काशी नरेश ब्रह्मादत्त आरुणि ने बिना युद्ध के ही उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

दिग्विजय अभियान में उदयन ने पूर्व में बंग और कलिंग दक्षिण में चोल तथा कोल, पश्चिम में म्लेच्छ व तुरुष्क तथा पारसीक व हूण राज्यों पर भी विजय प्राप्त की थी। विदेह व चेदि राज्यों पर भी उन्होनें विदेह फताक फहरायी थी। उन्होनें अवन्ती को जीतकर उसकी राजधानी उदयनपुरी नाम से स्थापित की जो बाद में अपभ्रंश होकर उज्जैन कहलायी।

इससे स्पष्ट है कि सम्राट उदयन का साम्राज्य उनके बाद के किसा भी साम्राज्य से विशालता से कम नहीं था। इस विशाल साम्राज्य के निकट तत्कालीन मगध बहुत ही छोटा और महत्वहीन राज्य ही प्रतीत होता है। सम्भव है कि प्रतीकात्मक रूप में ही सही, मगध नरेश भी उसकी प्रभुसत्ता स्वीकार करते हों और युद्ध की आवश्यकता ही न पडी हो इस प्रकार उदयन पुरुवंश या कुरुवंश के अन्तिम सम्राट थे। उनके पश्चात चार पीढियों बाद ही यह प्राचीन राजवंश इतिहास के पन्नों में खो गया। मगध नरेश दर्शक की पुत्री से उदयन का विवाब हुआ था, यह तथ्य महत्वपूर्ण ऐतिहासिक संकेत देता है। उदयन के समकालीन मगध नरेश विम्बसार थे। विम्बसार के बाद उनके पुत्र अजातशत्रु मगध के शासक बनें। दर्शक अज्ञात शत्रु के उत्तराधिकारी मगध नरेश थे। दर्शक की पुत्री की आयु उदयन से बहुत कम होनी चाहिये। एक प्रौढ़ या वृद्ध सम्राट उदयन के साथ दर्शक ने अपनी पुत्री का विवाह राजनीतिक मजबूरीवश ही किया होगा। ऐसा प्रतीत होता है कि मगध पर उदयन के आक्रमण से भयभीत होकर ही दर्शक ने अपनी उनको अपनी पुत्री देकर सन्धि कर ली होगी। सम्राट उदयन की दिग्विजय और मगध के साथ उनके विवाह सम्बन्ध के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए निर्विवाद रूप से उन्हें भारत का चक्रवर्ती सम्राट कहा जा सकता है।

सम्राट उदयन ने भरतवंश का गौरव पुनः स्थापित करने में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली थी। तत्कालीन भारत में मगध, अवन्ती और कौशल ही उसके प्रबल प्रतिद्वन्दी साम्राज्य थे। रत्नावली में उल्लेख है कि वत्स नरेश उदयन ने कोशल पर भी विजय प्राप्त की थी और स युद्ध में कौशल नरेश मारे गये थे। कुछ इतिहासकारों का मत है कि उदयन के साथ युद्ध में मारे गये कोशल नरेश विडूडभ या विरूद्धक हो सकते थे वे कोशल नरेश प्रसेनजित के उत्तराधिकारी पुत्र थे। राजा प्रसेनजित गौतमबुद्ध के समवयस्क थे। एक अवसर पर

उन्होनें कहा था कि भगवन बुद्ध भी कौशलक हैं और मैं भी कौशलक हूँ। वे भी अस्सी वर्षीय़ और मैं भी अस्सी वर्षीय हूँ।

उसी अवसर पर जब प्रसेनजित बुद्ध से मिलने गये हुए थे, उनके पुत्र ने विद्रोह कर सत्ता हथिया ली। यह सूचना पाकर प्रसेनजित सहायता के लिए मगध गये लेकिन राजधानी राजगृह पहुँचने से पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गई। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इस सम्भावना पर भी विचार किया जाना चाहिए कि सम्भव है, कोशल पर विजय प्राप्त करने के लिए रणनीति के रूप में उदयन ने भी विद्रोह को समर्थन दिया और मगध नरेश अजातशत्रु और कोशल नरेश प्रसेनजित के बीज सन्धि न होने देने के लिए ही राजगृह के मार्ग में कोशल नरेश प्रसेनजित की हत्या करा दी गई हो।

इस प्रकार सैन्य बल और कुशल रणनीति का सहारा लेकर सम्राट उदयन ने अपने सभी प्रतिद्वन्दियों पर सफलता पूर्वक अंकुश लगाया तथा भारत में एकक्षत्र सम्राज्य स्थापित करने के बाद राष्ट्र की उत्तरी पश्चिमी सीमा के विदेशी राज्यों पर भी विजय पताका फहराई। इन सफलताओं के प्रकाश में उदयन को भारत के महान पराक्रमी विजेता सम्राटों में गिना जाना चाहिए आवश्यकता है कि इतिहासकार सम्राट उदयन का उचित मूल्याकंन करें। इसे आश्चर्य ही कहा जा सकता है कि आधुनिक इतिहासकार उन सभी की उपेक्षा करने का प्रयास करते हैं जिन्हें भारतीय परम्परा में गौरवपूर्ण स्थान दिया गया है।

उदयन की राजधानी कौशाम्बी का अत्याधिक व्यापारिक महत्व भी था। यह विदिशा होते हुए उज्जैन जाने के मार्ग में पडता था। उनके साम्राज्य में साहित्य, कला, कौशल और उद्योग व्यापार की भी उन्नति हुई। इसे केवल दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि पुरातत्व विज्ञान अभी तक उदयन से सम्बन्ध रखने वाला कोई महत्वपूर्ण प्रमाण नहीं खोज सका है। आधुनिक इतिहासकारों द्वारा उनकी उपेक्षा किए जाने का यह भी महत्वपूर्ण कारण है। यदि कुछ पुरातात्विक लेखों को खोज लिया गया होता तो उदयन की गणना भी भारत के महान सम्राटों में की जाती।

सम्राट उदयन का समय निर्धारित करने के लिए हमारे पास कोई प्रत्यक्ष आधार नहीं है। हमारे पास मगध राजवंश का शासनकाल ही उपलब्ध है। पुराणों में कोशल और कौशाम्बी के राजाओं के नाम भी मिलते हैं, लेकिन शासनकाल नहीं। इसलिए हमें उदयन का समय निर्धारित करने के लिए भी मगध वंशावली का ही आश्रय लेना पडेगा। उदयन के समकालीन मगध के शासक विम्बसार, अजातशत्रु और दर्शक थे। मगध तिथिक्रम के अनुसार ये तीनों शासक युगाब्ध की तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी में हुए।

गौतम बुद्ध उदयन के शासनकाल में 44 वर्ष की आयु में कौशाम्बी आये थे। गौतम बुद्ध की मृत्यु अजातशत्रु के शासनकाल के आठवें वर्ष में हुई थी। उसके बाद अजातशत्रु के उत्तराधिकारी दर्शक की पुत्री से उदयन ने विवाह किया था। अतः उदयन गौतम बुद्ध काफी समय बाद तक भी जीवित रहे थे। अजातशत्रु ने लगभग तीस वर्ष शासन किया था। अतः अजातशत्रु की मृत्यु के बुद्ध के निधन के लगभग 22 वर्षों बाद अथवा बुद्ध के कौशाम्बी प्रवास के लगभग 58 वर्ष बाद हुई। इसका अर्थ है कि उदयन का शासनकाल भी काफी लम्बा रहा। इस प्रकार कहा जा सकता है कि उदयन का समय युगाब्द या कलि सम्वत् की तेरहवीं शताब्दी या ईस्वी पूर्व 19वीं

शताब्दी था। सम्राट उदयन का राज्यभिषेक युगाब्द की तेरहवीं शताब्दी के मध्य में तथा मृत्यु चौदहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षो में हुई होगी।

❖❖ ❖ ❖❖

इक्ष्वाकुवंश तथा शाक्यों का विनाश

सम्राट उदयन का समकालीन कोशल नरेश प्रसेनजित थे। महाभारत युद्ध में तत्कालीन कोशल नरेश बृहद्बल ने धृतराष्ट्र पुत्रों की ओर से युद्ध किया था और अर्जुन पुत्र अभिमन्यु द्वारा मारे गये थे। सूर्यवंश में तबतक लगभग एक सौ पीढियाँ हो चुकी थीं। बृहद्बल के बाद उनके पुत्र वृहतक्षण कोशल के राजा बने। उनकी स्थिति चक्रवर्ती सम्राट युधिष्ठिर के अधीन सामन्त की थी। युधिष्ठिर के बाद भी कई पीढियों तक हस्तिनापुर के भरतवंश की चक्रवर्ती सत्ता बना रही। युधिष्ठिर के बाद उनके युवा पुत्र परीक्षित उनके सम्राट बने और साठ वर्ष तक शासन करते रहे।

परीक्षित के बाद जनमेजय, उनके बाद शतानीत प्रथम और उनके बाद अश्वमेधदत्त हस्तिनापुर सम्राट बने। अधिसीमकृष्ण उनके बाद गद्दी पर बैठे। अधिसीमकृष्ण के बाद उनके पुत्र निचक्नु के शासनकाल में गंगा नदी की भीषण बाढ में हस्तिनापुर नगर नष्ट हो गया। तब निचक्नु ने कौशाम्बी को राजधानी बनाया। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उस समय कोशल या मगध केन्द्रीय सत्ता के विरुद्ध शक्ति बढा रहें होगें तथा देश की पश्चिमी सीमा पर खतरा नहीं होगा। इसलिए निचक्नु ने नई राजधानी कौशाम्बी में बनाई और इसके लिए हस्तिनापुर के निकट स्थित इन्द्रप्रस्थ को नहीं चुना। कौशाम्बी से सम्भावित प्रतिद्वन्दियों कोशल, मगध और अवन्ति पर नियन्त्रण रखना अधिक सरल था।

कोशल में वृहदबल की 22वीं पीढी सञ्जय हुए। वंशक्रम में वृहदबल के बाद क्रमशः वृहदक्षण, उरूक्षय, वत्सव्यूह, प्रतिव्योम, दिवाकर, सहदेव, वृहदश्व, भानुरथ, प्रतीताश्व, सुप्रतीक, मरुदेव, सुनक्षत्र, किन्नर, अन्तरिक्ष, सुपर्ण, अमित्रजित, वृहद्राज, धर्मी, कृतञ्जय, रणञ्जय, सञ्जय कोशल नरेश हुए।

स्वतन्त्र और शक्तिशाली राज्य न रहने के कारण कोशल का प्राचीन गौरव धीरे धीरे नष्ट हो गया। कोशल और विदेह राज्य के इक्ष्वाकु और जनकवंश के राजपरिवार के अनेक लोग छोटे छोटे सामन्त बन गये और दोनो प्राचीन राज्य एक प्रकार से समाप्त हो गये। कोशल राजवंश में सञ्जय के बाद पुराणों में शाक्य का नाम आता है। बुद्ध के समय शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु थी जबकि कोशल की राजधानी श्रावस्ती थी। कोशल नरेश प्रसेनजित थे तथा गौतम बुद्ध के पिता शुद्धोधन कपिलवस्तु के राजा थे।

इतना तो निर्विवाद सत्य है कि शाक्य वंश स्वयम् को इक्ष्वाकुवंश के अन्तर्गत ही मानता था। ठीक वैसे ही जैसे राम का रघुवंश इक्ष्वाकुवंश के अन्तर्गत माना जाता है। इक्ष्वाकुवंश ही रघु के नाम पर रघुवंश कहलाया और शाक्य के नाम पर शाक्यवंश कहा गया।

सम्राट उदयन और गौतम बुद्ध के समय अयोध्या राजधानी नहीं रह गयी थी। यह भी सत्य है कि शाक्यवंशी लोग स्वयम् को

उच्चकुलीन इक्ष्वाकुवंशी मानते थे और कोशल नरेश प्रसेनजित को अपनी तुलना में निम्न मानते थे इसलिए जब राजा प्रसेनजित ने शाक्य राजकुमारी से विवाह करना चाहा तो शाक्यों को यह प्रस्ताव अपमानजनक लगाऔर राजनीतिक दबाववश अस्वीकार नहीं कर सके तो शाक्यों ने राजकुमारी के स्थान पर दासी से प्रसेनजित का विवाह कर दिया।

उसी दासी के पुत्र विडूडभू या विरुद्धक हुए जो प्रसेनजित के उत्तराधिकारी नरेश थे। लेकिन जब प्रसेनजित को दासी से विवाह का रहस्य ज्ञात हुआ तो उन्होनें विडूडभू और उनकी माँ से सम्बन्ध तोड लिया। बाद में महात्मा बुद्ध के समझाने पर प्रसेनजित ने पत्नी वासभ खत्रिया और पुत्र विडूडभू को स्वीकार कर लिया। इस घटना का ऐतिहासिक महत्व भी है। विडूडभू ने अपने पिता प्रसेनजित और शाक्यों से बदला लेने के लिए प्रसेनजित की अनुपस्थिति में सत्ता पर अधिकार कर लिया तथा शाक्यों पर आक्रमण कर उनका समूल नाश कर दिया। इस प्रकार इस घटना से प्राचीन इक्ष्वाकुवंश नष्ट हो गया।

अब प्रश्न उठता है कि प्रसेनजित कौन थे? प्रसेनजित के पिता का नाम महाकोशल मिलता है वे बुद्ध के पिता शुद्धोधन के समकालीन श्रावस्ती नरेश थे शब्द महाकोशल नाम से अधिक उपाधि प्रतीत होती है। कोशल नरेश का नाम महाकोशल मूल नाम नहीं लगता। बौद्ध साहित्य में तत्कालीन श्रावस्ती नरेश अग्निदत्त का नाम भी मिलता है। कुछ इतिहासकार अग्निदत्त नाम प्रसेनजित का ही मानते हैं। सम्भव यह है यह नाम प्रसेनजित का पिता महाकोशल का हो। सम्भव है कि अग्निदत्त या महाकोशल ने शक्ति एकत्र कर श्रावस्ती पर अधिकार कर लिया हो और इसी कारण शाक्य को भागकर कपिलवस्तु में जाना पडा हो। राजा शुद्धोदन के बाद तो शाक्यवंश ही समाप्त हो गया और उस राज्य पर प्रसेनजित का का सीधा नियन्त्रण स्थापित हो गया। शुद्धोधन के पुत्र राजकुमार शिद्धार्थ सन्यास लेकर बुद्ध बन गये थे। शिद्धार्थ के पुत्र राहुल भी बुद्ध के संघ में सम्मिलित हो गये थे।

प्रसेनजित ने स्वयम् को कोशलक कहा है। जनपद के आधार पर वे कोशलक थे ही, सम्भवतः इक्ष्वाकुवंश की ही शाखा में रहे हों। इसलिए पुराणों की वंशावली में इक्ष्वाकुवंश में शाक्य राजा शुद्धोदन के बाद प्रसेनजित का नाम आता है। उसके बाद विडूडभ, कुलक, सुरक्ष और सुमित्र नरेश कौशल नरेश हुए। सुमित्र के बाद कोशल राज्य और प्राचीन राजवंश पूरा तरह से समाप्त हो गया। कौशाम्बी के साम्राज्य काल में कोशल का अस्तित्व किसी तरह बना रहा लेकिन मगध के उत्कर्ष के समय वह पूरी तरह इतिहास के पृष्ठो में विलीन हो गया।

प्रसेनजित को पाँच राजाओं के दल का प्रधान कहा गया है। लेकिन उन राजाओं के नाम नहीं मिलते हैं। अधिक सम्भावना यही है कि कौशाम्बी और मगध साम्राज्यों के बीच स्थित छोटे छोटे अनेक राज्यों से संघ बना लिया होगा और उनमें अधिक शक्तिशाली होने के कारण प्रसेनजित को उस संघ का प्रधान चुन लिया होगा। हम जानते हैं कि कौशाम्बी औप मगध साम्राज्यों के बीच स्थित दो प्राचीन प्रमुख राज्यों कोशल और विदेह के टूट जाने पर उनके जनपदों में गणतन्त्रात्मक शासन प्रणाली स्थारपित हो गयी थी। इन गणतन्त्रों के संघ का प्रधान प्रसेनजित को बना लिया होगा।

इस प्रकार चक्रवर्ती साम्राज्य रह चुके कोशल राज्य का अस्तित्व बचाने के लिए सामन्त राज्य से गणतन्त्र तक अनेक उपाय किये गये लेकिन मगध के उत्कर्ष के दौरान कोशल का नाम भी बचाया नहीं जा सका। इस प्रकार शाक्यवंशी शुद्धोदन और श्रावस्ती नरेश प्रसेनजित को कोशल के इक्ष्वाकुवंश का अन्तिम प्रकाश माना जा सकता है। उसके बाद विडूडभ ने तो शाक्यों का क्रूर विनाश करके गणतन्त्रों का समर्थन भी खो दिया और भविष्य में शक्ति सञ्चय की सम्भावना भी समाप्त हो गई। वही समय था जब कौशाम्बी और मगध के बीच भारत के साम्राज्य के लिए निर्णायक संघर्ष शुरु हो रहा था। जिसमें अन्ततः मगध को सफलता मिली। इन दो बडे शक्तिशाली साम्राज्यों के बीच संघर्ष में शक्तिहीन कोशल के लिए कोई महत्वपूर्ण स्थान बन पाना सम्भव नहीं रह गया था। जातकों के अनुसार तो एक बार काशी नरेश ने कोशल को अपने राज्य में मिला लिया था लेकिन फिर कोशल स्वन्त्र हुआ तो प्रसेनजित के पिता के राज्य में काशी के कुछ क्षेत्र भी सम्मिलित थे।

❖❖ ❖ ❖❖

अवन्ति के शासक और उसका महत्व

बुद्धकाल में अवन्ति की स्थिति काफी महत्वपूर्ण मानी जाती है। इतिहासकार तत्कालीन भारत में अवन्ति को चार प्रमुख साम्राज्यों में एक मानते हैं। लेकिन अवन्ति के इतिहास के विषय में कुछ साहित्यिक पुस्तकों पर ही निर्भर रहना पडता है। इसलिए इस सम्बन्ध में बहुत मतभेद भी हैं। साहित्यिक पुस्तकों में अवन्ति के तीन शासकों के नाम चण्ड, पज्जोत तथा महासेन मिलते हैं। आधुनिक इतिहासकारों ने कल्पना के अनुसार तीनों को एक ही व्यक्ति मान लिया और उस प्रद्योत माना है।

बौद्ध साहित्य में पज्जोत नामक अवन्ति नरेश का वर्णन क्रूर, युद्ध प्रिय और महत्वाकांक्षी शासक के रूप में हुआ है। ऐसा माना जाता है कि कि प्रद्योत का पालिभाषा रूप पज्जोत है लेकिन पज्जोत का संस्कृत रूप प्रज्योत् या अन्य कुछ भी तो हो सकता है। संस्कृति नाटक प्रतिज्ञा यौगन्धरायण में कौशाम्बी सम्राट उदयन के समकालीन अवन्ति नरेश का नाम महासेन मिलता है। भरतवंशी सम्राट उदयन की ऐतिहासिकता असन्दिग्ध है। उनका विवाह अवन्ति नरेश महासेन की पुत्री वासदत्ता के साथ हुआ था।

प्रद्योत के विषय में यह महत्वपूर्ण है कि मगध की राजवंशावली में प्रद्योतवंस के शासन का उल्लेख मिलता है। महाभारत कालीन जरासन्ध वंश के लगभग दो दर्जन राजाओं के बाद मगध में प्रद्योतवंश के पाँच राजाओं ने शासन किया था। उसके बाद आये शिशुनाग वंश के पाँचवें छठवें राजाओँ के समय गौतमबुद्ध हुए थे। अतः इतना स्पष्ट है कि मगध शासक प्रद्योत और अवन्ति शासक पज्जोत, चण्ड या महासेन अलग - अलग व्यक्ति ही थे, एक व्यक्ति नहीं। हो सकता है कि सम्राट उदयन के लम्बे शासन काल के दौरान अवन्ति में तीन राजा हो गयें। उपयुक्त प्रमाण हो तो तीनो को एक भई माना जा सकता है।

अवन्ति नरेश पज्जोत या प्रद्योत ने अपने आस पास के कुछ दक्षिणी राज्यों पर विजय प्राप्त की थी। मगध के शासक अजातुशत्रु ने भी उनके भय से राजधानी नगर राजगृह की किलेबन्दी कराई थी। प्रद्योत का शासन काल 23 वर्ष माना गया है। उसके बाद उनके छोटे पुत्र पालक राजा बने। इस बात का अवरोध उनके भतीजे अजक, आर्यक और सूर्यक ने किया। इस विद्रोह को दबाने में कौशाम्बी नरेश उदयन ने सहायता दी थी। इससे भी उदयन की प्रमुखता स्पष्ट होती है। पालक का शासन काल 24 वर्ष रहा उसके बाद आर्यक ने 21 वर्षों तक शासन किया।

संयोगवश अब तक कहीं भी अवन्ति की राजवंशावली प्राप्त नहीं हो सकी है। महभारत काल से बुद्ध काल तक तथा उसके बाद अवन्ति सम्राट विक्रमादित्य तक कोई वंशावली हमारे पास नहीं है। पुराणों में कौशाम्बी, कोशल और मगध की वंशावलियाँ उपलब्ध हैं, लेकिन अवन्ति की वंशावली नहीं मिलती है। इसलिये किसी घटना विशेष का साहित्यिक वर्णन करने वाले ग्रन्थों पर ही निर्भर रहना पडता है। इससे अनुमान होता है कि अतिप्राचीन काल में अवन्ति का राजनीतिक महत्व अधिक नहीं था। अतः उसका वर्णन वत्स, कोशल और मगध साम्राज्यों के विजय अभियान और विवाह सम्बन्धी के सन्दर्भ में ही किया गया है।

अनुमान किया जा सकता है कि प्राचीन काल में अवन्ति राज्य हस्तिनापुर या कौशाम्बी साम्राज्य के अन्तर्गत ही रहा होगा और वहां पर किसी प्रमुख राजवंश के शासन के स्थान पर केन्द्रीय शासन द्वारा नियुक्त सामन्त शासन करते होगें। सम्राट की इच्छानुसार ये सामन्त बदलते रहे और कोई राजवंश स्थापित नहीं हो सका।

कौशाम्बी सम्राट उदयन के बाद भरतवंश की शक्ति कमजोर पडने लगी तो मगध का महत्व बढने लगा। कालान्तर में कौशाम्बी साम्राज्य के विभिन्न राज्यों पर मगध का अधिकार होता चला गया। इसी क्रम में अवन्ति राज्य भी कुछ समय बाद मगध साम्राज्य का अंग बन गया। सम्राट विक्रमादित्य के दो या तीन शताब्दियों पूर्व तक अवन्ति राज्य मगध साम्राज्य का ही अंग बना रहा। मगध के शिशुनाग वंश, नन्द वंश, मौर्य वंश, शुंगवंश, कण्डवंश तथा आन्ध्र सातवाहनवंश के सम्राटों ने अवन्ति के राज्य पर प्रभुत्व बनाये रखा।

वास्तव में अवन्ति या उज्जैन का महत्व सम्राट विक्रमादित्य के कारण ही है। विदेशी शकों को परास्त कर विक्रमादित्य ने उज्जैन को भारत की राजनीतिक और सांस्कृतिक राजनीतिक के रूप में स्थापित कर दिया। बाद में शताब्दियों तक, गुप्त काल के बाद तक उज्जैन का महत्व बना रहा। गुप्तवंशी सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय ने स्वयम् विक्रमादित्य की उपाधि धारण की और उज्जैन को अपने साम्राज्य की दूसरी राजधानी का गौरन भी प्रदान किया। बुद्धकालीन इतिहास में अवन्ति का महत्वपूर्ण उल्लेख होने के कारण यह भी है कि वह बुद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र बन गया था। सम्भवतः इसलिए इतिहासकार अवन्ति को बुद्घकालीन प्रमुख राज्य मानते हैं।

❖❖ ❖ ❖❖

मगध राजवंश और तिथि क्रम

कौशाम्बी सम्राट उदयन प्राचीन पुरुवंश या भरतवंश के अन्तिम प्रतापी शासक थे। उसके बाद कौशाम्बी की शक्ति क्षीण होने लगी

और मगध का प्रभाव बढने लगा। काशी, कोशल, मगध भी अवन्ति साम्राज्य में विलीन हो गये। इस प्रकार बुद्धोत्तरकालीन भारत में मगध साम्राज्य राजनीति का केन्द्र बन गया। इसके अलावा भारतीय इतिहास में मगध साम्राज्य का महत्व तिथि क्रम निर्धारण में भी बहुत अधिक है। मगध राज्य के संस्थापक चेदिराज वसु के पुत्र बृहद्रथ थे। अतः प्राचीनतम मगध राजवंश को बृदद्रथवंश कहा जा सकता है। बृहद्रथ के पुत्र जरासन्ध कृष्ण के समकालीन मगध नरेश थे। वह बृहद्रथ राजवंश पूरी तरह से सुरक्षित हमें उपलब्ध हैं।बृहद्रथ से आन्ध्रवंश तक सभी राजाओं के नाम और शासनकाल स्पष्टरूप से पुराणों में उल्लिखित है। इस प्रकार बृहद्रथ वंश भारतीय प्राचीन इतिहास के तिथिक्रम निर्धारण में महत्वपूर्ण योगदान करता है।

जरासन्ध के बाद की बाईस पीढियों का शासनकाल एक हजार वर्ष बताया गया है। यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि बृहद्रथ वंश के राजाओं के नाम देने के बाद उनका सम्मिलित शासनकाल दे दिया गया है। इस वंश की कुल पीढियों की संख्या नहीं दी गई है। जबकि उसके बाद सभी वंशो के राजाओं की कुल संख्या भी बताई गई है। इससे प्रतीत होता है कि पुराणों के संकलन के समय में भी यह माना जाता था कि उन एक हजार वर्षोंमें हुए कुल राजाओं की संख्या बाईस से अधिक रही होगी और कुछ के नाम नहीं मिल सके होगें। एक हजार वर्षो में बाईस पीढियों का औसत शासन काल लगभग 45 वर्ष होता है जो अधिक ही प्रतीत हो पर असम्भव या अविश्वसनीय नहीं माना जा सकता है।

बृहद्रथ वंश के अन्तिम मगध नरेश रिपुञ्जय थे। उनके प्रधानमन्त्री का नाम सुनिक था। सुनिक ने राजा की हत्या करके अपने पुत्र प्रद्योत को राजी बना दिया। विष्णु पुराण, चतुर्थ अंश, अध्याय चौबीस के पहले तथा दूसरे वाक्य में ही जानकारी दी गई है। इससे स्पष्ट है कि मगध नरेश प्रद्योत के पिता मगध के ही मन्त्री थे। उनका अवन्ति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रद्योत के उत्तराधिकारी पुत्र बलाक हुए। बलाक के पुत्र विशाखयूप थे। उनके पुत्र जनक उनके बाद राजा बने। जनक के पुत्र नन्दिवर्द्धन हुए। उनके पुत्र का नाम नन्दी था। इन प्रद्योतवंशी राजाओं ने एक सौ अड़तीस वर्ष तक शासन किया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास की कितनी स्पष्ट तिथियां हमारे पास सुरक्षित हैं।

प्रद्योत वंश के बाद मगध पर शिशुनाग का अधिकार हो गया। उनके बाद इस वंश में क्रमशः काकवर्ण, क्षेमधर्मा, क्षितिजा, विम्बसार, अजातशत्रु, दर्भक या दर्शक, उदायिन, नन्दिवर्द्धन तथा महानन्दी ने शासन किया। इस वंश का शासनकाल 362 वर्ष लिखा गया है विधिसार को पालिसाहित्य में विम्बसार कहा गया है। वे बुद्ध के समकालीन थे। उनके पुत्र अजातशत्रु के शासनकाल के नवें वर्ष में महात्मा बुद्ध ने शरीर त्याग दिया था।

मगध में शिशुनाग वंश के राजा महाबन्दी के बाद महापदमनन्द ने राज्य किया था। महापदमनन्द के राज्यभिषेक और परीक्षित के जन्म के बीच का समय 1500 वर्ष है। यह स्पष्ट तिथिक्रम प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रमाणिकता को स्पष्ट करता है। महापदमनन्द और उनके पुत्रों का कुल शासन काल एक सौ वर्ष था। अतः नन्दवंश का अन्त और मौर्य वंश का आरम्भ महाभारत युद्ध के 1600 वर्षों के बाद हुआ।

सभी भारतीय साक्ष्य इन्हीं तिथियों को मान्यता देते हैं लेकिन आधुनिक इतिहासकारों के चन्द्रगुप्त मौर्य को सिकन्दर का समकालीन सेण्ड्रोकोटस का पर्याय मान लेने के कारण सारा तिथिक्रम उलझकर रह गया है। विचित्र बात यह है कि किसी भी इतिहास कार ने इस तथ्य की ओर ध्यान देने का प्रयास नहीं किया कि चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु और मन्त्री विष्णुगुप्त चाणक्य कौटिल्य ने अपने प्रशिद्ध ग्रन्थ अर्थशास्त्र में नन्दवंश के विनाश का तो उल्लेख किया गया है लेकिन सिकन्दर के आक्रमण और उसके सेनापति सेल्यूकस की पराजय तथा उसकी पुत्री हेलेना के साथ सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के विवाह का उल्लेख तक नहीं किया। यदि सिकन्दर उनके समकालीन होते तो इतनी बढी घटना का उल्लेख जरूर होना चाहिये था। उल्लेखनीय है कि अर्थशास्त्र मूलतः राजनीति का ही ग्रन्थ है और उसे ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण माना जाता है। किसी भारतीय पुस्तक में चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में सिकन्दर या सेल्यूकस का उल्लेख नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि चन्द्रगुप्त मौर्य तथा यूनानी सम्राट सिकन्दर समकालीन नहीं थे। दोनों के बीच लगभग बारह शताब्दियों का अन्तर है।

❖❖ ❖ ❖❖

बुद्धकालीन प्रमुख सम्प्रदाय

बुद्धकालीन वैदिक धर्म का सबसे अधिक प्रचलित रूप यज्ञ धर्म था। चिन्तनशील बुद्धिजीवी ऋषि उपिनिषदों में प्रतिपादित दर्शन का मन्थन कर रहे थे, लेकिन जब जनसाधारण के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञों का आयोजन ही धर्म था। बडे बडे यज्ञों का अनुष्ठान चलता रहता था। यज्ञों का विधिपूर्वक सञ्चालन करना प्रतिष्ठित आजीविका का साधन बन गया था। सबसे बढी विकृति यह आ गई थी कि यज्ञों में पशु हत्या बहुत बढे पैमाने पर होने लगी थी। इस प्रकार यज्ञ प्रत्यक्ष रूप से और उसी कारण से धर्म हिंसा का पर्याय बन गया था।

यद्यपि कर्मकाण्डपरक यज्ञों को ही सर्वोच्च धर्म मान लेने का शालीनता के साथ विरोध तो उपनिषदों में ही प्रारम्भ हो गया था, लेकिन हिंसा प्रधान हो जाने पर तो खुले विद्रोह की स्थिति स्पष्ट दिखाई पडने लगी थी। बुद्ध के समय तक आते आते यज्ञ विरोधी सन्यास धर्म बहुत प्रबल हो गया था। बुद्ध काल में अधिकांश लोग जो यज्ञीय हिंसा से त्रस्त थे, सामाजिक जीवन छोडकर सन्यासी बनने लगे थे। बुद्ध के समय में ऐसे सन्यासियों के 63 संगठित सम्प्रदाय थे जो अपने अपने ढंग से उस समस्या का हल खोजने में व्यस्त थे। उनमें वैचारिक मतभेद बहुत तीव्र थे और परस्पर विरोध स्पष्ट था। उनमें समानता केवल इतनी थी सभी यज्ञीय हिंसा से ऊब कर गृहस्थ जीवन छोडकर सन्यासी बन गये थे। वे सभी योग साधना में विश्वास रखते थे और शरीर को कष्ट देनें में भी सुख का अनुभव करते थे। इस प्रकार यज्ञीय हिंसायुक्त धर्म के विरोध में योग तथा तप युक्त सन्यास धर्म का एक रूप जैनमत भी है। जैनमत का संस्थापक आदिनाथ ऋषभदेव को माना जाता है।

बुद्धकालीन 63 श्रमण संगठनों में 6 प्रमुख माने गये हैं। उनमें एक सम्प्रदाय के आचार्य पूरण कश्यप थे। उनका मानना था कि मनुष्य कुछ भी अच्छा बुरा कार्य करे, उसे पाप या पुण्य नहीं मिलता

है। कोई कितनी भी हत्यायें करे या कितना भी दान दे, उसे कोई फल पाप या पुण्य के रूप में नहीं मिलेगा। निष्काम कर्मयोग फल या लाभ हानि की चिन्ता किये बिना कर्तव्य करने की प्रेरणा देता है जबकि पूरणकश्यप का अक्रियावाद कर्तव्य अकर्तव्य का विचार किये बिना कुछ भी करते रहने की छूट दे देता है। इसके पीछे यज्ञ को ही पुण्य तथा यज्ञ के विरोध को पाप मानने की प्रवृत्ति को रोकने का ही प्रयास परिलक्षित होता है।

पकुध कात्यायन का मत अकृततावाद कहा जाता था। उनका मत भी बहुत कुछ पूरण कश्यप से ही मिलता जुलता था। उनका कहना था कि जो तेज शस्त्रों से दूसरों का सिर काटता है, वह हत्य नहीं करता। सिर्फ उसका शस्त्र उन तत्वों के बीच के रिक्त स्थान में ही प्रवेश करता है जिनसे जीव निर्मित हैं। पकुध कात्यायन कर्म का दायित्व मनुष्य पर नहीं छोडते, अतः पाप पुण्य जैसे कार्य फल का प्रश्न ही नहीं उठता है।

तीसरा प्रमुख मत अजित केस कम्बली का उच्छेदवाद था। उनका मानना था कि मृत्यु के बाद शरीर के तत्व अपने अपने स्थान में समा जाते हैं। और कुछ भी शेष नहीं बचता है। विद्वान और मूर्ख दोनो का मृत्यु के बाद उच्छेद हो जाता है। इसे जडवाद भी कहा जाता है।

चौथे संघ के प्रमुख आचार्य मक्खल गोसाल थे। उनका मत देववाद था। उसके अनुसार मनुष्य आदि प्राणियों में स्वयम् कुछ भी करने की शक्ति नहीं है। मनुष्य बिना किसी कारण के ही पवित्र और अपवित्र होता है। अस्सी लाख महाकल्पों के फेरे में पडे बिना किसी भी दुख का नाश नहीं होता है। यह मत भाग्यवाद की पराकाष्ठा है। पांचवें संघ के आचार्य जैन साधु निगण्ठ नाग पुत्र थे। वे उक्त मतों की बात करते थे। और आधुनिक अर्थों में समन्वयवादी उन्होनें इन चार मतों का प्रतिपादन किया है।

छठे प्रमुख आचार्य सञ्जय बेलपुत्त थे। उनका मानना था कि लोक परलोक, कर्म फल तथा मृत्यु के बाद जीवन है या नहीं, इन सबके विषय में निश्चय पूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता है। इस मत को अनिश्चिततावाद कहते हैं। वास्तव में देखा जाये तो आज तक इन सब मामलों में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सका है। ये सारे मामले आस्था से जुडे हैं और सभी के अपने अपने विश्वास हैं।

इससे स्पष्ट होता है कि हिंसामय यज्ञों से ऊबकर घर छोडकर सन्यासी बने इन लोगों में एक बात पर ही सहमति खोजी जा सकती है कि ये लोग चाहते थे कि लोग हिंसक यज्ञों को बन्द कर किसी भी गम्भीर धर्म का आचरण करें। वह गम्भीर धर्म कैसा होना चाहिए, इस बारे में कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सका था।

बुद्ध ने इन तमाम अतियों के बीच मध्यम मार्ग पर बल दिया। उन्होंने हिंसामय यज्ञों का विरोध किया, अहिंसा पर बल दिया, करुणा और मैत्री का सन्देश दिया। लेकिन बुद्ध ने अहिंसा की इतनी भी अति नही होने दी कि जीवन यापन की अव्यावहारिकता के कारण असम्भव जैसा बन जाए। महात्मा बुद्ध वैदिक धर्म के अतार्किक विरोधी नहीं थे। उन्होनें उसमें आ गई विकृतियों का परिमार्जन किया तथा अन्य मतों की उपयोगी बातों को समन्वित कर मानव जीवन को अधिक पूर्णतः प्रदान करने का प्रयास किया।

❖❖ ❖ ❖❖

वेद और वैदिक विचारधारा

परम्परागत मान्यता है कि ब्रह्मा ने एक संहिता में सम्पूर्ण वेद को परमात्मा से प्राप्त किया है। वैदिक साहित्य का मूल आधार चार मन्त्र संहितायें हैं जिन्हें ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद कहा जाता है। ऋग्वेद में दस मण्डल, 1028 सूक्त और 10552 मन्त्र हैं। शेष तीन वेदों का सम्मिलित आकार भी ऋग्वेद से अधिक नहीं है। सामवेद को ऋग्वेद का ही लघु संस्करण प्रतीत होता है। सामवेद में कुल 1875 मन्त्र हैं जिनमें 1800 तो ऋग्वेद में भी हैं। सामवेग के मन्त्रों की विशेषता उनकी गेयता और संगीतात्मकता है। अथर्ववेद में भी बहुत बढी संख्या में मन्त्र ऋग्वेद से ही लिए गये हैं। शिवसंकल्प जैसा गेय सूक्त यजुर्वेद में है। उसका अन्तिम चालीसवाँ अध्याय भी ईशोपनिषद् या ईशावास्योपनिषद के नाम से बहुत प्रशिद्ध और प्रचारित भी है। वह दार्शनिक चिन्तन का मूल और प्रेरणा स्रोत है।

वेद संहितायों में प्रत्येक मन्त्र के ऋषि, देवता और छन्द का उल्लेख किया जाता है। देवता का मन्त्र उस मन्त्र में वर्णित विषय है तथा छन्द का आशय उसका पद्य विधान है। ऋषि को कुछ लोग मन्त्र का रचनाकार मानते हैं। परन्तु ऋषि मन्त्र की मूल भावना है जो मन्त्र को समझने तथा उपयोग करने के लिए आवश्यक है। जैसे विश्वामित्र ऋषि कहने का भाव है विश्व का मित्र होने की भावना।

अब प्रश्न उठता है कि वेदों में है क्या ? सूत्र रूप से कहा जा सकता है कि वेदों में सब कुछ है। वर्णन काव्यात्मक है और अलंकारिक भी। मानवीकरण अलंकार का भी खूब प्रयोग हुआ है। रूपकों की छटा तो है ही। वेद मन्त्रों में प्रकृति सजीव होकर हमारे सामने खडी हो जाती है। इसी शैली को प्रकृति में देवत्व की अनुभूति भी कहा जाता है। इस प्रकार वेद कोरे दार्शनिक ग्रन्थ नहीं, विश्व के प्राचीनतम् और श्रेष्ठ काव्य भी हैं।

वेद को धर्म का आधार माना गया है। परस्पर विरोधी अद्वैतवाद, द्वैतवाद और त्रैतवाद के सिद्घान्त मानने वाले दार्शनिक अपने मत को वेद सम्मत मानते हैं। अद्वैतवादी केवल ब्रह्मा को अनादि मानते हैं। और जीव तथा प्रकृति को उसी का परिवर्तित रूप कहते हैं। द्वैतवादी ब्रह्मा के साथ प्रकृति को भी अनादि मानते हैं। तथा त्रैतवादी ब्रह्मा, जीव. प्रकृति तीनों को अनादि मानते हैं। वेद में मुझे एकत्व की अनुभूति तो मिली है, द्वैत या त्रैत का स्पष्ट उल्लेख नहीं।

इसी प्रकार वेद को न आत्मा के मोक्ष की चिन्ता है, न पुनर्जन्म की। पुनर्जन्म होता है, यह बात स्पष्ट रूप से किसी वेद मन्त्र में नहीं है। वेद स्वर्ग के सुख की बात तो बताते हैं, लेकिन नरक की कोई कल्पना वेद में नहीं मिलती है। वेद इसी जीवन में सुख शान्ति की प्रेरणा देते हैं। वेद आशावादी और उत्साहवर्द्धक हैं, धर्म के नाम पर डराने वाले अन्धविश्वासी नहीं। यही कारण है कि धर्म के नाम पर जीविका चलाने वाले मठाधीस वेद का नाम तो लेते हैं, पर पढना और पढाना नहीं चाहते हैं। सभी लोग धर्म का मूल तो मानते हैं, पर प्रचार करते हैं अपने ग्रन्थों का, वेद का कभी नहीं। वेद धार्मिक आडम्बर के लिए भय ही हैं।

वैदिक विचारधारा में किसी तरह के भेदभाव नहीं हैं। वेद कहते हैं कि पृथ्वी की सभी सन्तानें प्रकाश प्राप्त करें। वे मानव मानव में भेद

नहीं करते, स्त्री पुरुष में भेद नहीं करते। वेद प्रत्यक्ष प्रकृति का सम्मान करना सिखात हैं। काल्पनिक स्वर्ग या नरक की चिन्ता में वर्तमान का खोना उचित नहीं है। वैदिक विचारधारा व्यावहारिक और तार्किक है, काल्पनिक धार्मिक रुढियों से तो बहुत दूर है।

❖❖ ❖ ❖❖

वैदिक साहित्य और चिन्तन का विकास

वैदिक साहित्य भारत ही नहीं, विश्व का प्राचीनतम साहित्य है। वैदिक मन्त्र संहितायें सबसे प्राचीन और सर्वाधिक महत्वपूर्ण तथा पूरे साहित्य का मूल हैं। ऋग्वेद, यजुर्वेद सामवेद और अथर्ववेद मूलतः मन्त्र संहितायें ही हैं। एक मान्यता है कि महाभारतकालीन कृष्ण द्वैपायन व्यास ने मन्त्रों को एकत्र कर चार संहिताओं में सम्पादन किया। सैकडों मन्त्रों के चारो संहिताओं में मिलने से इतना तो स्पष्ट है कि सम्पादन तो हुआ है, चाहे आदि महेश ब्रह्मा ने किया हो, चारों संहितायों के अलग अलग ऋषियों अग्नि, वायु, सूर्य अथवा आंड्गिरस ने अथवा अन्तिम सम्पादक कृष्ण द्वैपायन व्यास ने।

प्रत्येक वेद के अलग अलग ब्राह्मण ग्रन्थ मिलते हैं। इस प्रकार चार ब्राह्मण ग्रन्थ एतरेय, शतपथ, साम और गोपाथ नामक प्रशिद्ध हैं। वेद को ब्रह्म भी कहते है, अतः उनकी व्याख्या करने वाले लोगों और ग्रन्थों को ब्राह्मण भी कहा गया है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर ने प्रमुख शोध ग्रन्थ संस्कृति के चार अध्याय में लिखा है कि ब्राह्मण अत्यन्त नीरस ग्रन्थ है। विधि और अथर्ववेद उनके दो विषय हैं। विधि के अन्तर्गत अनेक प्रकार के यज्ञों की विधियों का निरूपण किया गया है अतः अर्थवाद के अन्तर्गत उनकी व्याख्या का प्रयास है।

इसी में राजाओं और ऋषियों के इतिहास का भी कुछ उल्लेख मिलता है जिसे इतिहास पुराण, नाराशंसी, कल्प गाथा भी कहते हैं। स्पष्ट रूप से इन ब्राह्माण ग्रन्थों को पुराण साहित्य का प्रेरणा स्रोत माना जाना चाहिये। उसी से प्रेरणा लेकर सूतों ने भारत के प्राचीन इतिहास के संकलन का महान् कार्य सम्पन्न किया। इस प्रकार प्राचीन इतिहास के स्रोत के रूप में ब्राह्मण ग्रन्थों का बहुत अधिक महत्व है।

वेद और ब्राह्मण ग्रन्थों के बाद प्राचीन आर्ष साहित्य में आरण्यकों और उपनिषदों का स्थान आता है। ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रचार से कर्मकाण्ड और आडम्बर बढा और विभिन्न प्रकार के यज्ञों के विधि ज्ञान की अलग शाखा बन गई । अलग अलग तरह के यज्ञों को कराने वाले अलग अलग विशेषज्ञ पुरोहित होने लगे। यज्ञों का जटिल जाल फैलने लगा। उससे ऊब कर ऋषियों ने चिन्तन प्रारम्भ किया कि वास्तव में यज्ञों की उपयोगिता क्या है और उसकी सीमायें क्या हैं। नगरों के कोलाहल से दूर अरण्यों या वनों में इस प्रकार का चिन्तन व्यक्त कने वाले ग्रन्थ आरण्यक कहलाये।

उपनिषदों का चिन्तन भी अरण्यकों का ही विशेष रूप है। उपनिषदों को वेदान्त भी कहा जाता है। एक प्रकार से ब्राह्मणों की अपेक्षा उपनिषद् वेदों के अधिक निकट है। उपनिषदों में कर्मकाण्डों

की उपेक्षा करते हुए चिन्तन मनन ध्यान द्वारा सत्य को जानने पर बल दिया गया है। इसलिए निर्विवाद रूप से उपनिषदों को विश्व का सर्वश्रेष्ठ और प्राचीनतम दार्शनिक साहित्य माना जाता है। आत्मा, परमात्मा, सृष्टि आदि के विषय पर तर्कसंगत ढंग से विचार करने का प्रयास उपनिषदों में किया गया है। उपनिषदों का मानना है कि विविधिता से पूर्ण सृष्टि का आदि तत्व में एक ही है। उसी परम तत्व को जानने का प्रयास ही दर्शन और विज्ञान का मूल लक्ष्य है। इस दिशा में उपनिषद हमारा समुचित मार्ग दर्शन करने में सक्षम है।

प्राचीन उपनिषदों के नाम ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, एतरेय, तैत्तरीय, छान्दोग्य, वृहदारण्यक, कौषीतकि हैं। इन्हीं 11 उपनिषदों को प्राचीन और महत्वपूर्ण माना जाता है। वैसे आचार्य श्री राम शर्मा ने 108 उपनिषदों का सम्पादन किया है जिसमें अल्लोपनिषद् भई शामिल हा। जिसकी रचना सम्राट अकबर का शासन काल में हुई थी। इसका अर्थ है कि उपनिषद के नाम से रचनायें मुगल काल में भी होती रहीं जिसमें तत्कालीन विचारों का समावेश स्वाभाविक रूप से होता रहा। अल्लोपनिषद् का अर्थ ही है अल्लाह का उपनिषद्, जो स्पष्टतः अकबर के इस्लाम या दीने इलाही से प्रभावित है।

इतना ध्यान रखना चाहिए कि वैदिक धर्म संस्कृति का मूल तथा एक प्रमाण वेद ही है, अन्य ग्रन्थों का महत्व मात्र ऐतिहासिक एवं साहित्यिक है। वास्तव मे वैदिक साहित्य भारत की सबसे बडी धरोहर, सबसे बढी पूँजी है। दुःखद बात केवल यह है कि आज कल मठाधीशों के आत्मप्रचार करने वाले साम्प्रदायिक साहित्य की भीड में वैदिक साहित्य को चाहकर भी खोज पाना कठिन होता जा रहा है।

चार उपवेद और छह वेदाङ्ग

सभ्यता के विकास के लिए उपवेदों का विकास किया गया। आयुर्वेद, धनुर्वेद गन्धर्ववेद और अर्थवेद को चार प्रमुख उपवेद कहा जाता है। आयुर्वेद स्वास्थ्य विज्ञान और चिकित्साशास्त्र है। आयुर्वेद में रोगो की चिकित्सा के साथ ही इस बात पर बल दिया जाता है कि स्वस्थ्य कैसे रहें और रोग होने से बचा कैसे जाये। उसमें मानसिक शान्ति, मनोविज्ञान, ध्यान, प्राणायाम, शरीर शोधन, कायाकल्प, व्यायाम, आहार- विहार आदि पर भी समुचित शोध किया गया है।

औषधि चिकित्सा के साथ ही शल्य चिकित्सा भी आयुर्वेद का प्रमुख अङ्ग है। इसके लिए सौ उपकरणों के बाद सबसे महत्वपूर्ण उपकरण चिकित्सक का हाथ माना गया है जिसके बिना सभई यन्त्र और उपकरण व्यर्थ हैं। यह माना गया है कि शरीर ही धर्म का साधन है क्योंकि यदि शरीर ही स्वस्थ्य नहीं रहेगा तो किसी भी धर्म, संस्कृति और सभ्यता का विकास सम्भव नहीं है। आयुर्वेद बहुत प्राचीन है। अश्वनी कुमार सबसे प्राचीन ज्ञात चिकित्सक है। ऐसा वर्णन मिलता है कि उन्होनें वृद्धावस्था में यौवन प्रदान करने, लोहे के कृत्रिम पैर लगाने तथा शल्य क्रिया जैसी सफलतायें भी प्राप्त की थी। अति प्राचीन काल में भी ऐसी सफलतायें अविश्वसनीय और चमत्कारिक प्रतीत होती हैं। आयुर्वेद को व्यवस्थित विज्ञान का रूप देने का श्रेय धन्वन्तरि को भी दिया जाता है। वे चन्द्रवंशी थे तथा सम्भवतः त्रेता युग में हुए थे। इस समय उपलब्ध आयुर्वेद ग्रन्थों में

चरक और सुश्रुत के ग्रन्थ प्राचीनतम और महत्वपूर्ण माने जाते हैं एक आयुर्वेद विशेषज्ञ च्यवन द्वारा प्रसारित च्यवनप्राश आज तक प्रभावकारी और लोकप्रिय स्वास्थ्यप्रद रसायन माना जाता है।

धनुर्वेद के अन्तर्गत सैन्य विज्ञान और राजनीति शास्त्र दोनो का समावेश है। राष्ट्र की सुरक्षा और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में कूटनीतिक सम्बन्ध को भी सर्वोच्च महत्व प्रदान करते हुए उपवेद होने की मान्यता दी गई है। इसके अन्तर्गत शस्त्र निर्माण और सञ्चालन कला के साथ ही सैन्य सङ्गठन युद्ध क्षेत्र में सैन्य सज्जा और व्यूह रचना तथा शत्रु की शक्ति को देखते हुए सैन्य सञ्चालन का गम्भीर विवेचन का किया गया है।अर्थवेद के अन्तर्गत आधुनिक अर्थशास्त्र के अलावा शिल्पकला तकनीक और प्रौद्योगिकी सहित उद्योग व्यापार सम्बन्धी सभी विषय सम्मिलित हैं।

गान्धर्व वेद को संगीतशास्त्र कहा जा सकता है। गायन वादन के अन्तर्गत स्वर, राग रागिनी, समय, ताल, ग्राम, तान, वारित्र, नृत्य, गीत आदि गान्धर्व वेद के विषय हैं। संगीत को उपवेद की मान्यता मिलना यह शिद्ध करता है कि कला और मनोरञ्जन को भी कितना अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। वैदिक संस्कृति नीरस धर्मचर्चा और दर्शन में ही नहीं उलझी रहती थी, उसमें सामान्य जनजीवन को मनोरञ्जन पूर्ण और उल्लासमय बनाये रखने की लालसा थी। धर्म, दर्शन और कला के इस समन्वय से ही भजन आरती जैसी विधाओं का विकास हो सका जिसमें धर्म लोकप्रिय, कर्णप्रिय और आनन्ददायक बना। नृत्य और नाटक भी इसी गान्धर्व वेद के आंग हैं।

वेदों के शुद्ध रूप बचाये रखने और अर्थ समझने के लिए वेदाङगों का विकास हुआ। उसमें भाषा, विज्ञान, व्याकरण, शब्दकोष, ब्रह्माण्ड भौतिकी तथा समाजशास्त्र विषय प्रमुख है। तत्कालीन शब्दावलीं में छह वेदाङ्ग शिक्षा, निरूक्त, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष और कल्प माने गये हैं।

प्रथम वेदाङ्ग शिक्षा को भाषा विज्ञान का मूल माना जाता है। शिक्षा को वर्तमान अर्थ के अनुसार पढाई लिखाई समझना भूल होगी। इसीलिए आज भाषा विज्ञान में शिक्षा वेदाङ्ग को ध्वनि कहा जाता है। इसके अन्तर्गत भाषा की मूल ध्वनियों का वर्गीकरण, उनके उच्चारण स्थान और प्रयत्न आदि का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार भाषा विज्ञान को प्रमुख वेदाङ्ग माने जाने के कारण ही भारतीय भाषायें और लिपियां विश्व में निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ और वैज्ञानिक हैं।

दूसरे वेदाङ्ग निरुक्त को आजकल शब्द रचना विज्ञान कहा जाता है। वब भी भाषा विज्ञान का प्रमुख अंग है। निरुक्त मे विचार किया गया है कि प्रत्येक शब्द की रचना कुछ मूल तत्वो से होती है। जिसे धातु, उपसर्ग, प्रत्यय आदि कहा गया। समय के साथ अनेक शब्दों के रूढ अर्थ बदलने लगते हैं, लेकिन निरुक्त के द्वारा हम वेद मन्त्रों के शब्दों का मूल अर्थ ज्ञात कर सकते हैं। निघण्टु नामक वैदिक शब्द कोष भी इसी के अन्तर्गत है।

तीसरे वेदाङ्ग व्याकरण है। इसका मुख्य विषय लिङ्ग, वचन, कारक और क्रिया रूपों के कारण शब्दों और क्रियाओं के रूपों में होने वाले परिवर्तन और उनके अर्थ का ज्ञान कराना है। पद रचना और वाक्य रचना व्याकरण का विषय है। पद शब्द का वह रूप माना जाता है जो वाक्य में प्रयोग होता है। पाणिनीय अष्टाध्यायी सबसे

प्रशिद्ध व्याकरण ग्रन्थ है। इन्द्र, चन्द्र, काशकृत्स्न, आपिशील, शकाटायन आदि प्रशिद्ध व्याकरणाचार्य पाणिनि से भी पहले हुए हैं। उसमें काशकृत्स्न का ग्रन्थ अभी भी प्रचारित है।

इन्द्र और चन्द्र अतिप्राचीन व्याकरणाचार्य हैं। काशकृत्स्न कृष्ण द्वैपायन व्यास के समकालीन सम्भवतः उनके शिष्य थे। उनके तीन शताब्दी बाद पाणिनि हुए। पाणिनि के सात शताब्दी के पश्चात् पतञ्जलि ने महाभाष्य लिखा। पतञ्जलि के लगभग एक हजार वर्ष बाद कैयट ने उसकी व्याख्या लिखी। इस प्रकार पाँच हजार वर्षों से अधिक प्राचीन व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध है। कैयट का ही समय लगभग 1200 विक्रम पूर्व माना जाता है।

छन्द को चौथा वेदाङ्ग माना गया है। इसका प्राचीन ग्रन्थ पिगंल है। जिसमें वैदिक छन्दों के साथ ही लौकिक छन्द भी वर्णित हैं।

पांचवाँ वेदाङ्ग ज्योतिष है। इसे ब्रह्माण्ड भौतिकी कहा जाता है। भविष्य बताने वाले तथाकथित ज्योतिष के कुण्डली, फलादेश आदि से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। इस वेदाङ्ग में ग्रह, नक्षत्रों आदि की गतियों तथा ब्रह्माण्ड की रचना पर शोध हुआ है। सूर्य सिद्धान्त ही आजकल ही आजकल उपलब्ध प्रशिद्ध प्राचीन ज्योतिष ग्रन्थ है। ज्योतिष वेदाङ्ग के अन्तर्गत अंकगणित, बीजगणित, रेखागणित, भूगोस, खगोल, भूभर्ग विज्ञान आदि विषय भी सम्मिलित हैं।

छठा वेदाङ्ग कल्प कही जाता है। इनके दो मुख्य भाग हैं। श्रौत्रसूत्र में यज्ञों का वर्णन है और स्मार्त सूत्र में परिवार तथा समाज का उल्लेख है। स्मार्त सूत्रों के अन्तर्गत गृह्य सूत्र में व्यक्तिगत और पारिवारिक जीवन, संस्कार आदि का वर्णन है तथा धर्म सूत्र में राजा तथा नागरिकों के कर्तव्यों और वर्णाश्रम व्यवस्था का वर्णन किया गया है।

उपवेद तथा वेदाङ्ग मिलकर संस्कृति और सभ्यता के विकास का मार्ग प्रशस्त करते हैं। ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से माना जा सकता है कि यह सम्पूर्ण आधारभूत संरचना कृष्णकाल के आसपास अब से लगभग पाँच हजार वर्ष पहले तैयार हो चुकी थी। यह साहित्य उपलब्ध आज भी है लेकिन कहीं एक स्थान पर सुलभ नहीं है जिससे उसे खोजकर एकत्र कर पाना दुरुह कार्य है।

❖❖ ❖ ❖❖

वेदों के उपाङ्ग अर्थात् छह दर्शन

वेद के उपाङ्ग के रूप में मान्यता प्राप्त छह दर्शन मीमांसा, साङ्ख्य, वैशेषिक, न्याय, योग और वेदान्त हैं। वेदान्त दर्शन को उत्तर मीमांसा कहा जाता है। ये सभी दर्शन आधुनिक तार्किक और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सृष्टि के रहस्यों को समझने का प्रयास करते हैं।

वैशेषिक दर्शन परमाणु शिद्धान्त का जनक है। उसका मानना है कि सब कुछ परमाणुओं से बना है। इस दर्शन में सभी पदार्थों को नौ द्रव्यों में बाँटा गया है - पृथिव्य (ठोस), अपः (द्रव), तेज (ऊर्जा), वायु (गैस), आकाश, काल (समय), दिक् (स्थान), आत्मा और मन। वैशेषिक दर्शन में आत्मा का अर्थ चेतना शक्ति है जो जन्तुओं और वनस्पतियों में पाया जाने वाला विशिष्ट गुण है।

मन केवल मनुष्य जैसे अतिविकसित जीवों में ही विकसित अवस्था में पाया जाता है। इस मन द्रव्यरूप पर विस्तृत और गहन विचार योग दर्शन में किया गया है। आधुनिक शैली में वह मनोविज्ञान के अध्ययन का विषय़ है। इसलिए योग को भारतीयों का सर्वोच्च मनोविज्ञान कहा जाता है। मनोविज्ञान पर आधारित होने के कारण ही योग केवल दर्शन ही नहीं, व्यावहारिक और प्रत्यक्ष लाभ देने वाली जीवनशैली है जो आज पूरे विश्व में लोकप्रिय और प्रतिष्ठित भी है। गणित में शून्य, विज्ञान में परमाणु शिद्धान्त और मनोविज्ञान में योग विश्व को भारत की विशिष्ट देन है।

वैशेषिक दर्शन का मत है कि सभी पदार्थ परमाणुओं से बने हैं और प्रत्येक पदार्थ के परमाणु के गुण धर्म में कोई विशेष बात अवश्य होती है, इसीलिए हर वस्तु का गुणधर्म अलग अलग होता है। एक तत्व के सभी परमाणु समान होते हैं तथा दूसरे तत्व के परमाणुओं से भिन्न या विशिष्ट होते हैं। इसी विशेष गुण पर जोर देने के कारण ही उसे वैशेषिक दर्शन कहा जाता है। महर्षि कणाद के वैशेषिक दर्शन की यह मूल मान्यता आधुनिकतम खोजों के प्रकाश में सही पायी जाती है। इतना अवश्य है कि कणाद सम्भवतः एक तत्व के परमाणुओं में अन्य तत्वों के परमाणुओं की अपेक्षा विशेष गुण होने का कोई स्पष्ट कारण बता सके थे। अब परमाणु के विखण्डन के बाद यह पता चला है कि परमाणु स्वयम् कई सूक्ष्म कणों से मिलकर बना होता है और उनकी संख्या के आधार पर तत्व के गुणधर्म निर्धारित होते हैं। इतना तो है ही कि वैशेषिक दर्शन को पढकर भौतिकी की प्रमुख बातों को आसानी से समझा जा सकता है। प्राचीन होने के कारण उसका ऐतिहासिक महत्व तो है ही।

महर्षि पतञ्जलि ने योग के आठ अंग बताये हैं, इसीलिए उसे अष्टांग य़ोग भी कहा जाता है। वे वास्तव में योग के आठ चरण हैं। यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि अष्टाङ्ग योग व्यक्तित्व विकास की मनोवैज्ञानिक प्रणाली है। उसमें तनाव मुक्त रहकर मानसिक शक्तियों का विकास करने का उपाय बताया गया है। यही विशेषता योग को दर्शन के स्तर से उठा कर विज्ञान के स्तर पर ला देती है।

योग का पहला चरण यम है यम के अन्तर्गत उन आदतों को छोडने का निर्देश है जिनमें व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक तनाव उत्पन्न होता है। हिंसा, मिथ्या, चोरी, व्यभिचार और संग्रह को छोडकर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को स्वभाव मे सम्मिलत करना सबसे पहले जरूरी है। अन्यथा नित्य नयी समस्यायें उत्पन्न होगीं और तनाव के कारण मन एकाग्र नहीं हो सकेगा। दूसरा चकण नियम है। इसमें उन उपायों का निर्देश है जिनसे योग मे सहायता मिल सकती है। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और प्राणिधान पाँच नियम माने गये हैं। जिनका पालन करना आवश्यक है। एक सभ्य औक सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण करने के लिए और तनाव मुक्त रहने के लिए पाँच यम और पाँच नियम अपना लेना व्यावहारिक है और पर्याप्त भी।

योग का तीसरा चरण आसन है। आसन से आशय व्यायाम या शरीर को नटों की तरह तोडना मरोडना नहीं है। कहा गया है स्थिर सुखमासनम्। जिस तरह से सुखपूर्वक देर तक बैठा जा सके, वह आसन है। इस प्रकार जिस व्यक्ति को जिस तरह बैठने में सुविधा हो, वह उसके लिए श्रेष्ठ आसन है, केवल मेरुदण्ड सीधा करने रहने

की अपेक्षा की गई है। इन तीन चरणों को योग की तैयारी भी कह सकते हैं।

इसके बाद चौथा चरण प्राणायाम है। यह स्वास्थ्यवर्द्धक, रोगनाशक और विपरीत परिस्थितियों में जीवनरक्षक तथा बलबर्द्धक अभ्यास है। पांचवां चरण प्रत्याहार है। इसका अर्थ है मन को भटकने से रोकना। छठवां चरण धारणा है। इसका आशय है मन को किसी स्थान पर स्थिर करने का प्रयास करना। सातवां चरण ध्यान है। कहते हैं कि ध्यान किया नहीं जाता, हो जाता है। हम धारणा तक प्रयास करते हैं, धीरे धीरे ध्यान लगने लगता है और आठवां चरण समाधि का लक्ष्य प्राप्त हो जाता है। एक ही बिन्दू पर धारणा, ध्यान और समाधि लग जाने को संयम कहा जाता है, त्रयमेकत्र संयमः।

साङ्ख्य दर्शन का मत है कि विपरीत तत्वों को मिलने से सृष्टि में नये तत्वों का विकास होता चलता है। सृष्टि की उत्पत्ति और विकास का यही क्रम है। उसे कार्लमार्क्स के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का मूल आधार कहा जा सकता है। वेदान्त स्पष्ट करता है कि वैशेषिक दर्शन में बताये गये पदार्थ के सभी नौ द्रव्य रूपों का मूलतत्व एक ही है। आधुनिक विज्ञान की भाषा में कह सकते हैं। कि सभी पदार्थ, ऊर्जा और चेतना का मूल तत्व एक ही है और सब कुछ उसका परिवर्तित रूप है। उसे ब्रह्मा, पुरुष या कुछ और भी कहा जा सकता है। यह जान लेना भी आवश्यक है कि दर्शन और वेदों - उपनिषदों का ब्रह्म कोई देवता नहीं है। जो अपनी चमत्कारिक शक्तियों से लोगों की सहायता या किसी को क्षति पहुँचाता हो। वह गतिशील और चेतना से युक्त मूल तत्व है जो सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है।

इतिहास तथा पुराण

प्राचीन भारतीय संस्कृति का आधार प्राचीन आर्ष साहित्य को माना जाता है उसकी विशेषता तार्किकता, तथ्यात्मकता व बौद्धिकता है। वेद, ब्रह्माण्ड, आरण्यक, उपनिषद, वेदाङ्ग, उपवेद और उपाङ्ग को मिलाकर वह साहित्य सम्पूर्ण हो जाता है।इन ग्रन्थों में परिवर्तन और क्षेपक का भी दोष नहीं है। इसीलिए इनका महत्व सर्वोपरि माना जाता है। प्राचीन इतिहास तथा भूगोल को जानने के लिए भी इनको उपयोगी माना जाता है।

इतिहास और भूगोल के बिना राष्ट्र ही नहीं बन सकता, संस्कृति की बात ही अलग है। अतः वैदिक साहित्य के परिशिष्ट रूप मे इतिहास और पुराण को सम्मिलित किया गया। धर्म दर्शन की दृष्टि से पुराणों का महत्व स्वीकार नहीं किया जाता है परन्तु इतिहास भूगोल की दृष्टि से उनका कोई विकल्प भी नहीं है। इतिहास का प्रसङ्गवश उल्लेख ब्राह्माण ग्रन्थों और उपनिषदों मे मिलता है, लेकिन उनके आधार पर एक शताब्दी का भी इतिहास नहीं लिखा जा सकता। अतः प्राचीनतम इतिहास ग्रन्थों के रूप मे वाल्मीकीय रामायण और व्यासकृत महाभारत को मान्यता मिली है। उन ग्रन्थों में समकालीन इतिहास मिलता है इसके बाद पुराणों मे क्रमबद्ध व्यवस्थित इतिहास लिखने का प्रयास किया गया। आज प्राचीन इतिहास जानने का मुख्य स्रोत पुराण ही है।

रामायण में क्षेपक और मूल विशेष से भटकाव कम माना जाता है। वर्तमान रामायण का परिमाण चौबीस हजार श्लोक माना जाता

है। गीता प्रेस द्वारा प्रकाशित रामायण में कुछ प्रक्षिप्त सर्गो का स्पष्ट निर्देश किया गया है। लेकिन रामायण के प्रारम्भ में उसकी श्लोक संध्या श्लोक शतैः कही गयी हैं जिसका अर्थ सैकडों श्लोक हुआ। इससे इस सम्भावना को बल मिलता है कि वाल्मीकि के बाद रामायण का आकार भी कई गुना बढाया गया है। इतना तो तय है कि क्षेपकों के बावजूद वाल्मीकीय रामायण की ऐतिहासिकता बहुत कुछ सुरक्षित है।

महाभारत की स्थिति तो और भी जटिल है। वर्णन मिलता है कि कृष्ण द्वैपायन व्यास ने केवल चार हजार सौ श्लोकों में जय नामक इतिहास ग्रन्थ लिखा था। उनके शिष्यों ने उसे बढाकर दस हजार श्लोकों में भारत नाम दिया। इतिहास प्रशिद्ध राजा भोज के ग्रन्थ संजीवनी में लिखा है कि महाभारत का आकार सम्राट विक्रमादित्य के समय में बीस हजार श्लोकों का हो गया था। भोज के समय उसका आकार तीस हजार श्लोकों तक पहुँच गया इस समय महाभारत की श्लोक संख्या एक लाख बीस हजार है। कहा नहीं जा सकता है कि वर्तमान महाभारत में व्यास के चार हजार सौ श्लोक कैसे खोजे जा सकते हैं।

रामायण और महाभारत के बाद विष्णु पुराण तीसरा प्रमुख इतिहास ग्रन्थ है। वह प्राचीनतम पुराण और सर्वाधिक प्रामाणिक इतिहास ग्रन्थ माना जाता है। विष्णु पुराण व्यास के पिता पाराशर और मैत्रेय के बीच सम्वाद के रूप में लिखा गया है। सम्भव है कि दोनो के बीच इतिहास सम्बन्धी चर्चा हुई हो और न इतिहास प्रेमियों को अमर करने के लिए दोनों के सम्वाद के रूप में पुराण लिखा गया हो। इसमें व्यास की प्रेरणा भी रही होगी, इसीलिए पुराणकर्ता व्यास को माना जाता है। एक मात्र यही पुराण जो चमत्कारों और असम्भव कल्पनाओं से बहुत कुछ मुक्त है। साम्प्रदायिक दुराग्रह और खण्डन मण्डन तथा विरोधियों की निन्दा भी इसमें नहीं मिलती है। इसीलिए आधुनिक विद्वानों ने भी विष्णु पुराण को इतिहास का मान्यता प्रदान की है।

यह बात समझना कठिन है कि इसे विष्णु पुराण क्यों कहा जाता है? इतना तो स्पष्ट है कि क्षीरसागर निवासी वैकुण्ठपति विष्णु ने इस पुराण का कोई सम्बन्ध नहीं हैं। सम्भव है कि विष्णु पुराण के लेखक का नाम पर इसका नाम पडा हो, जैसे वाल्मीकीय रामायण, पाणिनीय अष्टाध्यायी, भट्टि काव्य, भोज प्रबन्ध आदि अनेक ग्रन्थों के नाम लेखक के नाम से प्रशिद्ध है। ऐसा प्रतीत होता है कि बुद्ध पूर्व काल में विष्णु नामर विद्वान द्वारा रचित विष्णु पुराण प्रचलित रहा होगा। बाद के साम्प्रदायिक टकराव के युग में जब अनेक देवी देवताओं के नाम पर पुराणों की रचना होने लगी है तब विष्णु पुराण को भी विष्णु देवता के नाम से जोड दिया गया होगा।

परवर्ती युग में पुराण रचना इतिहास के स्थान पर सम्प्रदायों का पोषण करने के लिए होने लगी। अनेक पुराणों के नाम ही देवी देवताओं के नाम पर हैं। ब्रह्मपुराण, ब्राह्म वैतर्त पुराण और ब्रह्माण्ड पुराण ब्रह्मा के भक्तों के हैं। भागवत पुराण श्रीकृष्ण के भक्तों का पुराण है। शिव पुराण और लिंग पुराण शैव लोगों के ही हैं। इस प्रकार मार्कण्डेय पुराण, नारद पुराण, गरुण पुराण, हरिवंश पुराण, अग्नि पुराण, वायु पुराण, सूर्य पुराण, कूर्म पुराण, गणेश पुराण, भविष्य पुराण, पद्म पुराण, स्कन्द पुराण, कल्कि पुराण, वामन पुराण आदि अनेक ग्रन्थ पुराण साहित्य में माने जाते हैं। इसमें

अट्ठारह महापुराणों में वैष्णव लोग भागवत पुराण को मानते हैं जबकि शाक्त लोग उनके स्थान पर देवी भागवत को स्थान देते हैं। इस प्रकार पुराणों का विस्तार बहुत अधिक है।

पुराण साहित्य में इतिहास, भूगोल और भारतीय राष्ट्रीयता की दृष्टि से विष्णु पुराण सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। अतः उसे आधार स्तम्भ और इतिहास के मेरुदण्ड स्वीकार करते हुए अन्य पुराणों तथा इतिहास ग्रन्थों एवम् वर्णनों को यथास्थान समाहित करते हुए प्राचीन भारतीय इतिहास को कालाक्रमानुसार व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है। हमारा प्रयास इसी मौलिक मान्यता पर आधारित है।

बुद्ध पूर्व काल के तीन प्रमुख इतिहास ग्रन्थ रामायण, महाभारत और विष्णु पुराण ही है। सम्भव है कि कुछ अन्य पुराणों की रचना भी बुद्ध पूर्व काल में हो गई हो, लेकिन इतना तय है कि आधुनिक पुराण पिछले डेढ हजार वर्षों के दौरान ही रचे गये हैं। यही कारण है कि प्राचीन ग्रन्थों में इनमें किसी पुराण का नाम तक नहीं मिलता है इस प्रकारर हम रामायण, महाभारत, विष्णु पुराण को प्राचीन काल की इतिहासत्रयी कह सकते हैं।

बुद्ध युग के बाद के तीन प्रमुख इतिहास ग्रन्थ भी परिवर्ती इतिहास निर्माण में हमारे लिए महत्वपूर्ण हैं। वे हैं कालिदास कृत रघुवंश, कल्हण कृत राजतरङ्गिणी और भोजकृत सञ्जीवनी। इतिहास की महत्ता को स्थापित करते हुए ही छान्दोग्य उपनिषद में भी कहा गया है - इतिहास पुराणः पञ्चमों वेदानाम् वेदः अर्थात् प्राचीन इतिहास वेदों में पाचवां वेद है। अतः इतिहास कोको हम भी महत्वपूर्ण उपवेद मानते हैं।

❖❖ ❖ ❖❖

वैदिक दर्शन के मूल तत्व

वर्तमान भारतीय मूल धर्म मूलतः वैदिक और पौराणिक दर्शन ममें विभाजित हैं। दोनो में मूल अन्तर ब्रह्मवाद और देववाद का ही है। वैदिक ब्रह्मा इस सृष्टि का मूल तत्व है।वह सभी प्रकार के परमाणुओं तथा चतना से भी सूक्ष्म हैं। उसे परम तत्व कहा जाता है। ब्रह्म, ऋत और सत् वैदिक दर्शन के मूल तत्व है।

सृष्टि का मूल तत्व या परम तत्व के रूप में ब्रह्मा और भौतिक द्रव्य या भूत को एक माना जाना चाहिए। भौतिकवादी कहे जाने वाले वैज्ञानिक जिसे गतिशील मूल द्रव्य कहते हैं, वेद और उपनिषद् उसे ब्रह्मा कहते हैं। उसमें गति और चेतना सहित सभी गुणों का समावेश माना जाता है। उस परम तत्व से ही विविधतापूर्ण सृष्टि का विकास हुआ है।

ऋत की अवधारणा सम्पूर्ण दर्शन और विज्ञान का मूल है। ऋत का आशय है कि सृष्टि के सम्पूर्ण क्रिया कलाप निश्चित नियमों के अनुसार ही होते हैं। और उन नियमों में किसी भी प्रकार से परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। गुरुत्वाकर्षण का नियम, गति के नियम, ध्वनि, ऊर्जा के सञ्चरण नियम सार्वकालिक हैं। और कोई भी शक्ति इन नियमों में परिवर्तन नहीं कर सकती है। यही ऋत वैज्ञानिक प्रगति का मूल मन्त्र है। जब ऋत की अवधारणा के रूप में एक बार यह निश्चित हो गया कि सृष्टि का सञ्चालन निश्चित नियमों के अनुसार ही होता है। तो अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, विद्युत आदि के गुणधर्म की खोज और उनका उपयोग कर जीवन को सुविधापूर्ण

बनाने के प्रयास प्रारम्भ हुए और विज्ञान का विकास तथा सभ्यता का जन्म हुआ।

सत् वैदिक दर्शन का तीसरा महत्वपूर्ण तत्व है। इसका आशय है सृष्टि में विभिन्न परिवर्तनशील पदार्थों के बीच कुछ स्थायी और अपरिवर्तनीय है भी है। यह अनुभव किया गया कि जल, हिम, वाष्प के रूप अलग होते हुए भी मूलतः तत्व ही हैं। अग्नि और सूर्य में ऊष्मा एक ही है। दीपक, सूर्य और विद्युत से उत्पन्न प्रकाश तत्व एक ही है। जो सत् हो सकता है। यह विकास क्रम चलता रहा और यह निश्चित हुआ कि सम्पूर्ण सृष्टि में सत् केवल ब्रह्मा है और शेष सब कुछ परिवर्तनशील है। यही शिद्धान्त ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या कहकर व्यक्त किया गया है। इसका अर्थ है कि सत् अर्थात् स्थायी मूल तत्व केवल एक ही परमात्मा के हैं।

पौराणिक दर्शन ब्रह्म के साथ ही सर्वशक्तिमान देवों की सत्ता भी मानता है। उसका मानना है कि कुछ देव शक्तियाँ सब कुछ करने में समर्थ हैं कि और अपने अनुकूल लोगों की सहायता तथा विपरीत लोगों की क्षति भी करती रहती हैं। देवता किन बातों को अच्छा और बुरा मानते हैं, इस चिन्तन के आधार पर पाप और पुण्य की अवधारणा स्थापित हुई और स्वर्ग और नरक की भी धारणा बनी इस धारणा के अनुसार पूजा पाठ करके देवों को प्रसन्न करना मुख्य कार्य बन गया और माना जाने लगा कि इससे देवगढ प्रसन्न होकर हमारी सहायता करें और हमारे कार्य सुगमता पूर्वक सम्पन्न होने लगें। यह भी प्रचारित किया गया कि पूजा पाठ न करने तथा विरोध करने पर देवता हाँनि भी पहुँचाते हैं।

व्यवहार मे यह भी देखा गया कि पूजा पाठ करने वाले और धर्म कही जाने वाली बातों का पालन करने वाले कष्ट भोगते हैं और विपरीत कार्य विचार वाले लोग सुखी रहते हैं। इसका समाधान पूर्व जन्म के कर्म को बताया जाने लगा। यह माना गया कि कष्ट भोगने वाले धार्मिक व्यक्ति ने पूर्व जन्म में पाप किए थे जिनका फल वह इस जन्म में भोग रहा है और इस इस जन्म के अच्छे कर्मों का फल उसे मरने के बाद स्वर्ग में प्राप्त होगा। पुनर्जन्म की अवधारणा इससे बहुत मजबूत हो गई होगी।

अप्रत्याशित रूप से बन जाने वाले संयोगों तथा समझ में न आ पाने वाली घटनाओं को देवताओं का चमत्कार कहा जाने लगा। किसी परेशान व्यक्ति की सहायता यदि उसके किसी मित्र, परिचित या अपरिचित व्यक्ति ने कर दी और उसे राहत मिल गई तो इसे देवताओं की कृपा माना गया। इसी प्रकार अचानक हो जाने वाली दुर्घटनाओं को धार्मिक लोग देवताओं के कोप का दण्ड बताने लगे। धीरे धीरे जीवन में सब कुछ देवताओं की कृपा पर ही आश्रित माना जाने लगा।

इस अवधारणा के प्रचार से बहुत अधिक परेशान व्यक्ति को थोडा मनोवैज्ञानिक सहारा अवश्य मिला। उसे आशा बंधी कि देवताओं की कृपा से कष्ट दूर भी हो जायेंगे तथा उसने कष्टों को पूर्व जन्म का फल मानकर सन्तोष भी कर लिया। इससे परम निराशा और चरम अवसाद की स्थितियों से कुछ सुरक्षा अवश्य मिली, लेकिन इससे मनुष्य की कर्म स्वतन्त्रता छिन हो गई और वह देवताओं की कृपा का दास बनकर रह गया। धीरे धीरे भाग्य की अवधारणा प्रबल होती गयी और सुख दुख भाग्य के अधीन माना जाना प्रारम्भ हो गया। इस भाग्यवाद को ही मानव की अकर्मण्यता का मूल माना जाना

चाहिए।

जब यह मान लिया गया कि सब कुछ देवताओं की इच्छा से ही होना है और मनुष्य के प्रयासों से कुछ भी सम्भव नहीं है तो अकर्ममण्यता को बढावा मिला। देवताओं की इच्छा होगी तो कार्य सफल हो जायेगा, हमारे प्रयासों से कुछ भी नहीं हो सकता, इस विचार से प्रगति का मार्ग अवरूद्ध होने लगा। फिर इसमें कुछ संसोधन करना पडा। यह कहा जाने लगा कि देवता भी उन्ही की सहायता करते हैं जो अपनी सहायता स्वयम् करने के लिए तत्पर रहते हैं।

इस प्रकार पौराणिक देववाद और भाग्यवाद की तुलना में वैदिक ब्रह्मवाद और ऋतवाद पूर्णतः तर्कसङ्गत वैज्ञानिक चिन्तन हैं। वैदिक दर्शन वैज्ञानिक अध्यात्म भी माना जाता है। जो धार्मिक आडम्बर और देवताओं को नियामक मानने को अस्वीकार करता है और मनुष्य को कर्म की स्वतन्त्रता प्रदान करता है।

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ

भारत के प्रमुख राजवंश

1.वैवस्वत मनु के 10 पुत्र

1. इक्ष्वाकु
2. नृप
3. धृष्ट
4.शर्याति
5.नरिष्यन्त
6. प्रांशु
7. नाभाग
8. दिष्ट
9. करूष
10. पृषघ्र

2. सूर्य वंश

1. विवस्वान् (सूर्य)
2. वैवस्वत मनु
3. इक्ष्वाकु
4. विकुक्षि शशाद
5. पुरञ्जय ककुत्स्थ
6. अनेना
7. पृथु
8. विष्टराश्व
9. चन्द्र
10. युवनाश्व
11. श्रावस्त(शावस्त)
12. वृहदश्व
13. कपवलयाश्व धुन्धुमार
14. दृढाश्व

15. हर्यश्व
16. निकुम्भ
17. अमिताश्व
18. कृशाश्व
19. प्रसेनजित्
20. युवनाश्व
21. मान्धाता
22. पुरुकुत्स
23. त्रसद्दस्यु
24. अनरण्य
25. पृषदश्व
26. हर्यश्व
27. हस्त
28. सुमना
29. त्रिधन्वा
30. त्रय्यारुणि
31. सत्यव्रत त्रिशंकु
32. हरिश्चन्द्र
33. रोहिताश्व
34. हरित
35. चञ्चु
36. विजय
37. रुरुक
38. वृक
39. बाहु
40. सगर
41. असमञ्जस
42. अंशुमान्
43. दिलीप
44. भगीरथ
45. सुहोत्र
46. श्रुति
47. नाभाग
48. अम्बरीष
49. सिन्धुद्वीप
50. अयुतायु
51. ऋतुपर्ण
52. सर्वकाम
53. सुदास
54. मित्रसह कल्माषपाद
55. अश्मक
56. मूलक नारीकवच
57. दशरथ (प्रथम)
58. इलिविल
59. विश्वसह
60. खट्वांग
61. दीर्घबाहु
62. दिलीप

63. रघु
64. अज
65. दशरथ (द्वितीय)
66. राम
67. कुश
68. अतिथि
69. निषध
70. अनल
71. नभ
72. पुण्डरीक
73. क्षेमधन्वा
74. देवानीक
75. अहीनक
76. रुरु
77. पारियात्रक
78. देवल (शिल)
79. वच्चल (नाभि)
80. उत्क
81. वज्रनाभ
82. शंखण
83. युषिताश्व (हरिदश्व)
84. विश्वसह
85. हिरण्यनाभ
86. कोसल्य
87. ब्रह्मिष्ठ
88. पुत्र
89. पुण्य
90. ध्रुवसन्धि
91. सुदर्शन
92. अग्निवर्ण
93. शीघ्रग
94. मरु
95. प्रसुश्रुत
96. सुसन्धि
97. अमर्ष
98. सहस्वान्
99. विश्वभव
100. वृहद्बल
101. वृहत्क्षण
102. उरुक्षय
103. वत्सव्यूह
104. प्रतिवयोम
105. दिवाकर
106. सहदेव
107. वृहदश्व
108. भानुरथ
109. प्रतीताश्व
110. सुप्रतीक

111. मरुदेव
112. सुनक्षत्र
113. किन्नर
114. अन्तरिक्ष
115. सुपर्ण
116. अमित्रजित्
117. वृहद्राज
118. धर्मी
119. कृतञ्जय
120. रणञ्जय
121. सञ्जय
122. शाक्य
123. शुद्धोधन
124. प्रसेनजित्
125. क्षुद्रक
126. कुण्डक
127. सुरथ
128. सुमित्र

3. निमि वंश (मिथिला)

1. विवस्वान् (सूर्य)
2. मनु
3. इक्ष्वाकु
4. निमि
5. मिथि
6. जनक
7. उदावसु
8. नन्दिवर्द्धन
9. सुकेतु
10. देवरात
11. वृहदुक्थ
12. महावीर्य
13. सुधृति
14. धृष्टकेतु
15. हर्यश्व
16. मनु
17. प्रतिक
18. कृतरथ
19. देवमीढ
20. विबुध
21. महाधृति
22. कृतरात
23. महारोमा
24. सुवर्णरोमा
25. ह्रस्वरोमा
26. सीरध्वज
27. भानुमान्
28. शतद्युम्न

29. शुचि
30. ऊर्जनामा
31. शतध्वज
32. कृति
33. अञ्जन
34. कुरुजित्
35. अरिष्टनेमि
36. श्रुतायु
37. सुपार्श्व
38. सृञ्जय
39. क्षेमावी
40. अनेंना
41. भौमरथ
42. सत्यरथ
43. उपगु
44. उपगुप्त
45. स्वागत
46. स्वानन्द
47. सुवर्चा
48. सुपार्श्व
49. सुभाष
50. सुश्रुत
51. जय
52. विजय
53. ऋत
54. सुनय
55. वीतहवय
56. धृति
57. बहुलाश्व
58. कृति

4. दिष्ट वंश

1. मनु
2. दिष्ट
3. नाभाग
4. बलन्धन
5. वत्स्प्रीत
6. प्रांशु
7. प्रजापति
8. खनित्र
9. चाक्षुष
10. विंश
11. विविंशक
12. खनिनेत्र
13. अतिविभूति
14. करन्धम
15. अविक्षित्
16. मरुत्त

17. नरिष्यन्त
18. दम
19. राजवर्द्धन
20. सुवृद्धि
21. केवल
22. सुधृति
23. नर
24. चन्द्र
25. केवल (द्वितीय)
26. बन्धुमान्
27. वेगवान्
28. बुध
29. तृणविन्दु
30. विशाल
31. हेमचन्द्र
32. चन्द्र (द्वितीय)
33. धूम्राक्ष
34. सृञ्जय
35. सहदेव
36. कृशाश्व
37. सोमदत्त
38. जनमेजय
39. सुमति

5. कुरुवंश

1. अत्रि
2. चन्द्रमा
3. बुध
4. पुरूरवा
5. आयु
6. नहुष
7. ययाति
8. पुरु
9. जनमेजय
10. प्रचिनवान्
11. प्रवीर
12. मनस्यु
13. अभयद
14. सुद्यु
15. बहुगत
16. संयाति
17. अहंयाति
18. रौद्राश्व
19. ऋतेषु
20. अन्तिनार
21. अप्रतिरथ
22. ऐलीन

23. दुष्यन्त
24. भरत
25. भरद्वाज वितथ
26. मन्यु
27. वृहत्क्षत्र
29. सुहोत्र
30. हस्ती
31. अजमीढ़
32. ऋक्ष
33. सम्वरण
34. कुरु
35. जह्नु (महोदय या कान्यकुब्ज)
36. सुरथ
37. विदूरथ
38. सार्वभौम
39. जयत्सेन
40. आराधित
41. अयुतायु
42. अक्रोधन
43. देवातिथि
44. ऋक्ष (द्वितीय)
45. भीमसेन
46. दिलीप
47. प्रतीप
48. शान्तनु (देवापि, बाह्लीक)
49. विचित्रवीर्य (भीष्म)
50. पाण्डु (धृतराष्ट्र)
51. अर्जुन (युधिष्ठिर, भीम, नकुल, सहदेव)
52. अभिमन्यु (शासन नहीं)
53. परीक्षित्
54. जनमेजय
55. शतानीक
56. अश्वमेधदत्त
57. अधिसीम कृष्ण
58. निचक्नु (कौशम्बी)
59. उष्ण
60. विचित्ररथ
61. शुचिरथ
62. वृष्णिमान्
63. सुषेण
64. सुनीथ
65. नृप
66. नृचक्षु (चक्षु)
67. सुखावल
68. पारिप्लव
69. सुनय
70. मेधावी
71. रिपुञ्जय

72. मृदु
73. तिग्म
74. बृहद्रथ
75. वसुदान
76. शतानीक (द्वितीय)
77. उदयन
78. अहीनर
79. दण्डपाणि
80. निरमित्र
81. क्षेमक

6. चन्द्र वंश (कृष्ण)

1. अत्रि
2. चन्द्रमा
3. बुध
4. पुरुरवा
5. आयु
6. नहुष
7. ययाति
8. यदु
9. कोष्टु
10. ध्वजिनीवान्
11. स्वाति
12. रुशंकु
13. चित्ररथ
14. शशिबिन्दु (चक्रवर्ती)
15. प्रथुश्रवा
16. पृथुतम
17. उशना
18. शितपु
19. रूक्मकवच
20. परावृत्
21. ज्यामघ (रुक्मेषु, पृथु, वलित, हरित)
22. विदर्भ
23. क्रथ
24. कुन्ति
25. धृष्टि
26. निधृति
27. दशार्ह
28. व्योमा
29. जीमूत
30. विकृति
31. भीमरथ
32. नवरथ
33. दशरथ
34. शकुनि
35. करम्भि
36. देवरात

37. देवक्षत्र
38. मधु
39. कुमारवंश
40. अनु
41. पुरुमित्र
42. अंशु
43. सत्वत (भजन, भजमान, दिव्य, अन्धक, देववृध, महाभोज)
44. अन्धक
45. भजमान
46. विदूरथ
47. शूर
48. शमी
49. प्रतिक्षत्र
50. स्वयम्भोज
51. हृदिक
52. देवगर्भ
53. शूरसेन
54. वसुदेव
55. कृष्ण

7. चन्द्रवंश - यदुवंश

1. अत्रि
2. चन्द्रमा
3. बुध
4. पुरूरवा
5. आयु
6. नहुष
7. ययाति
8. यदु (तुवर्सु, द्रुह्य, अनु व पुरु)
9. सहस्रजित् (क्रोष्टु, नल, नहुष)
10. शतजित्
11. हैहय
12. धर्म
13. धर्मनेत्र
14. कुन्ति
15. सहजित्
16. महिष्मान्
17. भद्रश्रेण्य
18. दुर्दम
19. धनक
20. कृतवीर्य
21. अर्जुन सहस्रबाहु (चक्रवर्ती)
22. जयध्वज (शूर, शूरसेन, वृषसेन, मधु)
23. तालजंघ
24. भरत (वीतिहोत्र)
25. वृष
26. मधु
27. वृष्णि

8. चन्द्र वंश (काम्पिल्य)

1. अत्रि
2. चन्द्रमा
3. बुध
4. पुरूरवा
5. आयु
6. नहुष
7. ययाति
8. पुरु
9. जनमेजय
10. प्रचिनवान्
11. प्रवीर
12. मनस्यु
13. अभयद
14. सुद्यु
15. बहुगत
16. संयाति
17. अहंयाति
18. रौद्राश्व
19. ऋतेषु
20. अन्तिनार
21. अप्रतिरथ
22. ऐलीन
23. दुष्यन्त
24. भरत
25. भरद्वाज वितथ
26. मन्यु
27. वृहत्क्षत्र
28. सुहोत्र
29. हस्ती
30. अजमीढ (द्विजमीढ, पुरमीढ)
31. बृहदिषु (नीलाक्ष, ऋक्ष)
32. बृहद्धनु
33. बृहत्कर्मा
34. जयद्रथ
35. विश्वजित्
36. सेनजित्
37. रुचिराश्व
38. पृथुसेन
39. पार
40. नील
41. समर (काम्पिल्य नरेश)
42. सुपार
43. पृथु
44. सुकृति
45. विभ्राज
46. अणुह

47. ब्रह्मदत्त
48. विष्वक्सेन
49. उदक्सेन
50. भल्लाभ

9. चन्द्र वंश (पाञ्चाल)

1. अत्रि
2. चन्द्रमा
3. बुध
4. पुरूरवा
5. आयु
6. नहुष
7. ययाति
8. पुरु
9. जनमेजय
10. प्रचिनवान्
11. प्रवीर
12. मनस्यु
13. अभयद
14. सुद्यु
15. बहुगत
16. संयाति
17. अहंयाति
18. रौद्राश्व
19. ऋतेषु
20. अन्तिनार
21. अप्रतिरथ
22. ऐलीन
23. दुष्यन्त
24. भरत
25. भरद्वाज वितथ
26. मन्यु
27. वृहत्क्षत्र
28. सुहोत्र
29. हस्ती
30. अजभीढ़
31. नील
32. शान्ति
33. सुशान्ति
34. पुरञ्जय
35. ऋक्ष
36. हर्यश्व
37. मुद्गल (सृजय, वृहदिषु, यवीनर, काम्पिल्य)
38. वृहदश्व
39. दिवोदास (अहल्या गौतम पत्नी)
40. मित्रायु
41. च्यवन
42. सुदास

43. सौदास
44. सहदेव
45. सोमक
46. पृषत
47. द्रुपत
48. दृष्टद्युम्न
49. धृष्टकेतु

10. चन्द्रवंश- विश्वामित्र

1. अत्रि
2. चन्द्रमा
3. बुध
4. पुरूरवा
5. अमावसु
6. भीम
7. काञ्चन
8. सुहोत्र
9. जह्नु
10. सुमन्तु
11. अजक
12. बलाकाश्व
13. कुश
14. कुशाम्ब
15. गाधिकौशिक
16. विश्वामित्र
17. शुनः शेप, देवरात

11. काश्यवंश (काशी)

1. अत्रि
2. चन्द्रमा
3. बुध
4. पुरूरवा
5. आयु
6. क्षत्रवृद्ध, (नहुष, रजि, रम्भ व अनेना)
7. सुहोत्र
8. कश्य
9. काशेय
10. राष्ट्र
11. दीर्घतपा
12. धन्वन्तरि
13. केतुमान्
14. भीमरथ
15. दिवोदास
16. प्रतर्दन शत्रुजित्
17. अलर्क
18. सन्नति
19. सुनीथ
20. सुकेतु

21. धर्मकेतु
22. सत्यकेतु
23. विभु
24. सुविभु
25. सुकुमार
26. धृष्टकेतु
27. वीतिहोत्र
28. मार्ग
29. मार्गभूमि

12. चन्द्र वंश (चेदि, मगध)

1. अत्रि
2. चन्द्रमा
3. बुध
4. पुरूरवा
5. आयु
6. नहुष
7. ययाति
8. पुरु
9. जनमेजय
10. प्रचिनवान्
11. प्रवीर
12. मनस्यु
13. अभयद
14. सुद्यु
15. बहुगत
16. संयाति
17. अहंयाति
18. रौद्राश्व
19. ऋतेषु
20. अन्तिनार
21. अप्रतिरथ
22. ऐलीन
23. दुष्यन्त
24. भरत
25. भरद्वाजवितथ
26. मन्यु
27. वृहत्क्षत्र
28. सुहोत्र
29. हस्ती
30. अजमीढ
31. ऋक्ष
32. सम्वरण
33. कुरु
34. सुधनु, (परीक्षित्, जह्नु)
35. सुहोत्र
36. च्यवन
37. कृतक

38. उपरिचर वसु (चेदि)
39. वृहद्रथ (मगध)
40. जरासन्ध
41. सहदेव
42. सोमापि
43. श्रुतश्रवा
44. अयुतायु
45. निरमित्र
46. सुनेत्र
47. बृहत्कर्मा
48. सेनजित्
49. श्रुतञ्जय
50. विप्र
51. शुचि
52. क्षेम्य
53. सुव्रत
54. धर्म
55. सुश्रवा
56. दृढसेन
57. सुबल
58. सुनीत
59. सत्यजित्
60. विश्वजित्
61. रिपुञ्जय

13. प्रद्योत वंश

1. पद्योत
2. बलाक
3. विशाखयूप
4. जनक
5. नन्दवर्धन
6. नन्दी

14. शिशुनाभ या शिशुनाग वंश

1. शिशुनाभ (शिशुनाग)
2. काकवर्ण
3. क्षेमधर्मा
4. क्षतौजा
5. विधिसार (बिम्बसार)
6. अजातशत्रु
7. अर्भक
8. उदयन
9. नन्दिवर्धक
10. महानन्दी

15. नन्द वंश

1. महापद्म
2. आठ पुत्र (धननन्द)

16. मौर्य वंश

1. चन्द्रगुप्त
2. बिन्दुसार
3. अशोकवर्धन
4. सुयशा
5. दशरथ
6. संयुत
7. शालिशूक
8. सोमशर्मा
9. शतधन्वा
10. बृहद्रथ

17. शुंग वंश

1. पुष्यमित्र
2. अग्निमित्र
3. सुज्येष्ठ
4. वसुमित्र
5. उदंक
6. पुलिन्दक
7. घोषवसु
8. वज्रमित्र
9. भागवत
10. देवभूति

18. कण्व वंश

1. वसुदेव
2. भूमित्र
3. नारायण
4. सुशर्मा

19. आन्ध्र वंश

1. बलिपुच्छक (शिशुक)
2. कृष्ण
3. मल्लकरणी
4. प्रणतसंग
5. शान्तकर्णि
6. पूर्णोत्संग
7. शातकर्णि
8. लम्बोदर
9. पिलक (अपिलक)
10. संघ (स्वाति)
11. मेघस्वाति
12. स्कन्दस्वाति
13. मृगेन्द्र
14. कुवल (कुन्तल स्वाति)
15. स्वातिकर्ण
16. पुलमावि
17. अरिष्टकर्ण
18. पटुमान्
19. अरिष्टकर्मा

20. हाल
21. पललक
22. पुलिन्दसेन
23. सुन्दरस्वातिकर्ण
24. चकोर शातकीर्ण
25. शिवस्वाति
26. गोमतिपुत्र शातकीर्ण
27. अलिमान् (पुलमावि)
28. शान्तकर्णि (द्वितीय)
29. शिवश्रित
30. शिवस्कन्ध
31. यज्ञश्री गोतमीपुत्र
32. द्वियज्ञ (विजय)
33. चन्द्रश्री वशिष्ठपुत्र
34. पुलोमावि (तृतीय)

20. सात आभीर

21. दस गर्दभिल

22. सोलह शक

23. आठ यवन

24. चौदह तुर्क

25. तेरह मुण्ड (गुरुण्ड)

26. ग्यारह मौन

27. प्रमर वंश

1. प्रमर (6 वर्ष)
2. महामद (3 वर्ष)
3. देवापि (3 वर्ष)
4. देवदूत (3 वर्ष)
5. गन्धर्वसेन (50 वर्ष)
6. विक्रमादित्य (90 वर्ष)
7. देवभक्त (45 वर्ष)
8. शालिवाहन (60 वर्ष)
9. शालिहोत्र (50 वर्ष)
10. शालिवर्धन
11. शकहन्ता
12. सुहोत्र
13. हविहोत्र
14. इन्द्रपाल
15. माल्यवान्
16. शम्भु दत्त प्रथम
17. भौमराज
18. वत्सराज
19. भोजराज (50 वर्ष)
20. शम्भु दत्त (द्वितीय) 40 वर्ष
21. बिन्दुपाल

22. राज्यपाल
23. महीनर
24. सोमवर्मा
25. कल्पवर्मा
26. भूमिपाल
27. वीर सिंह
28. रंगपाल
29. कप्ल सिंह
30. गंगा सिंह

28. कैंकिल यवन वंश

1. विन्धशक्ति
2. पुरञ्जय
3. रामचन्द्र
4. धर्मवर्मा
5. वंग
6. नन्दन
7. सुनन्दी, नन्दियशा, शुक्र, प्रवीर

❖❖ ❖ ❖❖

वैदिक इतिहास -

प्रमुख घटनाक्रम

1. **आदिकाल** - आदि पुरुष ब्रह्मा। वेद तथा वैदिक संस्कृति।
2. **सत्ययुग प्रारम्भ** - वैवस्वत मनु, मत्स्य, वरुण। सूर्य वंश प्रारम्भ, जल प्रलय।
3. **सत्ययुग समाप्ति, त्रेता प्रारम्भ** - विश्वामित्र, भार्गव राम, हरिश्चन्द्र। निरंकुश राजाओं का अन्त, ऋषियों के मार्ग दर्शन में लोकप्रित शासन।
4. **त्रेता समाप्ति, द्वापर प्रारम्भ** - वाल्मीकि, गौतम, राम। लंका युद्ध।
5. **द्वापर समाप्ति, कलि प्रारम्भ (3045 विक्रम पूर्व, 3102 ई. पू.) -** व्यास, कृष्ण, युधिष्ठिर। महाभारत युद्ध, युगाब्द का शुभारम्भ, (वैवस्वत मनु से महाभारत तक सूर्यवंश में महत्वपूर्ण रहीं लगभग सौ पीढ़ियों का वर्णन उपलब्ध)
6. **युगाब्द 0001 (3045 विक्रम पूर्व, 3102 ई. पू.)** - इन्द्रप्रस्थ में युधिष्ठिर देश में चक्रवर्ती साम्राज्य। मगध में वृहद्रथ वंश में सहदेव।
7. **युगाब्द 1000** - मगध में प्राचीन बृहद्रथ वंश का अन्त। (महाभारत के बाद पीढ़ी 22, वर्ष 1000)
8. **युगाब्द 1000** - प्रद्योत वंश प्रारम्भ (पीढ़ी 5, वर्ष 138)
9. **युगाब्द 1138** - शिशुनाग वंश प्रारम्भ (पीढ़ी 12, वर्ष 362)

10. **युगाब्द 1215** - गौतम बुद्ध का जन्म (निर्वाण युगाब्द 1295)
11. **युगाब्द 1500** - महापद्म नन्द (पीढ़ी 9, वर्ष 100)
12. **युगाब्द 1600** - चन्द्रगुप्त मौर्य (पीढ़ी 10, वर्ष 173)
13. **युगाब्द 1773** - पुष्यमित्र शंग (पीढ़ी 10 वर्ष 112)
14. **युगाब्द 1885** - वसुदेव कण्व (पीढ़ी 4, वर्ष 45)
15. **युगाब्द 1930** - बलिपुच्छक आन्द्र (पीढ़ी 30, वर्ष 456)
16. **युगाब्द 2563** - शंकराचार्य जन्म (निर्वाण युगाब्द 2625)
17. **युगाब्द 2386** - आभीर वंश (पीढ़ी 7)
18. **युगाब्द 3000** - प्रमर वंश में विक्रमादित्य का जन्म
19. **युगाब्द 3045** - विक्रम सम्वत् प्रारम्भ
20. **युगाब्द 3176** - मौनवंश प्रारम्भ (पीढ़ी 11, वर्ष 300)
21. **युगाब्द 3180** - विक्रमादित्य के पौत्र शालिवाहन का राज्याभिषेक, शालिवाहन शक (सम्वत्) प्रारम्भ
22. **युगाब्द 3240** - शालिवाहन के पुत्र शालिहोत्र का राज्याभिषेक।
23. **युगाब्द 3290** - शालिहोत्र के पुत्र शालिवर्धन का राज्याभिषेक।
24. **युगाब्द 3476** - कैंकिल वंश प्रारम्भ (पीढ़ी 7, राजा दस, वर्ष 106)
25. **युगाब्द 3582** - कैंकिल, गुप्त, गुह आदि क्षेत्रीय राजा।

❖❖ ❖ ❖❖

ॐ

चतुर्वेद सरल पाठ सम्पादक एवम् भाष्यकार, वृहद् संस्कृत धात्वादि कोश, वैदिक शब्दकोश, सरल संस्कृत व्याकरण, वैदिक इतिहास प्रणेता

स्वामी शरण कृत साहित्य

मो. सम्पर्क - 9839105629

1. ऋग्वेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य के इस सार-संक्षेप संस्करण में सरल पाठ के साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ तथा पदार्थ को भी प्रस्तुत किया गया है। प्रथम बार प्रस्तुत सन्धियों से मुक्त सरल पाठ जन साधारण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है। मन्त्रों के सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

2. सामवेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य की तरह सामवेद का सम्पूर्ण संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

3. अथर्ववेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य की तरह अथर्ववेद का सार-संक्षेप संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

4. यजुर्वेद भाष्य :- ऋग्वेद भाष्य की तरह यजुर्वेद का सम्पूर्ण संस्करण। (बृहद् आकार) **रु. 2000.00**

5. वेदायन भाष्य :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का सरल पाठ के साथ ही सरस गेय पद्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ भी दिया गया है। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल पाठ से साधारण जन भी शुद्ध पाठ कर सकते हैं।
(बृहद आकार) **रु. 500.00**

6. वेदायन प्रवचन :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का मन्त्रार्थ, भावार्थ, पदार्थ तथा सरस गेय पद्यानुवाद प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही इन मन्त्रों पर विस्तृत प्रवचन भी इस पुस्तक में संकलित हैं। सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत किया गया है वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास

है। व्याकरण सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ - व्याख्या सहित सरल प्रमाणिक अनुवाद। मूल मंत्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है सभी के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

7. वेदायन (सरलपाठ, काव्यानुवाद, भावार्थ सहित) :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरलपाठ, काव्यानुवाद एवम् भावार्थ। **रु. 100.00**

8. वेदायन (सरलपाठ, काव्यानुवाद) :- चारो वेदों से चुने हुए प्रमुख वेद सूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरलपाठ, काव्यानुवाद। वेदपाठ तथा उपासना के लिए । **रु. 100.00**

9. वेद सूक्तायन :- चारो वेदों से चुने हुए 15 प्रमुख वेद सूक्तों का सन्धियों से मुक्त सरलपाठ (छन्दपाठ), मन्त्रार्थ विशेष भावार्थ- व्याख्या, व्याकरण सम्मत पदार्थ (शब्दार्थ) सहित सरल प्रमाणिक अनुवाद । **रु. 100.00**

10.यजुर्वेद एकादशी :- यजुर्वेद के अन्तिम 11 अध्यायों का मन्त्रार्थ, पदार्थ, तथा भावार्थ दिया गया है सन्धियों-संयुक्ताक्षरों से मुक्त सरल पाठ के साथ ही प्रत्येक शब्द का प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ इतिहास में सर्वप्रथम प्रस्तुत किया गया है। वेद को वैदिक भाषा के अनुसार समझने का यह इतिहास में सर्वप्रथम प्रयास है। व्याकरण-सम्मत, पदार्थ (शब्दार्थ) एवम् भावार्थ-व्याख्या सहित सरल प्रामाणिक अनुवाद। मूल मन्त्र के किसी शब्द को छोड़ा नहीं गया है, कोई भी शब्द अपनी ओर से जोड़ा नहीं गया है। जन सामान्य शोधकर्ताओं-अध्येताओं के लिए अत्यन्त उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

11. चतुर्वेद सरल पाठ :- प्रथम बार प्रस्तुत सन्धियों से मुक्त चारो वेदों का सरल पाठ जन साधारण के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।
(बृहद् आकार) **रु. 2500.00**

12. ऋग्वेद सरल पाठ :- ऋग्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। (बृहद् आकार) **रु. 900.00**

13. सामवेद सरल पाठ :- सामवेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 500.00**

14. अथर्ववेद सरल पाठ :- अथर्ववेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। (वृहद् आकार) **रु. 700.00**

15. यजुर्वेद सरल पाठ :- यजुर्वेद का सम्पूर्ण सरल पाठ प्रथम बार प्रस्तुत किया जा रहा है। **रु. 700.00**

16. संस्कृत धात्वादि कोश :- पाणिनि तथा काशकृत्स्न प्रोक्त धातुपाठों को समाहित कर सम्पूर्ण धातुकोश तैयार किया गया है। इसमें उपसर्ग, अव्यय, संख्या, सर्वनाम शब्द भी दे दिये गये हैं। इसकी सहायता से वेद सहित सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य का अर्थ किया जा सकता है। जन सामान्य के लिए उपयोगी संस्करण। **रु. 500.00**

17. वैदिक शब्द कोश :- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज व्याकरण -सम्मत प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ। इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत वैदिक शब्दकोश। (बृहद आकार) **रु. 900.00**

18. वैदिक शब्द कोश (लघु संस्करण):- वैदिक पदों (शब्दों) का धातुज व्याकरण -सम्मत प्रमाण सहित निष्पक्ष अर्थ। इतिहास में सर्व प्रथम प्रस्तुत वैदिक शब्दकोश। (बृहद आकार) **रु. 200.00**

19. सरल संस्कृत व्याकरण :- व्याकरण के मूल तत्वों पर आधारित इस पद्धति से शब्द रूप, धातु रूप रटे बिना एक मास में संस्कृत पढ़ना, लिखना व बोलना सीख सकते हैं। तीन दशकों के शोध व प्रशिक्षण अनुभव के बाद प्रस्तुत सबके लिए उपयोगी चमत्कारिक व्याकरण प्रणाली। **रु. 95.00**

20. वैदिक इतिहास :- ब्रह्मा व मनु से आरम्भ कर बुद्ध तक का सम्पूर्ण क्रमबद्ध इतिहास। सूर्यवंश की सवा सौ पीढ़ियों का इतिहास प्रथम बार प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक में सूर्यवंश, चन्द्रवंश की शाखाओं सहित, मनु से भोज तक सम्पूर्ण वंशावली भी दी गयी है। **रु. 200.00**

21. ओम् साधना :- ओम् साधना, वैदिक आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना एवम् योग चिकित्सा। **रु. 100.00**

22. चिन्तन प्रवाह :- वैदिक संस्कृति तथा जीवन दर्शन सम्बन्धी चिन्तन। **रु. 500.00**

23. वैदिक विज्ञान :- वैदिक संस्कृति, आध्यात्मिक चिकित्सा, वैदिक योग साधना। **रु. 50.00**

24. युगबोध :- प्रबन्ध काव्य। **रु. 300.00**

25. चेतना :- काव्य संकलन। **रु. 100.00**

26. नवांकुर :- काव्य संकलन। **रु. 20.00**

❖❖ ❖ ❖❖

पालीवाल प्रकाशन

मोबाइल - 9839105629, 8687849004

website : www.vedayan.simplesite.com

email : paliwalprakashanvedicsahitya@gmail.com

❖❖ ❖ ❖❖